महाभारत के नारी पात्र

003

देवकी

सुशील कुमार

देवकी

सुशील कुमार

SPS Central Library
Acc No.
....
Srinagar

ISBN : 978-81-908095-5-9

891.433
S 81 D

प्रकाशक :
भारतीय पुस्तक परिषद्
175-सी, पॉकेट-ए, मयूर विहार फेज-2
नई दिल्ली-110091

संस्करण : 2011

₹ 400

© सुरक्षित

आवरण : निर्दोष त्यागी

कम्प्यूटर कम्पोजिंग : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज,
नई दिल्ली

मुद्रक : अजित प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

DEVAKI *(Novel)*
by SUSHIL KUMAR

Published By :
BHARTIYA PUSTAK PARISHAD
175-C, Pocket-A, Mayur Vihar Phase-2
New Delhi - 110091 (INDIA)
Tel. : (011) 2328 2733, Fax : 2327 0715
Mob.: 09811607086, 09868934715
mail : samayikprakashan@gmail.com
samayikprakashan@rediffmail.com

डॉ. एम.एन. श्रीवास्तव को
सस्नेह
जिनकी एकाग्र साधना ही
उनकी सफलता का सोपान बनी

आधार

'जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं है'—अर्थात् महाभारत किसी विश्वकोश से कम नहीं है। ऐसी मान्यता इस महाकाव्य के संबंध में न जाने कब से चली आ रही है। इसमें संदेह नहीं कि महाभारत में भारतीय जनजीवन का समग्र चित्र उपलब्ध है तथा उसके हर अंग को स्पर्श करने वाली अनेकशः घटनाओं का संकलन है। यह कालजयी महाकाव्य मात्र सामाजिक परिवेश अथवा जनजीवन से जुड़ी स्थूल स्थितियों से ही संपन्न नहीं है, वरन् अध्यात्म तथा ज्ञान की उच्चतम स्थापनाओं को भी इस महासंग्राम में अभिसूचित किया गया है। इस विराट पौराणिक महाकाव्य के विषय में आज तक विद्वानों में अनेक मत-मतांतर रहे हैं : क्या इसकी रचना वेदव्यास के नाम से सुविख्यात किसी एकमात्र ऋषि द्वारा की गई थी? इसके विशाल कलेवर में अपरंपार ज्ञान तथा मर्मस्पर्शी कथाओं का अपरिमित भंडार क्या मूल रूप में सुरक्षित है? अपनी विपुलता और वैविध्य से भरपूर इस महाग्रंथ की रचना क्या किसी विशेष कालखंड की सीमित अवधि में ही संभव थी?

कहा जाता है कि वेदों की ऋचाओं को विधिवत् विभाजित करके उन्हें सुव्यवस्थित रूप में संकलित करने के कारण ही महर्षि कृष्ण द्वैपायन का नाम 'वेदव्यास' के रूप में विख्यात हो गया था। इन महर्षि को ही महाभारत का रचयिता भी स्वीकार किया गया है। किंतु बार-बार एक प्रश्न उठता है—आज महाभारत जिस विराट् रूप में उपलब्ध है, क्या वही वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत है जो आज भी मूल रूप में सुरक्षित है?

किंतु यह प्रस्तुत प्रसंग से परे का प्रश्न है। यहां न तो इतना अवकाश है, न प्रयोजन ही कि इस पर विस्तार से विचार किया जाए। यहां तो इतना ही अभिप्रेत है कि महाभारत काव्य को हमारी संस्कृति का विश्वकोश मानकर युगों से उसकी एक-एक बात पर विश्वास किया जाता रहा है और इस धार्मिक महत्ता भी दी जाती रही है। भारतीय मनीषी तो प्राचीन काल से ही इसे पांचवां वेद कहकर इसका अभिनंदन करते आए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक-शृंखला की रचना वास्तव में इस उद्देश्य से की गई है कि महाभारत में वर्णित मूल कथा में कोई विशेष परिवर्तन किए बिना, महाभारत के सुविख्यात नारी पत्रों के माध्यम से उस युग की स्त्री की रोचक जीवनगाथा—अथवा सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों की सुगम रोचक जानकारी प्रस्तुत की जाए।

युगों से महाभारत प्राचीन कवियों से लेकर आधुनिक साहित्यकारों तक के लिए एक ऐसा प्रेरणास्रोत रहा है, जो हर तरह से भारतीय जनमानस को अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेटता आया है।

प्रस्तुत शृंखला का विशेष उद्देश्य है—भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन गरिमामयी नारियों के चरित्रों को कथात्मक आयाम में प्रस्तुत करना।

यहां मुख्यतः ऐसे नारी पात्रों को ही चुना गया है जिनके बिना महाभारत का अस्तित्व ही संभव न होता। भारतीय संस्कृति ऐसे तो प्राचीन काल से ही नारी के प्रति विशेष संवेदनशील रही है। कहना तो यह चाहिए कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार ही नारी के प्रति यहां के समाज का सम्यक् आचरण और यहां की उच्चतर मूल्यों से अभिरंजित मान्यताएं रही हैं। तो भी महाभारत की इन महामाननीया नारियों के जीवन में कितनी ही ऐसी विसंगतियां दिखाई पड़ती हैं कि विश्वास ही नहीं आता—हम भारत की उसी संस्कृति अथवा समाज की बात कर रहे हैं, जो नारी को परमपूजनीया मानकर उद्घोष करता रहा है : 'जहां नारी की पूजा होती है, वहीं देवताओं का निवास होता है!' जब हम उसी देश के विराट महाकाव्य में ऐसे प्रसंग भी पाते हैं, जहां महाभारत की परम गरिमामयी नायिका पांचाली को विकट अनाचार सहने पड़ते हैं। क्रूरकर्मा दुःशासन द्वारा उसको एकवसना (रजस्वला) होने पर भी केश पकड़कर भरी सभा में खींचते-घसीटते हुए ले जाने का वर्णन मिलता है, तो क्या मन पर आघात नहीं लगता! उस युग में सामाजिक मूल्यों के ह्रास और विषमता की स्थितियां अपने चरम पर थीं!

क्या इस बात पर विश्वास आता है कि यह सब उस युग में हो रहा था जब हस्तिनापुर पर प्रतापी भरतवंश का राज था! यह सब तब हो रहा था जब उस राजसभा में अपनी भीषण प्रतिज्ञा के लिए सुविख्यात योद्धा एवं युग के महानतम शस्त्रज्ञ एवं शास्त्रज्ञ देवव्रत भीष्म स्वयं भी उपस्थित थे। उस समय सभा में अनेक योद्धा तथा पराक्रमी राजा थे; ज्ञान की पराकाष्ठा छूने वाले महात्मा विदुर जैसे महामात्य भी थे। और उन सबके बीच एक ओर द्यूतक्रीड़ा में हारकर, सिर नीचे करके

बैठे महापराक्रमी पांडवों के सामने ही उनकी पत्नी, इंद्रप्रस्थ की सम्राज्ञी और कुरुकुल की माननीया कुलवधू पांचाली को दासी की भांति तिरस्कृत करके उसको निर्वसना करने का अनर्थ किया जा रहा था। यह वही युग था जब शक्तिशाली यादवों के नेता वासुदेव कृष्ण की दुर्धर्ष शक्ति का बोलबाला था। वही कृष्ण, जिनकी पूजा उनके जीवनकाल में ही सर्वशक्तिमान के रूप में प्रचलित हो चली थी और लोक में वह 'नारायण' के अवतार की गरिमा पाने लगे थे।

ऐसा क्यों हुआ होगा? इस भीषण अपमान और यातना को झेलकर पांचाली ने किस प्रकार बारह वर्षों तक अपने केश खोले रखकर पतियों के साथ वनवास तथा तेरहवें वर्ष अज्ञातवास की यातनाएं सहन की होंगी? जिस पांचाली ने एक दिन सम्राज्ञी के रूप में कितनी ही रानियों से अपने चरणों की पूजा करवाई थी, उसको जब मत्स्य राज्य में अपने से कहीं हीन स्थिति की एक रानी सुदेष्णा की सेवा में सैरंध्री बनकर रहना पड़ा तो उस पर क्या बीती होगी?

मात्र पांचाली ही नहीं, स्वयं सत्यवती, गांधारी, देवकी, कुंती आदि भी तो ऐसी ही नारियां रहीं जिनको जीवन में घोर से घोर यातना और संताप झेलने पड़े। किंतु उनकी महानता उनकी अडिग आस्था, गहन धैर्य एवं अदम्य जिजीविषा में है, जिनके बल पर वह साहस के साथ अंतिम पल तक संघर्ष करती रहीं।

रचना की दृष्टि से यह बात कितनी सहज लगती है कि किसी बनी-बनाई कथा को संजोकर, अपनी ओर से उसे नवीन कृति कहकर परोस दिया जाए! किंतु जो इस प्रकार का प्रयास मौलिक स्तर पर करते हैं, उनको ऐसी रचनाओं की प्रक्रिया की गहन पीड़ादायी एवं श्रम-साध्य स्थिति का अनुभव होगा। किसी और की कृति से कुछ लेना और फिर उसे सर्वथा मौलिक रूप में ढालकर प्रस्तुत करना कितना कठिन होता है, इसका अनुभव रचना के स्तर पर ही हो सकता है—और वह भी तब जबकि हम युगों से भारतीय जनमानस को आंदोलित करने वाले विश्वविख्यात कालजयी महाकाव्य 'महाभारत' को आधार बनाकर कुछ नया और मौलिक प्रस्तुत करना चाहते हों!

फिर इस दिशा में प्रयास करते समय लेखक को निरंतर यह ध्यान भी रखना पड़ा कि जो कुछ प्रस्तुत किया जा रहा हो, वह मूल महाभारत में प्रस्तुत प्रसंगों और कथात्मक वृत्तों की परिधि से दूर न हो। इस श्रृंखला की पुस्तकों में उस युग की गरिमामयी नारी का एक प्रकार से कथात्मक जीवन-वृत्त ही होगा, इस कारण हम तत्कालीन मान्यताओं

के विपरीत अथवा उनसे परे नहीं जा सकते। हमारे प्राचीन वाङ्मय प्रायः पौराणिकता की सर्वग्रासी प्रवृत्ति से संचालित होते रहे हैं। इसी कारण उसके अंतर्गत कितने ही ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं जब किसी पात्र-विशेष को गरिमायुक्त करने के लिए अथवा उनके विषय में घटनाओं को अलौकिकता देने हेतु उनको जटिलतर बना दिया जाता है। उनके बीच ऐतिहासिकता खोजना अथवा उनको परिमार्जित संदर्भ देने का प्रयास हमारी इन कृतियों का लक्ष्य नहीं रहा। इन महान् नारी पात्रों को महाभारत के माध्यम से हम जिस रूप में पाते हैं, उसका ही चित्रण काम्य रहा, क्योंकि हम कथात्मकता के मोह में भी भ्रामक तथ्य नहीं परोस सकते। इस कारण कितनी ही अविश्वसनीय, अलौकिक एवं चमत्कार-भरी घटनाओं अथवा संदर्भों में सहजता लाने का भरपूर प्रयास करते हुए भी उनको मूल के निकट, लगभग यथावत् ही रखा गया है।

वर्तमान युग में नारी-उत्थान के लिए अनेकशः समवेत प्रयास किए जा रहे हैं। यद्यपि अब भी उनको पूर्णतः अर्धांश न देकर मात्र तीस प्रतिशत की साझेदारी देने की बात ही की जाती है, तो भी (इस जागरूक युग में भी) राजनीति के कर्णधार अपनी-अपनी कामना के अनुसार, नारी को कितनी शक्ति मिलनी चाहिए और कितनी किस सीमा के साथ बंधी हुई दी जानी चाहिए, इसको लेकर निरंतर सतर्क रहते हैं! प्रायः होता यही रहा है कि जिन क्षेत्रों में महिलाओं को कुछ सामने आने का अवसर मिला है, वहां भी पुरुष ही प्रधान बनकर नारी के नाम पर स्वयं अधिकार और सत्ता का उपभोग करते रहते हैं। भले ही आज विश्वस्तर पर महिलाओं के लिए नारी-वर्ष एवं कितने ही तथाकथित 'दिवस' मनाए जाते रहें, नारी की पूजा तक की घोषणा करने वाले हम भारतीय जन अब तक वास्तव में यह नहीं पचा पाते कि नारी को पुरुष से समतुल्यता का अवसर दिया जाए। आज भी किसी न किसी रूप और वेश में दुर्योधनों की मायावी शक्ति महिला-जगत के उत्थान को जहां की तहां स्तंभित कर देने से नहीं चूकती। बहाना कोई भी हो।

ऐसे में मेरा यह प्रयास संभवतः नारी की दुरवस्था के विरुद्ध युद्धघोष का साक्ष्य बन जाए! और कुछ हो या नहीं, लेकिन मेरी कामना यही है कि आज की नारी किसी भ्रम में आकर फिर से सुषुप्ति का ग्रास न बन जाए। मेरा यह प्रयास उनके अभियान का शंखनाद न सही, नारी मात्र के लिए उद्‌बोधन का साधन ही बन सके तो भी मैं इसे सार्थक मानूंगा।

युग बदलता है और युग के इस परिवर्तन की प्रचंड धारा को कोई भी कुटिलता चिरकाल तक अवरुद्ध नहीं कर पाएगी—इस अडिग विश्वास के साथ मैं अपनी इन रचनाओं को नारी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति की वेला में उनके 'विजयघोष' के रूप में अर्पित करता हूं।

महाभारत में वर्णित अनेक राज्यों तथा स्थानों को आधुनिक संदर्भ में ठीक-ठीक समझा जा सके, इसके लिए तत्कालीन भौगोलिक विवरणों का कुछ संकेत दे देना आवश्यक लगता है।

प्राचीन भारतीय साक्ष्यों के अनुसार, **भरतखंड** की सीमा धुर उत्तर में **मेरु** पर्वत तक फैली थी। **'मेरु'** वास्तव में पामीर की पर्वतमाला और पठारी प्रदेश की ओर इंगित करता है। प्राचीन वाङ्मय के अनुसार, उस युग में भरतखंड की सीमा मध्य एशिया तक विस्तृत थी। ऐसे तथ्यों के अनुसार, उस क्षेत्र को हमारे प्राचीन वाङ्मय में **कांबोज जनपद** कहा जाता रहा है। वह सुविस्तृत क्षेत्र वहां की सबसे बड़ी नदी वंक्षु द्वारा सिंचित और पालित था। महाभारत का शोधपूर्ण अध्ययन करने से आभास मिलता है कि इस विस्तृत भूखंड में चार विशाल जनपद थे—**कंबोज, वाह्लीक, कपिश और गांधार।**

गांधार की राजधानी और सबसे बड़ी नगरी **तक्षशिला** थी। महाभारत (समर) के कोई पचहत्तर-अस्सी वर्ष के बाद हस्तिनापुर-नरेश परीक्षित की हत्या नागों ने कर दी। यह परीक्षित पांडवों के पौत्र—अर्थात् अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र थे—जो युधिष्ठिर के बाद पांडवों के उत्तराधिकारी के रूप में हस्तिनापुर के राजपद पर आरूढ़ हुए थे। नागों द्वारा उनकी हत्या होने के बाद, राजा परीक्षित का पुत्र, अर्थात् पांडवों का प्रपौत्र जनमेजय अत्यंत पराक्रमी राजा हुआ। उसने नागों को दंडित करने के लिए घोर नागमेध किया था। कहा गया है कि उसका यह यज्ञ **तक्षशिला** में ही किया गया था। संभवतः **तक्षशिला** नगर की स्थापना नागों द्वारा ही नागराज **तक्षक** के नाम पर की गई होगी। ऐसे तो आधुनिक विद्वानों का मत है कि संभवतः महाभारत काल तक **तक्षशिला** नगरी का अस्तित्व ही नहीं था। तो भी उन दिनों **गांधार** में और आसपास के क्षेत्रों में नागों की कई पुरियां थीं और वहां नाग जाति काफी शक्तिशाली रही होगी। ऐसी स्थिति में परीक्षित की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए उनके पुत्र जनमेजय द्वारा उस क्षेत्र के नागों पर आक्रमण करके

उनका विनाश किया गया होगा।

जो भी हो, **गांधार** जनपद का अस्तित्व तो निर्विवाद है ही। उसी गांधार की राजकन्या थीं कुरुराज धृतराष्ट्र की पत्नी महारानी गांधारी। उनका भाई शकुनि अपने पिता राजा सुबल की मृत्यु के बाद गांधारराज बना। दुर्योधन के हित के लिए इसी द्यूतविद्या के धूर्त आचार्य शकुनि ने अपनी कुटिलता और द्वेष की आग से समूचे कुरुवंश का ही विनाश करवा दिया।

गांधार के पड़ोस में ही **मद्र** राज्य था। महाभारत तथा पाणिनि आदि द्वारा वर्णित **वाह्लीक** को मध्य पंजाब माना जाता है। **मद्र** अर्थात् **माद्रेय** के नाम से विख्यात जनपद उत्तरी पंजाब था, जिसकी राजधानी **शाकल** थी। यही आधुनिक स्यालकोट है। बहुत बाद में वाह्लीक अर्थात् ग्रीक **बैक्ट्रिया** के नाम से विख्यात स्थान वर्तमान बल्ख में बसे यवनों ने भारत में पंजाब के कुछ भाग को जीता और **मद्र** के नगर **शाकल** को ही राजधानी बनाकर वे भरतखंड के **मध्यदेश** की ओर विस्तार करने का, एक सीमा तक, सफल उद्योग भी करते रहे।[1]

इस क्षेत्र के पड़ोस में ही **केकय** नामक सुविख्यात जनपद था जहां के राजा अश्वपति प्राचीनकाल में अपनी विद्वत्ता तथा ब्रह्मज्ञान के लिए ब्राह्मण ऋषियों द्वारा भी पूजे जाते थे। इसी **केकय** में रामायण की सुविख्यात रानी कैकेयी का जन्म हुआ था, जिसने दशरथ से राम के वनवास का 'वर' मांगा था। महाभारत के अनुसार, **मत्स्य** देश के राजा विराट की पत्नी सुदेष्णा भी संभवतः इसी क्षेत्र की रही होगी। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि विराट की वह रूपगर्विता रानी सुदेष्णा 'सूतराज केकय' की पुत्री कही गई है। इन्हीं सूतराज केकय के पुत्र का नाम था कीचक, जो अज्ञातवास के समय मत्स्य जनपद में पांडवों की महारानी द्रौपदी पर आसक्त होकर उसके लिए घोर यातना का कारण बना था। (देखिए—'पांचाली')

राजा विराट का **मत्स्य** राज्य वर्तमान **अलवर** के क्षेत्र में था और उनकी राजधानी **विराटपुरी** का अवशेष भी **अलवर** जनपद में **बैराट** के नाम से मौजूद है। अब तो उसका नामकरण **विराटनगर** ही कर दिया गया है।

हस्तिनापुर आज तो आधुनिक मेरठ के पंद्रह-बीस मील पश्चिम में मात्र एक गांव के रूप में स्थित है, किंतु गंगातट पर बसा **हस्तिनापुर** उस युग के विशाल शक्तिशाली राज्य **कुरुजांगल** जनपद की राजधानी था और निश्चय ही महाभारत का

---

1. देखिए, लेखक का उपन्यास 'सेनापति पुष्यमित्र' (दो खंड)

केंद्र-स्थल रहा। वहां कुरुओं का समर्थ वंश बहुत समय तक राज्य करता रहा। पांडवों को उसके बदले में आधा राज्य वर्तमान **इंद्रप्रस्थ** (दिल्ली) का **खांडवप्रस्थ** नामक वनप्रदेश दे दिया गया था। उस वन को प्राचीन आर्यपद्धति से ही जलाकर पांडवों ने यहां अपने शक्तिशाली राज्य की राजधानी **इंद्रप्रस्थ** पुरी को स्थापित किया था।

इंद्रप्रस्थ के किंचित दक्षिण और पूर्व की दिशा में **मध्यदेश** के अत्यंत शक्तिशाली और उस युग के सबसे प्रभावशाली राज्यों में से एक था—**पंचाल**। यह उस क्षेत्र में बसा था, जहां आज **फर्रुखाबाद, कन्नौज** तथा **बरेली** जनपद हैं। इसी **पंचाल** की राजकन्या महासुंदरी द्रौपदी के कारण ही महाभारत का भीषण संग्राम हुआ था—यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पांचाली ही वास्तव में महाभारत समर के लिए हेतु बन गई।

इंद्रप्रस्थ के दक्षिण में उस युग का एक और समर्थ जनपद था—**शूरसेन**। यह क्षेत्र उस युग के सबसे शक्तिशाली यादवगण का केंद्र था। यादवों ने एकतंत्र शासन को त्यागकर गणसंघ बना लिया था और गण-शासन की स्थापना की थी। उनमें वृष्णि, अंधक, कुक्कुर, भोज आदि अनेक यादव कुल सम्मलित थे। इसी प्रदेश के आदिपुरुष राजा शूरसेन की पुत्री थीं—कुरुराज पांडु की पत्नी पृथा अथवा कुंती। उनके ही भाई थे वसुदेव। वसुदेव का विवाह यादवों के महानायक उग्रसेन के अनुज राजा देवक की पुत्री देवकी से हुआ था। और देवकी-वसुदेव के ही पुत्र थे उस युग के महानायक जनार्दन कृष्ण, जो अपने आचार-व्यवहार तथा पराक्रम के साथ ही अपनी बहुरंगी जीवन-शैली के कारण युग के अत्यंत लोकप्रिय नायक थे। अपने जीवनकाल में ही वासुदेव कृष्ण आख्यानों के लोकनायक बन गए थे। अंततः उनको स्वयं 'विष्णु' अथवा 'नारायण' के सबसे लोकप्रिय अवतार के रूप में मान्यता मिली। आज भी उनके द्वारा उद्घोषित 'गीता-ज्ञान' को परमज्ञान का आधार माना जाता है।

उग्रसेन के पुत्र कंस ने महत्त्वाकांक्षावश अपने पिता तक को बंदी बनाकर **मथुरा** पर फिर से एकतंत्र—राजतंत्र—स्थापित कर लिया था। अंत में कृष्ण ने उसका वध करके यादवगण को मुक्त किया। किंतु **मगधराज जरासंध** ने अपने जामाता कंस का वध करनेवाले कृष्ण और यादवों से घोर वैर ठान लिया और उनको यातना पर यातना देने के लिए उसने बार-बार **मथुरा** पर आक्रमण कर-करके उनका जीना दूभर कर दिया। अंततः कृष्ण ने जरासंध के आक्रमणों से बचकर शांत जीवन और

उन्नति की कामना से यादवों को **गुजरात** के धुर पश्चिमी **आनर्त जनपद** में ले जाकर **कुशस्थली** में **द्वारवती** अथवा **द्वारका** बसा ली; और वहां रहकर यादवों की शक्ति का इतना विस्तार किया कि यादव गणसंघ युग के सबसे शक्तिशाली तंत्र के रूप में स्थापित हो गया था।

मगध की स्थिति पर विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। **बिहार** में गंगा के दक्षिण स्थित यह जनपद तो महाभारत के बाद के युग में भी भारत का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य रहा। और यहां के अनेक प्रसिद्ध राजवंश भारतीय इतिहास पर अपने अमिट चिह्न छोड़ गए।

इनके अतिरिक्त बार-बार **विदर्भ** का नाम आता रहा है। यह **विंध्य पर्वत-शृंखला** के दक्षिण में **नर्मदा** और **ताप्ती** नाम की सुप्रसिद्ध नदियों के भी उस पार दक्षिण में स्थित था, जहां वर्तमान **बरार** है।

विदर्भ प्राचीन राज्य था और वहां का तत्कालीन राजवंश भी यादवों के कुल से ही संबद्ध था। महाभारत युग में **विदर्भ** की राजदुहिता रुक्मिणी के कारण भी द्वेष का प्रचंड विस्फोट हुआ था। कृष्ण ने विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी को, उनकी इच्छा के अनुरूप, बरवस हरण करके प्राप्त किया था। इस कारण रुक्मिणी के भाई—विदर्भ के युवराज रुक्मी से उनकी चिरकालीन शत्रुता तो हुई ही, क्योंकि वह रुक्मिणी का विवाह अपने मित्र तथा जरासंध के अनुगत **चेदि** के राजपुत्र शिशुपाल से करना चाहता था और कृष्ण ने इसमें व्यवधान डाल दिया था।

बाद में चलकर तो इसी रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह हुआ था। और दोनों राजकुलों में ऐसे विवाह-संबंध बाद में भी किए जाते रहे।

चेदि भी उस युग का बहुत प्रसिद्ध राज्य था। और **अवंति** भी उस युग का विख्यात जनपद था जो आधुनिक **उज्जैन** ही था। **सरयू** के तट पर बसा **कौसल** राज्य तथा **गोमती** और **गंगा** के बीच स्थित **काशी जनपद** भी उन दिनों विख्यात थे। **मिथिला** आधुनिक **मिथिला** ही थी जो **विदेह जनपद** के नाम से विख्यात थी। गंगा के दक्षिण में **मगध** स्थित था और इन दोनों के पूर्व की ओर था **अंग** जनपद, जिसकी राजधानी थी **चंपा** (आधुनिक भागलपुर।)

महाभारतकार को सुदूर दक्षिण में स्थित **वनवासी जनपद** का भी ज्ञान था। और कहा गया है कि **वनवासी राज्य** भी यदुकुल के ही एक राजवंश का था।

इनके अतिरिक्त कितने ही पर्वत, नदियों तथा स्थानों—सहस्रों तीर्थों आदि के विवरण महाभारत में मिलते हैं। प्रस्तुत श्रृंखला के उपन्यासों में संबंधित स्थानों आदि का भौगोलिक परिचय यथास्थान दिया गया है, जिससे पाठकों को किसी स्थान के विषय में पूरी जानकारी मिलती जाएगी। ये कुछ ऐसे स्थान थे, जिनकी वर्तमान पहचान बताने से कथा को सहज ही ग्रहण करने में सुविधा होगी, इस कारण यहां संक्षेप में इनका परिचय दे दिया गया है।

महाभारत की इन गरिमामयी नारियों का समग्र परिचय उपन्यासों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अतः कथा की दृष्टि से रोचकता बनाए रखने के लिए कहीं-कहीं कुछ काल्पनिक प्रसंगों का भी उपयोग किया गया है, किंतु इसका ध्यान रखा गया है कि ऐसे प्रसंग किसी स्थापित तथ्य को स्पष्ट करने के लिए ही हों। मूल कथा के स्वरूप के उद्घाटन में सहायक बनाने के लिए ही ऐसे कथा-संयोजन किए गए हैं—महाभारत के चरित्रों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के उद्देश्य से नहीं; क्योंकि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हम उन स्थापित चरित्रों का मूल स्वरूप ही प्रस्तुत कर रहे हैं—उनकी औपन्यासिक पैरोडी नहीं।

कहीं-कहीं तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का वास्तविक रूप दिखाने के लिए ही किसी कथात्मक प्रसंग का संयोजन किया गया है, अन्यथा नहीं।

इन उपन्यासों में **गंधर्व, किन्नर, यक्ष-राक्षस,** अप्सरा आदि **देव योनि** की कही जाने वाली संस्कृतियों का भी वर्णन भी आया है। उनकी संस्कृति और सभ्यता का विवेचन करने के लिए कहीं-कहीं कुछ इतर चरित्रों का विकास किया गया है, किंतु इसका ध्यान रखा गया है कि वे मूल महाभारत में वर्णित प्रसंगों के अनुरूप ही हों।

मूल ग्रंथ में इन चरित्रों के साथ उनको असामान्य बनाने के उद्देश्य से अथवा उनको विशेष गरिमा प्रदान करने की इच्छा से कई असंभव पौराणिक कल्पनाओं का सहारा लिया गया है। हमने उनका भी कथा में समावेश किया है, हां उनका वर्णन ऐसे किया गया है कि वे पाठकों को सहज ही ग्रहणीय हों। स्वयं महाभारतकार ने भी उन **देवजातियों** का उपयोग प्रायः ऐसी ही सहजता से किया है, जैसे अज्ञातवास के समय पांचाली द्वारा अपने पतियों को 'पांच बलशाली गंधर्व' कहा गया है। और

भीम कई बार 'महाबली गंधर्व' के रूप में पांचाली की रक्षा के लिए आते भी रहे हैं। यही स्पष्ट कि गंधर्व आदि भी सहज मानव जैसे ही थे और उनको अलौकिकता उनके 'अमानवीय'-से प्रतीत होने वाली कुछ विशेषताओं–रूप, गुणों, संस्कारों तथा पराक्रम के कारण मिली थी।

देवकी संभवतः संपूर्ण भारतीय वाङ्मय में एक ऐसी नारी के रूप में प्रतिष्ठापित हैं, जिनका मौन ही समूची सृष्टि की ध्वनियों से अधिक मुखर रहा है! वह भोजकुल के यादवों की राजकन्या थीं। मथुरा में प्रतिष्ठित, यादवों के प्रमुख आठ कुलों के गणसंघ के महानायक उग्रसेन के अनुज राजा देवक की पुत्री थीं। वह और वृष्णिकुल के शूरसेन वंशी राजा वसुदेव के साथ उनका विवाह स्वयं मथुरा के अधिपति कंस ने कराया था। उस समय तक कंस अपने श्वसुर मगधपति जरासंध के उकसाने पर यादवों की गण-व्यवस्था को ध्वस्त करके स्वयं 'राजा' बन बैठा था। मगध के अनेक मंत्री और योद्धा सेनापति उसके सहायक थे। कंस ने उनके बल पर स्वयं अपने पिता–गण के महानायक उग्रसेन को बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया था और बलपूर्वक यादवों का दमन करके उन पर निरंकुश शासन करने लगा था।

कहा जाता है कि कंस महाबली था। जितना बलशाली, उतना ही अनाचारी। यहां तक कि पौराणिक वाङ्मय में उसे द्रुमिल दानव का पुत्र और प्राचीनकाल के महाबली दानव कालनेमि का अवतार माना गया है। कहीं-कहीं उसे हिरण्यकशिपु अथवा रावण का द्वापरकालीन रूप भी कहा गया है!

इनमें कितना तथ्य है, यह कह पाना कठिन है, किंतु इनसे इतना तो स्पष्ट ही है कि कंस वास्तव में कितना अनाचारी रहा होगा! कम से कम स्वयं उसकी प्रजा यादवों को तो वर्षों तक उसकी निरंकुशता और नृशंसता के दमनचक्र में पिसना ही पड़ा। यह कंस की प्रबलता ही थी कि वह अपने युग के प्रख्यात यादव योद्धाओं का दमन करके इतने वर्षों तक शासन करता रहा।

किंतु उसके दमन और अनाचार से पिसती यादव प्रजा संभवतः एक दिन भी निष्क्रिय नहीं रही। हां, कंस के अत्याचार का सबसे भयंकर प्रकोप देवकी को लंबे समय तक झेलना पड़ा।

अनेक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि वास्तव में शूरसेन जनपद आरंभ से वृष्णिकुल के यादवों का ही था। उन्होंने स्वयं त्याग और बलिदान का मार्ग अपनाकर

आठ दलों के यादवों का सुसंगठित गण स्थापित करने के लिए अपना राज्य समर्पित कर दिया था तो भी वृष्णिकुल अपने-आपमें अत्यंत शक्तिशाली था। उसके नायक अथवा प्रमुख थे वसुदेव, जो स्वयं गण के प्रमुख योद्धाओं तथा मंत्रियों में से थे।

महानायक उग्रसेन के कई अनुज थे—देवक, देवभाग आदि। देवक की कन्या थी देवकी। कंस संभवतः वृष्णिकुल को मिलाने के लिए ही अपने कुल की कन्या देवकी से वसुदेव का विवाह करके उनसे प्रगाढ़ संबंध बनाना चाहता था।

विवाह हर्षोल्लास के साथ संपन्न भी हुआ। किंतु वर्णन मिलता है कि कंस जब स्वयं रथ हांकता हुआ वर-वधू को पहुंचाने जा रहा था तो आकाशवाणी हुई कि, "देवकी का आठवां पुत्र तेरा वध कर देगा!" बस, कंस तत्काल देवकी का वध करने को तैयार हो गया। वसुदेव के समझाने पर और अपनी हर संतान को स्वयं लाकर कंस के समक्ष प्रस्तुत कर देने का वचन देने पर उसने देवकी की हत्या तो नहीं की, किंतु उन दोनों को उसने कारागार में डाल दिया।

उसी पल से देवकी के जीवन की यातना-भरी कथा आरंभ होती है! वर्ष बीतते गए। देवकी के पुत्र पर पुत्र होते रहे। एक-एक करके कंस उसके पुत्रों की जन्म लेते ही नृशंसतापूर्वक हत्या करता रहा।

उस मां की पीड़ा का वास्तविक वर्णन कौन कर सकता है जो जानती हो कि वह नौ मास तक जिस संतान को उदर में पोसती थी, जन्म लेते ही उसकी हत्या कर दी जाएगी! घोर पीड़ा से छेदते नौ मास और फिर शिशु की हत्या की मर्मभेदी यातना—देवकी सहती रही...सहती रही...

छः पुत्र मारे गए!

किंतु सातवां गर्भ सहसा जन्म लेने के पहले ही लुप्त हो गया!

पौराणिक वाङ्मय एवं परंपरा के अनुसार यह स्थापना मिलती है कि भगवान विष्णु की 'योगमाया' ने देवकी के सातवें गर्भ को खींचकर (कर्षण करके) वसुदेव की दूसरी पत्नी (नंद के यहां छिपाकर रहने वाली) रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया, इसी कारण रोहिणी के उस पुत्र बलभद्र को 'संकर्षण' भी कहा जाता था!

यह प्रसंग चाहे कितना ही जटिल हो; किंतु देवकी के आठवें पुत्र के विषय में तो यथार्थ वर्णन मिलता है—उसे जन्म लेते ही छिपाकर यमुनापार गोकुल में नंद के यहां पहुंचा दिया गया था! कहते हैं कि उसके स्थान पर यशोदा की उसी रात जन्मी पुत्री (स्वयं योगमाया!) को लाकर कंस को देवकी

की आठवीं संतान बताकर दे दिया गया। कंस उसकी हत्या नहीं कर पाया— वह आकाश में उड़ गई थी!

पौराणिक चमत्कारों से परे, हमें देवकी अपने वास्तविक रूप में दिखती है! आठवें पुत्र की रक्षा कर ली गई है— यह उसे ज्ञात था, किंतु उसे कितने ही वर्षों तक उस पुत्र के विछोह में मौन क्रंदन के साथ विकट प्रताड़नाएं सहते हुए उसे देख पाने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। अंत तक देवकी का वही आठवां पुत्र कृष्ण गोकुल से मथुरा आया। पराक्रमी कृष्ण ने अनाचारी मातुल कंस का वध करके कंस की कठोर कारा से माता-पिता का उद्धार किया और अपने विछोह में तड़पती अंबा देवकी को हृदय से लगा लिया।

संक्षेप में यही देवकी की गाथा है— मूक-सी रहकर घोर संताप सहती उस कृशकाया देवकी की दारुण गाथा, जिसने कृष्ण जैसे युगांतकारी अतिरथी पुत्र को जन्म दिया था!

प्रत्यक्षत: देवकी महाभारत की कथावस्तु से जुड़ी नहीं थीं, किंतु वह अपने लोकमान्य पुत्र वासुदेव कृष्ण के रूप में युगों तक समग्र परिवेश पर छाई रहीं। अपनी ननद कुंती की भांति देवकी भी मातृत्व की अन्यतम छटा प्रस्तुत करती हैं। उनका पुत्र वासुदेव कृष्ण 'देवकीनंदन' कहलाने में गौरव अनुभव करता था। वह यही कृष्ण है जो अतिरथी योद्धा था, युगांतकारी नीतिज्ञ था और युगद्रष्टा ऋषियों की भांति ज्ञान के क्षेत्र में अन्यतम 'गीता' का गायक भी था!

देवकी एक प्रकार से मौन ही रहीं जीवन-भर! किंतु अपने पराक्रमी पुत्र देवकीनंदन कृष्ण के रूप में देवकी ने सौ वर्ष भी अधिक समय तक समूचे भरतखंड को प्रभावित किया। देवकी का वह विलक्षण पुत्र युगों की सीमाओं से परे आज भी भारतीय जनमानस पर छाया है! उस युगपुरुष को जीवनकाल में ही 'नारायण' का अंश 'वासुदेव' मानकर लोक पूजने लगा था— यह देवकी की मूक प्रेरणा का प्रतिफल ही तो था!

कंस के वध के पश्चात देवकी का जीवन अपने पुत्र द्वारा स्थापित पुरी 'द्वारवती' (द्वारका) में अपने पुत्र-पौत्रों से भरे, विशाल कुल की अधिष्ठात्री आदिमाता की गरिमा के साथ व्यतीत हुआ। उन्होंने दीर्घ आयु प्राप्त की थी। अपने पुत्र द्वारा समस्त यादव कुल का अंत किए जाने के बाद ही देवकी ने भी अपने पति वसुदेव के साथ इहलोक से महाप्रयाण किया।

मुझे विश्वास है कि यह प्रयास अपने उद्देश्य में सफल होगा और इसे युगों से चली आ रही प्रताड़नाओं के विरुद्ध सतत् संघर्ष करती नारी के प्रति हमारी आस्था और शुभेच्छाओं के रूप में स्वीकार किया जाएगा।

—सुशील कुमार

बी-193, अशोक नगर,
शाहदरा, दिल्ली-110093

उस युग में मथुरा शूरसेन जनपद की राजधानी थी और अंधक, भोज, कुक्कुर तथा वृष्णिकुल के महाबली यादवों का शक्तिशाली संघ मथुरा को ही राजधानी बनाकर अपने यश का विस्तार कर रहा था। यादवसंघ के महानायक के पद पर भोजकुल के पराक्रमी यादव योद्धा उग्रसेन प्रतिष्ठित थे। उनके शासन के अधीन यादवों के सभी आठ कुल परस्पर एक होकर रहते थे। एकता तथा अनुशासन की पुष्ट भावना ही उनकी समृद्धि तथा शक्ति का मूल आधार थी।

उन्हीं दिनों मगध में बलवान जरासंध राज कर रहा था। वह प्रबल शक्तिशाली था और मगध को विशाल चक्रवर्ती-क्षेत्र बनाकर स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में समग्र पृथ्वी का अधिपति बनना चाहता था।

युवा होते हुए भी प्रतापी उग्रसेन यादवों के प्रभावशाली महानायक थे। उन्होंने अनेक ऐसे राजाओं को परास्त किया था जो यादवों की गण-व्यवस्था को हीन समझकर उनको अपने अधीन करना चाहते थे। गण-व्यवस्था में कोई एक राजा तो होता नहीं था, इस कारण वे राजन्यों में व्याप्त ऐसे संस्कारों से वंचित ही रहते थे, जिनसे प्रेरित राजतंत्र के राजा ब्राह्मणों का समर्थन पाकर अपने को समाज में विशेष रूप से प्रख्यात करने का उपाय करवाते रहते थे। राजतंत्र की व्यवस्था के अनुसार, ऐसे राजा अनेक यज्ञ-अनुष्ठान करते रहते और ऐसे अवसरों पर विशेष रूप से दान-दक्षिणा आदि से ब्राह्मण समुदाय को प्रसन्न करके अपनी स्तुति करवाते रहते थे। अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि यह सारे यत्न कोई नए नहीं थे, वरन् प्राचीनकाल से—वेदों के युग से ही प्रचलित थे। प्राचीन वाङ्मय इस तथ्य के अनेक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि स्वयं देवयुग में ही यह सब आरंभ हो गया था। तब भी देवराज इंद्र तक अपने दान आदि के बल पर ब्राह्मणों को प्रसन्न करके अपना गुणगान करवाते रहते थे।

ब्राह्मण ऋषि जिससे जितना ही दाम पाते, उसका उतना ही गुणगान करते थे। वेदों की अनेक ऋचाएं तक इस बात की साक्षी हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि उस युग में स्वयं देवताओं के बीच भी इस बात की होड़ लगी रहती थी कि कौन अपनी अधिक से अधिक स्तुति करवाता है। देवराज इंद्र को इंद्रपद मिला ही था उसके यज्ञों के कारण। उसने अनेक महान यज्ञ किए थे और ब्राह्मणों को पूरी तरह अपने पक्ष में कर लिया था। अपने यज्ञों के कारण

ही इंद्र को शतक्रतु कहा जाता था। इसी कारण वेदों की ऋचाएं इंद्र की स्तुतियों से भरी पड़ी हैं। इनके माध्यम से इंद्र के पराक्रमों की विलक्षण ढंग से स्तुति की जाती थी। इंद्र इसी कारण देखते ही देखते अपने से ज्येष्ठ आदित्यों, विशेषकर वरुण आदि से भी महान् हो गया और जो वरुण पहले सारे लोकों के आदिदेव थे तथा देवाधिदेव और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर माने जाते थे, वही अब इंद्र के अधीन होकर उनकी आज्ञा से जल के देवता अथवा समुद्र के अधिपति मात्र बनकर रह गए।

यादवों ने भी यज्ञ आदि से अपनी महत्ता बढ़ाने की सोची। उन दिनों वास्तव में गणराज्यों में ब्राह्मणों का उस प्रकार आदर-मान नहीं होता था, तो भी यादवों ने अपने यहां यज्ञों का आरंभ किया। उग्रसेन यादव गणसंघ के महानायक थे, अतः उनके द्वारा भी कितने ही यज्ञ किए जाने का उल्लेख मिलता है। किंतु यह सब युगों बाद और अधिक लोकप्रिय हुआ, जब यादवगण में वृष्णिकुल का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया और यादवगण की शक्ति और समृद्धि का इतना विस्तार कर दिया कि बड़े-बड़े राजा भी द्वारवती के यादवों से भयभीत रहने लगे थे।

एक पौराणिक आख्यान महानायक उग्रसेन की सर्वांगसुंदरी पत्नी के विषय में द्रष्टव्य है :

यह घटना उन दिनों की है, जब महानायक उग्रसेन युवा ही थे तो भी उनका यादवसंघ पर गहरा प्रभाव था। और वे राजा न होने पर भी किसी राजा की भांति ही ऐश्वर्य के साथ रहते थे। यादवकुल क्षत्रियों का ही था। और शक्ति के कारण लोक में उग्रसेन का आदर-मान भी किसी राजा के समान ही होता था। उग्रसेन का विवाह भी उन दिनों काशी के सुविख्यात राजवंश की कन्या सुशोभना से हुआ था।

उन दिनों उग्रसेन पर्यटन पर थे। उनका अंतःपुर भी उनके साथ ही था। संयोग से उनकी सुंदरांगी प्रिया महारानी सुशोभना वहीं रजस्वला हुईं। तीन-चार दिन बाद स्नान करके जब वह शुद्ध हुईं तो अपनी सखियों के साथ सुयामुन पर्वत पर कुतूहलवश प्रकृति की मनोरम छटा देखने के लिए विचरण करने लगीं। वह पर्वत के रमणीक स्थलों पर सखियों के साथ विभोर-सी घूम रही थीं। हरे-भरे वृक्षों की डालियां कुसुमों से लदी हुई थी। नदियों के तट पर दूर-दूर तक मोहक झाड़ियां और कुंज थे, जिन पर फैली हुई लताएं भी बहुरंगी फूलों से जगमगा-सी रही थी। मंदगति से बहते समीर के साथ मादक सुगंध तैर-सी रही थी। पर्वत पर मुक्त विहार की लालसा से विचरण करती कितनी

ही किन्नरियां उस समय मधुर स्वर में मादक गीत गा रही थीं। मयूरों की केकाध्वनि तथा कितने ही रंग-बिरंगे पक्षियों का कलरव मन को मादक अनुभूतियों से उकसा-सा रहा था। उग्रसेन की प्रिया भी ऋतु-स्नान के उपरांत सहसा ही कामोद्दीपन से विकल होने लगीं। एक तो नारीधर्म से एक ही दिन पहले निवृत्त होने के कारण सहज ही देह की मांग बढ़ गई थी, फिर वह मदमत्त कर देने वाला परिवेश! रानी की देह आतुर-सी हो उठी।

पर्वत के शिखरों की सौंदर्य-छटा निहारती सुंदरी की चाल कामावेग के कारण और भी मादक हो गई थी। वह अपनी सखियों के साथ मुक्त मन से हँसती, किलोल करती, नदी के तट पर घूमती, प्राकृतिक छटा निहारती-निहारती बेसुध-सी झुरमुटों की ओट में निकल गईं। फूलों की सुरभि और रंगों से सजे कुंजों की अद्‌भुत शोभा उनको लुभा रही थी। वह अकेली ही यहां-वहां घूमती हुई आनंद लेती रहीं।

उसी समय सौभ विमान का स्वामी महाबली दानव द्रुमिल भी अचानक सुयामुन पर्वत की मादक सुषमा से आकर्षित होकर वहीं उतर पड़ा। द्रुमिल आकाश मार्ग से भ्रमण करता हुआ, सुयामुन पर्वत के ऊपर से निकल रहा था, तब अचानक ही उसकी दृष्टि सुयामुन पर्वत पर छाई वसंत की अनूठी छटा पर अटक गई। मुग्ध होकर उसने अपने इच्छागामी सौभ विमान को वहीं उतार दिया और वहां की शोभा को देखता हुआ टहलने लगा। अकस्मात् उसकी दृष्टि राजा उग्रसेन की अति सुंदरी पत्नी पर पड़ी। वह ठगा-सा देखता ही रह गया। ऐसा रूप इस पृथ्वी पर! देखकर द्रुमिल को विश्वास ही नहीं आता था, कि वह कोई मानवी होगी।

वह चकित होकर अपने अद्‌भुत सौभरथ के चालक से बोला, ''इस पर्वतीय वन की शोभा को अपनी सुंदरता से और भी विलक्षण बना देने वाली यह दिव्य रूपसी कौन हो सकती है? यह देखने में तो स्वयं देवराज इंद्र की प्रिय पत्नी शची की भांति अनुपम सौंदर्य और यौवन से संपन्न लगती है, किंतु वह तो इंद्र के साथ नंदन कानन में विहार करती है। उसको पृथ्वी के इस पर्वत पर आने की क्या पड़ी है। कहीं यह अप्सरा तिलोत्तमा तो नहीं है, जिसका सृजन ब्रह्मा ने सुंद-उपसुंद में परस्पर वैर करवाकर उनके मारने के उपाय के रूप में किया था! अथवा यह नारायण द्वारा अपने उरु से प्रकट की जाने वाली परमसुंदरी उर्वशी अप्सरा तो नहीं है! परंतु सुंदर कांतिवाली उर्वशी तो महाराज पुरूरवा की महारानी के रूप में कभी इस पृथ्वी को अपने रूप की छटा से उद्दीप्त करके फिर इंद्रलोक में जा चुकी है, सूत! मुझे तो ऐसा लगता है कि या तो यह समुद्रमंथन से निकली लोकभाविनी लक्ष्मी ही है, अथवा समस्त

लोकों को अपने वश में करके उन पर शासन करने वाले कामदेव की परमप्रिय रूपवती रति स्वयं ही है, जो इस समय मुझे विह्वल कर रही है। सुकुमार तथा सर्वथा निर्दोष अंगों वाली यह रमणी तो मुझे पागल किए दे रही है। पुष्पधन्वा कामदेव इस समय मेरे हृदय को अपने पांचों बाणों से भेदकर मुझे विह्वल कर रहा है। मैं पूरी तरह से काम के अधीन हो रहा हूं। इस कामाग्नि से मेरी रक्षा तो अब यह मन्मथगामिनी सुंदरी ही कर सकती है। यह मत्तगामिनी यौवन की ज्वाला से मुझे दह रही है। अब तो इस सुंदरांगी के मादक अंगों का स्पर्श ही मेरी कामाग्नि को शांत कर सकता है।''

पल-भर सोचने के बाद द्रुमिल दानव ने अपने सारथी को वहीं रुककर प्रतीक्षा करने को कहा। जाते-जाते बोला, ''अब मैं कोई ऐसा उपाय करता हूं कि यह मत्तगामिनी रमणी मुझे अंगीकार कर ले।'' और उसी ओर बढ़ चला।

उस समय सखियों के साथ उन्मुक्त भाव से क्रीड़ा करती, हँसती-इठलाती हुई कामवती सुशोभना फूल चुनती-चुनती सहसा फिर अकेली ही कुंजों के एकांत में पहुंच गई थीं। अचानक ही उन्हें दानव ने अपनी बलिष्ठ भुजाओं में भींच लिया। उस समय महाराज उग्रसेन भी सुयामुन पर्वत पर विहार करने के लिए आए थे। निकट ही उनका शिविर पड़ा था और वह सारा क्षेत्र यादवों द्वारा संरक्षित था। ऐसे में रूपवती सुशोभना को कल्पना तक नहीं हो सकती थी कि वहां कोई दानव आकर उनके साथ ऐसी धृष्टता कर सकता है। उनको यही लगा कि महाराज को अब समय मिला तो वह स्वयं आ गए और जैसे वह यहां की शोभा से मदमत्त होकर कामवती हो गई हैं, वैसे ही महाराज उग्रसेन भी काम के वश में हो गए हैं। पौरुष का स्पर्श पाते ही उनकी कामवती देह कांप उठी। पति के प्रति अनुराग होने के कारण रानी ने पति को दोनों सुंदर भुजाओं में भर लिया और उनसे लिपट गईं।

यादवकुल की उस अनिंद्य सुंदरी वधू की आसक्ति उस समय दानव द्रुमिल को वरदान-सी लगी। उसने उन्मत्त होकर महारानी सुशोभना से समागम का दुर्लभ आनंद प्राप्त किया।

किंतु वासना का आवेग शिथिल होते ही पति के प्रति स्निग्ध रानी को अचानक ही शंका हुई, क्योंकि उनके पति और इस समय कामावेग से संतप्त उनकी रूपवती देह का उपभोग करने वाले व्यक्ति के शरीर के भार में भेद-सा लग रहा था। सशंक होकर उससे अलग होते ही सुशोभना ने रोष के साथ कहा, ''अरे, कौन है तू? तूने छल से मेरे पति का भ्रम उत्पन्न करके मेरा पतिव्रत खंडित कर दिया। मूढ़, तेरे इस नीच कर्म से दूषित होने के कारण अब मुझे अपने बंधु-बांधवों का रोष और अपमान तो झेलना ही होगा, अपने पति

के उत्तम कुल की ओर से सदा निंदित तथा तिरस्कृत होकर पूरा जीवन बिताना होगा।'' कहती-कहती सुंदरी सुशोभना छलवश अपनी काया को दूषित होने के कारण घोर व्यथा से तप्त होकर रो पड़ीं।

दानव द्रुमिल ने उनको सांत्वना देने का प्रयास किया। किंतु क्षुब्ध कातर सुशोभना बार-बार घृणित, अपराधी और अनाचारी कहकर उस दानव को धिक्कारती रहीं।

उनके आक्षेप सुनकर दानव द्रुमिल क्रोध से बोला, ''मूर्ख स्त्री, तू तो अपने को महान् विदुषी मानती है! तू जानती नहीं, कि मैं दानव कुल का पराक्रमी द्रुमिल हूं—सौभ विमान का अधिपति! तू मृत्यु के वश में रहने वाले अपने उस साधारण मानव पति के बल पर बार-बार मुझ पर आक्षेप काहे को करती है? स्त्रीमान की गर्विता, ओ मानवी! तुझे पता नहीं है कि विवशता की स्थिति में व्यभिचार हो जाने पर भी स्त्री दूषित नहीं मानी जाती। स्त्रियों की—विशेषकर मानवी स्त्रियों की बुद्धि तो ऐसे ही चंचल होती है। उनमें स्थिरता नहीं होती। हमने तो सुना है कि व्यभिचार हो जाने के फलस्वरूप कितनी ही स्त्रियों ने देवताओं के समान पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया है। एक तू ही बड़ी सती बनती है जो अपने सघन काले केशों को झटका देती हुई, जो भी मन में आता है, बोलती जा रही है। सुंदरी, तू निश्चय जान कि मेरा संसर्ग अमोघ है! और इस समागम के फ़लस्वरूप तू भी निश्चय ही किसी महापराक्रमी पुत्र को जन्म देगी। मुझ तेजस्वी सौभपति द्रुमिल के तेज से संपन्न तेरा वह पुत्र भी लोकमान्य योद्धा होगा!''

सुशोभना और भी व्यथित होकर उसे धिक्कारती हुई बोलीं, ''नीच दानव, एक तो तूने घृणित आचरण से मेरा अपमान किया और अब लोक की सारी स्त्रियों की निंदा कर रहा है। तूने तो मेरा इहलोक और परलोक दोनों ही बिगाड़ दिया है। तेरे इस गर्हित कृत्य के फलस्वरूप मुझे कोई पुत्र हुआ भी तो मुझे उससे कोई लगाव नहीं होगा। तेरा कलंकी पुत्र भी तेरी ही तरह तो दुराचारी होगा! तेरा विनाश हो और तेरे पुत्र का भी....''

उनकी भर्त्सना से पीड़ित द्रुमिल अंततः खिन्न होकर, उन्हें रोती-कलपती छोड़ अपने विलक्षण सौभ विमान पर बैठकर वहां से चला गया।

इस कांड का साक्षी है एक पौराणिक आख्यान। कहते हैं यह आख्यान देवर्षि नारद ने स्वयं कंस को सुनाया था।

यादव गणसंघ के महानायक उग्रसेन की अभिनंदनीया प्रिया सुयामुन पर्वत पर हुए उस भयानक अनुभव के बाद से मन ही मन दारुण व्यथा अनुभव करती

रहती थीं। वह उस विकट क्षण की याद आते ही घोर पीड़ा से तड़प उठतीं। उनको विश्वास ही नहीं आता था कि सचमुच उनके साथ ऐसी भयानक घटना हुई थी। मदिरा पीकर उन्मत्त किसी दासी-परिचारिका की भांति मतवाली होकर क्या वह काम-वासना के आवेग से इतनी बेसुध हो गई थीं कि उस समय अपने पति तथा अन्य पुरुष का भेद नहीं जान सकीं। इस पर कौन विश्वास करेगा? लेकिन अब वह करतीं ही क्या?

द्रुमिल दानव द्वारा किए गए बलात्कार की पीड़ा से मुक्ति पाने का कोई उपाय इस जन्म में तो संभव नहीं था। बस, वह अपने पति के प्रति अपार अनुराग के साथ आठों प्रहर उनकी ही सेवा में लगी रहतीं। उंनको अब पति से एक पल के लिए भी विलग होने की कल्पना मात्र से डर लगता था।

बार-बार आवेग से कांपती-रोती रानी को देखकर उग्रसेन उनको हर प्रकार से सांत्वना देने की चेष्टा करते, किंतु सुशोभना की जो दशा हो रही थी, उसे देखकर उनको चिंता होने लगी थी। न जाने उनको ऐसा क्या हो गया था कि वह विकल ही रहती हैं! ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था। आसपास के समूचे परिवेश को अपने प्रदीप्त रूप तथा प्रफुल्लित यौवन की शोभाश्री से हर पल जगमग रखने वाली उनकी सर्वांगसुंदरी प्रिया को अकस्मात् ऐसा कौन-सा रोग लग गया कि वह अब व्यथा के भार से कुम्हलाती-सी जा रही थीं।

राजवैद्यों ने बहुत खोजबीन करके अंतत: राजा उग्रसेन से कहा कि यह तो हर्ष का विषय है—देवी पुत्रवती होने वाली हैं! उनकी सुकोमल काया इसी गर्भ के भार से पीड़ित रहती है। और तो कुछ भी ऐसा नहीं हुआ है जो चिंतनीय हो।

उसके बाद तो महारानी के शुभ की आकांक्षा से गर्भाधान के बाद होने वाले तरह-तरह के अनुष्ठान-संस्कार किए जाने लगे।

किंतु स्वयं महारानी को जब पता लगा कि वह वास्तव में संतानवती होने वाली हैं तो उनको सुख के स्थान पर और भी गहरी वेदना सताने लगी। उस अनाचारी, पापात्मा दानव की भविष्यवाणी ही सत्य होने को है! यह सोच-सोचकर महारानी सुशोभना और भी दु:खी रहने लगीं। वह किसी भी प्रकार से इस अवांछित गर्भ से मुक्ति पाना चाहती थीं, किंतु यह कामना प्रकट करके वह तो किसी को मुंह दिखाने योग्य नहीं रहेंगी। उनको घोर वेदना इस कारण भी होती कि अपने महापराक्रमी पति को वह प्रथम संतान के रूप में उनके क्षेत्रज—एक दानव के पुत्र का पिता बनाने का विवश हैं। उस मर्मभेदी घटना के बारे में किसी को वह बता भी तो नहीं सकतीं! उस दानव की संतान जन्म लेकर न जाने किस अशुभ का कारण बनेगी।

उनके पास चुप रहकर नारकीय पीड़ा को भुगतने के सिवा अब कोई चारा तो था नहीं। वह चुपचाप अपनी ही पीड़ा से कुचली-रौंदी-सी उस विकट यातना को सहती रहीं।

अंत में उनका वह 'लोकमान्य' दानव-पुत्र जन्मा!

कुलपरंपरा से विधिवत् उसके सभी संस्कार किए गए। यादवों ने अपार हर्ष मनाया। महोत्सव होता रहा। पुत्र का नाम रखा गया— कंस। अपने गर्भ से जन्म देने पर भी महारानी सुशोभना का उस पर जरा भी मोह नहीं था। किंतु वह महाराज उग्रसेन का ज्येष्ठ पुत्र था, अत: यादवों के लिए तो उसका वही महत्त्व था जो किसी राजतंत्र में युवराज का होता है! यद्यपि यादवों में राजतंत्र नहीं था और वहां महानायक यादव-गणसंघ के समस्त कुलों की ओर से चुना जाता था। तो भी वर्तमान महानायक के पुत्र की महिमा कम नहीं थी। उग्रसेन को उससे विशेष प्रीति थी।

समय के साथ महारानी ने और भी अनेक पुत्रों को जन्म दिया। उनकी एक सुंदर कन्या भी हुई। उसका नाम था, पिता के नाम पर—उग्रसेना। वह अपनी माता के समान ही अपरूप सुंदरी थी। कंस के आठ अनुज भी हुए जिनमें से प्रथम सुनामा तो मानो कंस की ही राशि का था। उसे देखने के पश्चात् महारानी सुशोभना को उस भयंकर घटना की उतनी पीड़ा नहीं रह गई, न कंस के प्रति उनके मन में वह आक्रोश ही रह गया, क्योंकि उनके मन से द्रुमिल दानव की कही गई वह बात निकल गई कि अब उनके गर्भ से उसकी संतान अवश्य जन्म लेगी! इसी के कारण तो उनको लगता था कि कंस वास्तव में उस दानव की ही संतान होगी, क्योंकि वह बड़ा ही धृष्ट तथा अशिष्ट था। किंतु उनका दूसरा पुत्र सुनामा तो वास्तव में उनके पति की ही संतान है, किंतु वह भी कंस से किसी प्रकार कम ढीठ अथवा अशिष्ट नहीं था! इसी कारण सुशोभना को लगता था कि उस दिन अकस्मात् बलात्कृता होने के कारण वह अत्यंत व्यग्र थीं, इसी कारण उनके मन पर अनाचारी दानव की बात जड़-जमाकर बैठ गई होगी। और कंस उस कांड के बाद ही गर्भ में आया था, अत: सुशोभना को विश्वास-सा हो गया था कि वह दानव के वीर्य का ही परिणाम होगा। इसीलिए कंस के व्यवहार आदि को वह दुराचारी अनार्य दानव के ही संस्कार मानती थीं। किंतु सुनामा तो निश्चय ही महाराज उग्रसेन के ही वीर्य का परिणाम था, फिर वह कंस की ही भांति अशिष्ट तथा धृष्ट कैसे हो गया?

यह सब कुछ नहीं। लगता है कि महाराज उग्रसेन का पुत्र होने के कारण कंस के साथ विशेष व्यवहार किया जाता है, जिससे वह शालीनता से परे अशिष्टता को ही अपना पाया है। उसके हठ के सामने कोई उस पर अंकुश

तो लगाने वाला है नहीं। और इसी कारण सुनामा भी अशिष्ट हो गया है।

इस धारणा के बाद महारानी ने अपनी ओर से अपने पुत्रों पर विशेष ध्यान देना आरंभ कर दिया था, किंतु उनको तो जो बनना था, वही बन रहे थे। रानी ने उनको शिक्षा देने वाले उपाध्यायों को हर प्रकार से कठोरता बरतकर उन्हें शिष्ट और शालीन बनाने का प्रयास करने को कहा, किंतु कंस को अनुशासित करने वाला कौन था? वह महाबली था और जो भी उसकी इच्छा के विपरीत उसकी भर्त्सना करता, उसकी अवमानना करने के साथ ही कभी-कभी कंस, सारे मान-सम्मान भूलकर, बल-प्रयोग करके उसको यातना तक देने से नहीं चूकता था। ऐसे में कंस का कोई भी गुरु अथवा ब्राह्मण उससे रार नहीं मोल लेता था।

कंस अपने भाइयों के साथ निरंतर बल-प्रयोग द्वारा सबको प्रतिहत करता हुआ युवावस्था में पहुंच गया।

दो

उन्हीं दिनों यादवगण पर एक विपत्ति मंडराने लगी। मगध का महत्त्वाकांक्षी राजा जरासंध यादवों पर बहुत बड़ी सेना लेकर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। यादवसंघ के चर आ-आकर नित्य ही उसके आक्रमण की आशंका जताने लगे तो यादवों में चिंता व्यापने लगी। वह तो किसी भी स्तर पर शूरसेन जनपद के यादवों और मगध के बीच शत्रुता का कभी कोई कारण नहीं बनने देते थे! इन दिनों भरतखंड के लगभग सभी राजतंत्र तथा गणतंत्र मगध के जरासंध की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत रहते थे। उससे वैर लेकर कोई अपना ही विनाश कराने का उपाय क्यों करता?

जरांसध के बारे में संभवत: उसके प्रताप के कारण ही कितनी ही विचित्र कथाएं प्रचलित हो गई थीं। उन दिनों यह कोई अनोखी बात नहीं थी। वह वास्तव में वेदों की रचनाकाल के तत्काल ब़ाद का युग था। सामान्य जन में एक विचित्र-सी प्रवृत्ति थी—किसी भी शक्तिशाली को, अथवा कोई भी विशेष पराक्रम करने वाले व्यक्ति को उस युग में अतिमानुषी व्यक्तित्व मानकर उसकी पूजा की जाने लगती थी। मगध के जरासंध के विषय में कुछ ऐसा ही था। वह महाप्रतापी राजा एक के बाद एक युद्धों में निरंतर विजय प्राप्त कर रहा था। उसने कितने ही नरेशों को अपने वश में कर लिया था। दिनोंदिन उसकी शक्ति बढ़ती ही जा रही थी। वह किसी से पराजित नहीं होता था और उसको मारने वाला तो मानो धरती पर कोई जनमा ही नहीं हो।

इन्हीं कारणों से जरासंध के साथ एक विचित्र-सी दंतकथा जुड़ गई थी। कहा जाता है कि जरासंध के पिता मगधराज बृहद्रथ की कोई संतान नहीं थी। उन्होंने एक महात्मा की पूजा-अर्चना करके उनको प्रसन्न किया। महात्मा ने राजा को पुत्रवान् होने का आशीर्वाद दिया। साथ ही उन्हें एक फल दिया। बोले, ''इसे ले जाकर अपनी सुलक्षणा रानी को खिला दो। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी।''

बृहद्रथ ने काशीराज की दो अतीव सुंदरी कन्याओं से विवाह किया था। वह दोनों को ही समान रूप से चाहते थे। उन्होंने महात्मा से मिला फल रानियों को दे दिया, किंतु उनको यह नहीं बताया कि उस फल का विशेष उद्देश्य क्या है। अत: अनजाने ही दोनों रानियों ने उस फल को चीरकर दो खंड किए और खा लिया। कहते हैं कि महात्मा का दिया हुआ फल तथा आशीर्वाद दोनों का ही परिणाम अमोघ था, अत: दोनों रानियां एक साथ ही गर्भवती हो गईं। मगधराज बृहद्रथ तो इसे महात्मा के आशीर्वाद का फल मानकर अत्यंत सुखी हुए।

समय बीता। और दोनों रानियों ने प्रसव में एक विचित्र शिशु को जन्म दिया! उनके गर्भ से उत्पन्न संतान तो पुरुष ही थी, किंतु विचित्र यह था कि उन दोनों के गर्भ से एक ही पुत्र के दो खंड जन्मे थे। अर्थात् एक ही शिशु को मानो बीच से चीरकर बांट दिया गया हो। उन दोनों के गर्भ से एक-एक खंड उत्पन्न हुआ था। उस विचित्र जन्म के कारण भय और शोक से कातर होकर बृहद्रथ की दोनों रानियां रोने लगीं और उन्होंने एक दासी से नवजात शिशु के दोनों खंडों को नगर के बाहर फेंकवा दिया। उन्होंने महाराज बृहद्रथ को भयवश इस विषय में कुछ नहीं बताया।

बृहद्रथ के विशाल राजप्रासाद के ही एक कोने में जरा नाम की एक मायाविनी राक्षसी रहा करती थी। उस दिन सवेरे-सवेरे जरा उसी ओर से जा रही थी तो उसकी दृष्टि दो खंडों में विभाजित उस शिशु पर पड़ी। उसने कौतूहलवश दोनों खंडों को उठाकर जोड़ दिया और बोली, ''जीवित हो जा!''

कहते हैं कि उस राक्षसी की माया से दोनों खंड तुरंत आपस में जुड़ गए और देखते ही देखते उनमें प्राणों का संचार हो गया। शिशु सहसा जीवित होकर रोने लगा। तब जरा राक्षसी उस शिशु को लिए हुए सीधे राजा बृहद्रथ के सामने पहुंची और पुत्र को उनकी गोद में देती हुई बोली, ''महाराज, लो, यह तुम्हारा ही पुत्र है!''

उस समय बृहद्रथ की दोनों रानियां भी वहीं उपस्थित थीं। उस जीवित पुत्र को देखते ही सहसा उन दोनों के स्तनों में दूध उतर आया और उन्होंने

बालक को लेकर अपनी छाती में दुबका लिया। फिर महारानियों से ही उस पुत्र के दोनों के गर्भ से दो खंडों में हुए विचित्र जन्म की कथा सुनकर राजा बृहद्रथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जरा से पूछा, ''देवी, मैं तुम्हारी इस अनुकंपा से अत्यंत हर्षित हुआ, तुम कौन हो? अपना परिचय देकर अनुगृहीत करो।''

जरा बोली, ''महाराज, मैं जरा नामक राक्षसी हूं और तुम्हारे इस प्रासाद में ही वर्षों से रहती हूं। इसी कारण तुम्हारे इस पुत्र के खंडों को देखा तो मैंने तुम्हारे पुत्र न होने की पीड़ा को याद करके इसको जीवित कर दिया है। अब अपने पुत्र का पालन करो। यह निश्चय ही लोकविख्यात महाबली योद्धा होगा।''

उसी दिन से मगधराज ने जरा राक्षसी को कुलदेवी की भांति अपनी राजधानी में ही निवास करने की व्यवस्था कर दी और उसको नियम से पूजा देने लगे।

जरा द्वारा जोड़कर जीवित किए जाने के कारण राजा बृहद्रथ ने अपने उस पुत्र का नाम ही जरासंध— अर्थात् जरा द्वारा जोड़ा गया— रख दिया था। यह वही जरासंध था जो अपने पिता राजा बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात मगध का महाबलशाली राजा बना। वह मन ही मन चक्रवर्ती सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा पाल रहा था और इसी कारण समय-समय पर दिग्विजय करके वह कितने ही राज्यों को जीतकर अपने अधीन करता रहता था। उसने इस बीच विशेषकर दक्षिण के कितने ही राज्यों को परास्त करके अपने अधीन कर लिया था। उनमें से कुछ तो बहुत ही शक्तिशाली माने जाते थे। उसने विदर्भ को जीतकर वहां के राजा भीष्मक जैसे प्रतापी को भी अपना अनुगत बना लिया था। करुष के राजा वृद्धश्रवा तथा चेदिराज दमघोष भी जरासंध के अधीन हो गए थे। आसपास के सारे छोटे राज्य तो जरासंघ के भय से ऐसे ही उसकी अधीनता मानने लगे थे। काशीराज तो उसकी दोनों माताओं के पिता ही थे, किंतु जरासंध ने उनको भी अपनी शक्ति से पराभूत करके अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश कर दिया था।

इस समय शूरसेन जनपद का यादवगण ऐसा प्रबल राज्य था जो जरासंध की अधीनता नहीं मानता था। लेकिन अब जरासंध की बढ़ती शक्ति का सामना करने की क्षमता यादवों में भी नहीं थी। और वह स्वयं भी जरासंध से टकराकर अपनी क्षमता का विनाश नहीं करना चाहते थे।

लेकिन जरासंध की ओर से उनके पास युद्ध अथवा संधि की ललकार आ चुकी थी। मगध के दूतों से वार्ता करने के बाद उग्रसेन ने समस्त यादव

योद्धाओं को एकत्र होकर इस विषय में निर्णय लेने को कहा।

बड़ी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद अंत तक यादवों ने यही कहा कि कीकट देश के उस उद्दंड जरासंध की अधीनता स्वीकार करने से पहले हमें मर जाना चाहिए। मगध के दूतों को यादवगण की ओर से उत्तर दिया गया, ''हम तो राजतंत्र में विश्वास नहीं करते, अत: हम अपने ऊपर किसी राजा की सत्ता स्वीकार करके उसकी आज्ञा का पालन करने को तत्पर नहीं है। यदि मगधराज हमारी मित्रता चाहते हों तो हम उनकी मित्रता स्वीकार करते हैं, लेकिन हमसे किसी प्रकार के कर आदि की आशा उन्हें नहीं करनी चाहिए। हम किसी की अधीनता में नहीं रह सकते....''

इस संवाद का अर्थ एक प्रकार से जरासंध से युद्ध करने के लिए तैयार होना ही था, अत: यादवों ने अपने बल को पूरी तरह से सुसज्जित करना आरंभ कर दिया। जरासंध की ओर से होने वाले प्रबल आक्रमण को ध्यान में रखकर वे और भी बल-संग्रह करने की चेष्टा करने लगे। मध्यदेश में स्थित अनेक राज्यों से उनके निकट संबंध थे। विशेष रूप से शूरसेन जनपद के बाद मध्यदेश में स्थित पंचाल तथा कुरुजांगल जनपद उस समय सबसे शक्तिशाली राज्य थे, और उन दोनों से ही यादवों के निकट संबंध थे। यादवगण के निर्णय के अनुसार, समय पर सहायता का अनुरोध करने के लिए उन राज्यों की ओर दूत भेज दिए गए। पंचाल तथा कुरु राज्य के राजाओं के प्रताप का तूर्यनाद उन दिनों चारों दिशाओं में गूंज रहा था।

वास्तव में कंस के साथ अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह करके जरासंध यादवों से संधि करने को तैयार था। उसने चेदिराज सुनीथ दमघोष को इस संधि के लिए अपने पक्ष का उत्तरदायित्व सौंप दिया था। दमघोष के साथ वसुदेव की दूसरी सबसे सुंदर, कांतिमती भगिनी श्रुतश्रवा का विवाह हुआ था और वह चेदि की महारानी के रूप में यशस्विनी हो रही थी। दूसरी ओर, स्वयं चेदिराज दमघोष को विवश होकर जरासंध की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। तो भी वह यादवगण के हितैषी थे और सबसे बड़ा संयोग यह रहा कि उनके यहां कंस उन दिनों अतिथि के रूप में ठहरा था, जिन दिनों मगधराज जरासंध अपने विजित राज्यों की यात्रा करते-करते स्वयं भी चेदिराज्य में आ पहुंचा था।

वहीं जरासंध के अतिथि-सत्कार में जरासंध और कंस की पहली बार भेंट हुई थी। यादवों के महानायक का पुत्र होने के नाते तो कंस के मन में जरासंध जैसे एकराट् राजा से मिलने का कोई उत्साह नहीं था। किंतु चेदिराज दमघोष के आग्रह की अवहेलना करना भी उसके लिए कठिन ही था। अंत में

उसने चेदिराज की बात मान ली थी।

उसी समय एक घटना हो गई!

सत्कार समारोह के दो ही दिन पहले की बात है—कंस उस दिन प्रात:वेला में ही नदी-तट पर आ गया था। कुछ ही दूर पर उसको एक बड़ा ही विचित्र दृश्य दिखा। नदी के तट पर ही एक अनन्य सुंदरी एकाकी ही सावधान की-सी भंगिमा में खड़ी थी और उसके सामने ही कुछ दूरी पर सन्नद्ध खड़ा एक धनुर्धर प्रत्यंचा पर शर-संधान करके, उस युवती को लक्ष्य बनाकर बाण छोड़ने को ही था! कंस को लगा, आसपास खड़े कई और भी मल्ल योद्धा उस युवती को घेरकर उसका अपहरण करना चाहते हैं। एक पल की भी देर किए बिना सहसा कंस उछला। किसी विशालकाय व्याघ्र की भांति वह एक ही छलांग में उस धनुर्धर पर टूट पड़ा और उसको धराशायी करके उसके ऊपर चढ़ बैठा। साथ ही प्रचंड मुष्टिकाघात से उसने आक्रमणकारी योद्धा को आहत करके उसके दोनों शस्त्र छीन लिए।

किंतु स्वयं कंस संभल पाता कि अचानक ही उसी युवती का चीत्कार-भरा आदेश-सा गूंजा और कंस पर सहसा तीन-तीन मल्लों ने आक्रमण कर दिया। कंस ने तत्काल धनुष-बाण फेंक दिया और उठकर विशालकाय वृषभ की भांति हींसता हुआ उन तीनों मल्लों से एक साथ भिड़ गया। दो को तो उसने अपनी मुष्टिका से ही मार-मारकर धराशायी कर दिया। तीसरे ने उस पर कूदकर उसको कटिभाग से जकड़ लिया। लेकिन कंस किसी की पकड़ में आने को तत्पर नहीं था। उसने सहसा ही पलटकर उस तीसरे मल्ल को भी उठा लिया। सिर के ऊपर नचाया और दूसरे ही पल हुमककर उसे नदी में फेंक दिया। फिर भी वह सावधान खड़ा रहा। उसको शंका थी कि अभी आसपास खड़े अन्य मल्ल भी अवश्य उस पर आक्रमण करेंगे। किंतु अचानक ही उस सुंदरी ने कंस को लक्ष्य करके शर-संधान करते एक अन्य योद्धा को हाथ उठाकर वर्जित कर दिया। और वह योद्धा बाण उतारकर सिर झुकाए कठपुतली की भांति खड़ा रह गया।

कंस को समझ में नहीं आया कि अपहरण करने वाले आक्रमणकारी द्वारा अचानक उसी सुंदरी की आज्ञा पालन करने का क्या आशय हुआ? लेकिन वह कुछ समझ पाता कि सुंदरी मंथर गति से उसकी ओर आई और जरा ही दूर पर ठिठककर उसे देखती रही। उसके बड़े-बड़े आयत लोचनों से मंद हँसी छलक रही थी। बिंबाफल जैसे लाल अधरोष्ठों में भी वैसी ही दबी-दबी हँसी फूट पड़ने को आतुर जान पड़ती थी।

अचानक ही वह अत्यंत मधुर कंठ से बोली, "मैं किस कुल के

S.P.S. Library
Srinagar.

शिरोमणि योद्धा के प्रति आभार प्रकट करूं?''

कंस अवाक् उसकी ओर ताकता ही रह गया—ठगा-सा।

युवती ने सहज हास्य के साथ कहा, ''अस्तु, मैं अभिनंदन करती हूं। अपना परिचय दें, आर्य!''

''मैं कंस हूं—मथुरा के भोजकुल का यादव कंस। यादवगण के महानायक महाराज उग्रसेन का पुत्र।''

युवती की सुंदर आंखों में अचरज लहरा उठा। बोली, ''स्वागत है, आर्य! मेरे प्रति ऐसा उपकार करने के लिए आभार! किंतु ये सारे योद्धा मेरे ही हैं। हम यहां मात्र अभ्यास के लिए आए थे।''

कुछ लज्जित होकर सकुचाते कंस ने कहा, ''मेरे कारण देवी के कार्य में बाधा पड़ी। क्षमा चाहता हूं।''

''आपने तो उपकार के ही भाव से रक्षा करने की चेष्टा की है! हम आभार प्रकट करते हैं।''

कंस ने सकुचाते-सकुचाते कहा, ''अपराधी होकर भी क्या मैं देवी का परिचय पाने योग्य हूं?''

वह फिर हँसी। बोली, ''मेरी अशालीन वृत्ति के लिए क्षमा करें। हम जानते हैं कि मथुरा के युवराज हमारे हितैषी चेदिराज के अतिथि हैं! हमारी फिर से भेंट होगी ही!'' कहती-कहती वह फिर हँस दी और कंस को अप्रतिभ-सा छोड़, तुरंत ही पलटकर चली गई।

उसके पीछे-पीछे उसके सभी अनुचर योद्धा तथा मल्ल भी वहां से चले गए।

कंस उस अनिंद्य सुंदरी का परिचय पाने को आतुर हो उठा। वह और कहीं होता अथवा उस सुंदरी की जगह कोई और ही होता तो कंस उसको कभी इस अशिष्टता के लिए क्षमा न करता; लेकिन उस विलक्षण युवती पर कंस को क्रोध नहीं आया। वह बस, व्यग्र-सा होकर सोचता रहा—'क्या सचमुच उसको फिर से इस अप्सरा का दर्शन होगा?'

उसने एक बार सोचा कि चेदिराज से ही सारी बात कहकर उस कमनीय युवती के विषय में प्रश्न करेगा। हो सकता है कि चेदिराज उस युवती के विषय में कुछ बता ही सकें। किंतु लौटकर वह जब अतिथिशाला में पहुंचा तो सुना कि चेदिराज को अभी-अभी मगधराज के शिविर की ओर जाना पड़ा है। कंस कुछ विचलित-सा होकर अपने कक्ष में बैठा रहा। उसका मनोरंजन करने को तत्पर गंधर्वियों का दल आ पहुंचा। इठलाती, बलखाती गंधर्वी नर्तकियां सहसा ही मादक, लचकभरी देह का अनुपम लावण्य बिखराती हुई, नूपुरों को

झनकारती कंस को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगीं, किंतु कंस ने दो ही पल बाद कठोर स्वर में उन सबको वहां से जाने की आज्ञा दे दी। वे डरी-डरी-सी प्रणाम करके चुपचाप चली गईं।

कंस ने अचानक सोचा—उनका क्या दोष! उसका मन प्रातवेला में ही उस अनिंद्य रूपसी का दर्शन पाकर प्रसन्न हो गया था। और वह अपनी प्रसन्नता का पुरस्कार देने को उत्सुक था! उसने तत्काल परिचारिका को भेजकर गंधर्वियों को फिर बुलवाया और बिना गिने मुट्ठी भर-भरकर स्वर्णमुद्राएं उन पर बरसा दीं। नर्तकियां 'मथुरा के युवराज' की कीर्ति गाती चली गईं। तब कंस ने हँसकर अपने मुख्य परिचारक से कहा, "इन राजाओं को तो गणों में भी 'युवराज' की ही धुन लगी रहती है। कुछ जानते ही नहीं कि गणों में 'युवराज' नहीं होते।"

लेकिन कुछ ही समय पूर्व, प्रातवेला में, नदी के तट पर उस सुंदरी ने भी 'युवराज' ही कहकर तो उसका अभिनंदन किया था! उस समय कंस को पहली बार लगा था कि 'युवराज' शब्द इतना मीठा भी हो सकता है!

फिर मगधपति के स्वागत में वह विशाल सत्कार समारोह हुआ था। जीवन में पहली बार कंस को अपनी मथुरापुरी का सारा वैभव उस समारोह के सामने फीका-सा लगा! लेकिन कंस को तो अपना जीवन भी उस समय एकदम फीका ही लगा, जब उसने समारोह में उन दोनों युवतियों को देखा! वे दोनों मानो देवकन्याएं हों। ऐसा रूप! ऐसा दिव्य सौंदर्य! ऐसा मादक यौवन! कंस एकटक उन्हें निहारता ही रह गया। पल-भर को लगा कि वह सपना देख रहा है—यथार्थ में तो यह सब संभव नहीं हो सकता!

विराटकाय महामल्ल मगधराज जरासंध के साथ आई वे दोनों सुदरियां तो मानो समारोह का प्राण ही थीं! कंस ने पहचाना तो और भी व्यग्र हो उठा! तो वह अनिंद्य रूपसी जरासंध की लोकविख्यात ज्येष्ठा राजदुहिता अस्ति स्वयं ही थी! इस समय दूर आसन पर बैठी वह अपनी भगिनी से कंस की ओर संकेत करके कुछ कह रही थी। देखकर कंस विचलित हो उठा। निश्चय ही वह आज ही सवेरे-सवेरे कंस की ओर से किए गए उस मूर्खतापूर्ण पराक्रम की बात बताकर हँस रही होगी। कंस उदास हो गया। उसने आज कैसी भूल कर दी! जरा तो सोचा होता कि वह धनुर्धर शरसंधान कर रहा था तो वह सुंदरी इस तरह से शांत कैसे रह सकती थी? किंतु उसके विलक्षण रूप-यौवन की चकाचौंध में भरमाए कंस को इस तरह तर्क करने का अवकाश ही कहां रह गया था उस समय....

इस समय उस मूर्खता के लिए लज्जित कंस का मन हुआ कि उठकर वहां से चला आए, किंतु समारोह से इस प्रकार उसका उठकर चले जाना चेदिराज को अपमानजनक लग सकता है और उनका महामाननीय अतिथि मगधराज जरासंध भी तो ऐसी अवमानना सहन नहीं कर पाएगा! कंस ने अंत तक वहीं बैठे रहने का निश्चय किया—किंतु चेदिराज अथवा जरासंध के अपमान के भय से नहीं, वरन् यह सोचकर कि वहां रहेगा तो कम से कम कुछ देर तक तो उन दोनों दिव्य सुंदरियों को और देख सकेगा!

और उसके बाद तो सब कुछ इतनी तीव्रता से घटित होता रहा कि स्वयं कंस कुछ नहीं समझ पाया। वह इस बार अपने जीवन की सबसे उत्तम यात्रा पर आया है—विश्वास नहीं आया! वृष्णिकुल के जमाता चेदिराज के मन में उन भोजकुल के यादवों का हित करने की ऐसी कामना होगी, यह तो कंस को कल्पना ही नहीं थी। यदि वह चाहते तो उसके स्थान पर स्वयं अपने प्रिय वसुदेव का ही विवाह करवाने की ठानकर उन पर विशेष उपकार कर सकते थे! वसुदेव तो ऐसी भी महापराक्रमी माने जाते हैं। फिर कुरुकुल में राजा वाह्लीक की पुत्री रोहिणी और उसकी चार-चार अनुजाओं से विवाह करके तो वह और भी शक्तिशाली माने जाने लगे हैं....किंतु कंस को कुछ ऐसा आभास होता रहा कि निश्चय ही मगध की उस ज्येष्ठा राजदुहिता अस्ति जैसी मत्त-काशिनी दृप्तयौवना ने कंस के पराक्रम को ही लक्ष्य करके स्वयं उसको पति के रूप में पाने का निश्चय किया होगा। यह सब जरासंध उसके लिए ही कर रहा होगा! फिर कंस मथुरा के महानायक का पुत्र होने के कारण उनकी दृष्टि में 'युवराज' ही होगा न! कंस को हँसी आई, लेकिन उसने अपना भाग्य सराहा।

तो भी कंस को उस प्रंसग में घोर पीड़ा सहनी पड़ी। चेदिराज की ओर से सब कुछ निश्चित-सा कर देने पर भी उस समय कंस को मात्र इतना ही आश्वासन मिला कि चेदिराज की ही कृपा से अस्ति से कंस की भेंट राजप्रासाद में ही करवाई गई।

अस्ति के साथ उसकी परम सुंदरी सखी भी थी- अंजलिका। कंस को जीवन के विशिष्ट अनुभव प्राप्त हो चुके थे। उसने देखते ही अनुमान लगा लिया कि राजदुहिता की यह सखी वास्तव में कोई अप्सरा अथवा कम से कम गंधर्वी तो होगी ही। वह प्रभावित ही हुआ। जरासंध जैसे बलशाली सम्राट् के लिए कुछ भी असंभव नहीं हो सकता। दिग्विजेता ने कभी किसी गंधर्वलोक को भी जीता होगा, लेकिन उसको याद नहीं आया कि दक्षिण में कहीं कोई

ऐसा गंधर्वलोक हो। गंधर्व तो विशेषकर अपने लोक कुरुजांगल जनपद के उत्तर में बसाना हितकर मानते रहे हैं। कौन जाने पर्वत तथा शीत ऋतु का आकर्षण ही इसका कारण हो। और कुरुओं से गंधर्वों का वैर होना भी इसका एक कारण हो सकता है। पहले तो वे लोग आकर गंगा और यमुना के तट तक बसने लगे थे, फिर न जाने क्या हुआ कि उनका विस्तार रुक ही गया। ऐसे तो कहा जाता है कि प्राचीन काल में—त्रेता युग में तो दूर-दक्षिण के लंकाद्वीप तक गंधर्वों की पहुंच थी। राक्षसराज लंकेश्वर रावण ने तो कितने ही लोकों को जीता था। उसके भ्राता विभीषण की पत्नी सरमा तो गंधर्वी ही थी।

मगध की दोनों राजपुत्रियों को मौन देखकर मात्र वार्ता का आरंभ करने के लिए ही कंस ने सहसा कहा था, ''अप्सरा और गंधर्वियां तो नृत्य में पटु होती हैं। देवी ने संभवत: इनसे ही नृत्य की शिक्षा ली होगी!''

अस्ति ने विहँसकर अपनी कोमल काया को हलकी-सी गति दी तो कंस को लगा मानो स्वयं वह सिर से पांव तक हिलकर रह गया हो। अस्ति ने अपनी अनुजा की ओर देखकर कहा, ''लगता है, स्वयं युवराज की भी नृत्यांगनाओं में विशेष रुचि है। यह हमारी सखी अंजालिका वास्तव में अप्सरा ही है, युवराज! फिर गंधर्वलोक की रानी भी रह चुकी है। उसके बाद और कहां-कहां रही, सो लंबी बात है, किंतु अब यह मानिनी हमारे ही एक योद्धा बाहुक की प्रिया है और मानवी है! हां, युवराज को यह सुनकर अवश्य प्रसन्नता होगी कि हमारी सखी इस अप्सरा अंजलिका ने अपने को मानव संस्कृति की पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है और अपने पति बाहुक के लिए न जाने कितने वर्षों तक आर्य वधुओं की भांति अटल व्रत करते हुए पुरुष के बिना ही रहने का निश्चय कर लिया था, सो हमारी अनुजा को इस पर तरस आ गया। इसने महाराज से अग्रह करके इसके पति से इसको मिला ही दिया है। अब वह भी चेदि से हमारे साथ ही मगध जाएगा।''

प्राप्ति एकटक कंस की ओर निहारती मुग्ध-सी बैठी थी। कंस की आंखें उसकी ओर गईं तो वह सहसा ही हँस दी और लजाती-सी नीचे निहारने लगी।

सुंदर! अति सुंदर! कंस ने मन ही मन सराहना की। पल-भर के लिए उसे इसका भी विवेक नहीं रहा कि सामने बैठी इन दोनों सुंदरियों में से वह किसको पाना चाहेगा। अस्ति उसको उत्तेजना के शिखर पर ले जाती लगी तो प्राप्ति नारीत्व का कोमलतम श्रृंगार जान पड़ती थी। उसका मोह तो मानो कंस को कहीं का नहीं रखेगा। वह सतर्क होकर अस्ति की ओर देखने लगा था।

कंस के मन की बात मानो अस्ति ने भांप ली हो। हँसती हुई बोली, ''युवराज, क्या हमारी प्राप्ति को आंक रहे हैं? वह किसी अप्सरा को भी अपने

नृत्य-कौशल से प्रतिहत कर सकती है! हमारी अनुजा हमारे यहां नारीत्व की पराकाष्ठा मानी जाती है।'' अटककर अस्ति ने प्राप्ति की ओर देखा और लहरा-लहराकर हँसने लगी। फिर अकस्मात् ही बोली, ''बस, इसका एक ही दोष है कि जिसको अपना लेती है, उसको फिर अपना बंदी बनाकर ही रखती है। हमारी अंजलिका को ही देखिए। पति के लिए तरसती रहती थी, किंतु अब उसको पा लेने के बाद भी यह प्राप्ति से विलग होने को तैयार नहीं।''

प्राप्ति कीकट संस्कारों के विपरीत, सर्वथा ही आर्य ललना लगी। वह आंखें झुकाए मुसकराती रही। हां, रह-रहकर मानो लालच पर नियंत्रण नहीं रहता तो चपल नेत्रों से कंस को देख लेती थी।

कंस ने अपने को सहज रखने के लिए मानो अपनी आंखों को बरबस ही अप्सरा अंजलिका पर गड़ा दिया था। अस्ति से बोला, ''देवी, आपने अपनी अनुजा के लिए जो कहा, वही बात कोई स्वयं ज्येष्ठा राजदुहिता के लिए भी तो कह सकता है न।''

अस्ति ने सहसा ही क्रूर होकर कहा, ''हमारे महाराज जरासंध ने निश्चय कर लिया है कि जो भी पराक्रमी उनकी दुहिताओं को जीतकर ले जाएगा, उसको ही अपना जामाता बना लेंगे।'' फिर मधुर हँसी के साथ बोली, ''अब युवराज यदि हममें से किसी को पाना चाहते हों तो महाराज के समक्ष इतना ही सिद्ध करना होगा कि युवराज ने किसको जीतकर अपना लिया है।''

कंस चुप बैठा अपलक अंजलिका को निहारता रहा। उसको कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। अस्ति ने तो मानो जानबूझकर ऐसे संकट में डाल दिया कि कंस की सारी चातुरी इस समय राह खो बैठी थी।

वह एकटक पहले की तरह अंजलिका की ओर ताकता रहा। उसे यह सुधि नहीं थी कि उसका इस प्रकार अंजलिका को देखना कोई और ही अर्थ दे सकता है! सुधि आई तब, जब अस्ति ने मुखर होकर खनकीली हँसी के साथ कहा, ''क्षमा करें, युवराज। हमारी सखी यह सती अप्सरा इस प्रतियोगिता से अलग ही है। महाराज की आज्ञा से इस समय यह हमारी मात्र अनुचरी और संरक्षिका बनकर आई है। आपको जीतना ही है तो फिर हम दोनों युवतियों में से ही किसी को जीतना होगा अथवा युवराज का सामर्थ्य हो तो हम दोनों को ही जीतकर पा सकते हैं!''

कंस अवाक् होकर अस्ति की ओर ताकता रह गया, फिर लज्जित-सा होकर बोला, ''आपकी सती अप्सरा तो, देवी, मात्र इस समय मेरे मन का तनाव दूर करने का एक आधार मात्र है। उसका अवलंब लेकर मैं सोच रहा था कि जिन अपरूपा राजकन्याओं को केवल भाग्य ही जीत सकता हो, उनको

जीतने के लिए मगधपति किसी सामान्य मानव को अवसर देकर भी कितना उपहास करते हैं! यह मेरा भाग्य तो हो सकता है कि महाराज ने मुझे अपनी राजदुहिताओं को पाने के लिए एक अवसर दिया, किंतु मेरे समक्ष ऐसा कोई उपक्रम तो नहीं है कि राजकन्याओं को जीतकर किस प्रकार उनको अपने साथ ले जाना होगा। यदि स्वयंवर होता अथवा कोई वीर्यशुल्क निर्धारित होता तो मैं पराक्रम करता, किंतु....''

अस्ति ने सहसा कहा, ''मगधपति का तो कहना यही रहा है कि जो उनकी कन्याओं को भाग्य से छीनकर ले जाएगा, वही उनका योग्य पति होने का दर्प कर सकता है।''

कंस अवाक् देखता ही रहा।

वह कोई उत्तर नहीं सोच पाया था कि अचानक ही अंजलिका ने धीरे से अस्ति के निकट जाकर कुछ कहा। उसकी मधुर सुरीली आवाज तो सुनाई दी, फिर भी उसके शब्द पकड़ में नहीं आए। कंस ने कुछ कहने की सोची ही थी कि सहसा अस्ति ने उठकर कहा, ''युवराज से अब क्षमा चाहते हैं हम। फिर दर्शन होंगे। महाराज की ओर से आदेश था कि अब चेदिराज के माध्यम से ही हमारा संवाद प्राप्त होगा इस विषय में।''

कंस कहना चाहता था कि क्या मेरे भाग्य के पक्ष में कुछ निर्णय होगा? किंतु अपने गौरव के अनुसार चुप ही रहना ठीक मानकर वह भी उठ खड़ा हुआ। बोला, ''मेरी ओर से तो राजदुहिताओं की इस उदार भेंट को स्थायी बना देने का प्रयास चलता ही रहेगा।''

अस्ति ने हँसकर कहा, ''हमारी शुभकामनाएं युवराज के साथ रहेंगी!''

प्राप्ति ने बस, एक बार कामना-भरी आंखों से कंस की ओर निहारकर ही मानो अपनी भावनाएं भी जता दीं। और अंजलिका ने नतशीश होकर प्रणाम करते हुए कहा, ''युवराज युगों तक अपनी कीर्ति-पताका फहराते रहें, हमारे महाराज को भाग्य पर नहीं, पौरुष पर विश्वास है। उनका कहना है कि पौरुष ही तो भाग्य होता है। युवराज पराक्रमी तो हैं ही, अब भाग्य को जीतकर सफलता प्राप्त करें!''

अस्ति ने हँसकर कहा, ''हमारी यह सती अप्सरा अंजलिका आज पहली-पहली बार किसी परपुरुष के सामने इस प्रकार मुखर होकर बोली है, युवराज। यह आपकी ही अनुकंपा का फल होगा!'' फिर अंजलिका से बोली, ''किंतु अंजलिका, क्या तुझे तेरी सखी ने ऐसी सीख दी थी कि युवराज की कामनाओं के अनुरूप बात करके उनकी अनुकंपा पाने के लिए हमारी ओर से आग्रह करे?''

रूपाभा की चकाचौंध से कंस को विचलित करके तीनों सुंदरियां अपनी हँसी के कलरव से सारे प्रासाद को गुंजारित करती चली गईं। ऊपर से नीचे तक तर कंस मन ही मन प्रण ठानकर बैठ गया कि इन दोनों को ही जीतना होगा। कहां तो कंस उन युवतियों से बचना चाहता रहा होगा कि वह जरासंध के अंत:पुर की हैं और उनके कीकट संस्कारों को और तो चाहे सभी अपना लें, लेकिन स्वयं महाराज उग्रसेन और उसकी अपनी अंबा ही नहीं स्वीकार कर पाएंगी, लेकिन अब कंस को मात्र इतना ही याद रह गया कि पराक्रम के बल पर किसी भी प्रकार उन दोनों ही रमणियों को जीतना ही होगा। संसार को कोई भी बाधा अब कंस को नहीं रोक पाएगी!

तीन

अंजलिका वास्तव में अप्सरा थी और उस कुल के गंधर्वों के साथ रहती थी जो हस्तिनापुर के प्रचंड कुरु योद्धा भीष्म के भय से दूर सरस्वती के तट पर जाकर बस गए थे। वहां से ही वह अपने संगी गंधर्वों के साथ यात्रा करती-करती पहले तो गांधार जाकर रही, फिर वहां से उसको मद्र देश का रोमक अपने साथ लेकर मद्र चला आया था। किंतु मद्र में अंजलिका को अप्सरा होने के कारण बारबार जाकर अनेक योद्धाओं की सेवा में रहना पड़ता था। अप्सरा होने पर भी अंजलिका तन-मन से रोमक को ही चाहती थी, किंतु अप्सरा को विवाह का अधिकार तो उन दिनों भी नहीं था। उसने मद्रराज की शरण भी ली, पर वहां भी धर्माधिकारियों ने यही निर्णय दिया कि 'वह अप्सरा है और उसको नियमत: किसी भी एक पुरुष की पत्नी के रूप में रहने का अधिकार नहीं मिल सकता। अप्सरा तो सर्वभोग्या ही होती है!'

रोमक और अंजलिका ने मद्र से भागकर फिर से गांधार अथवा कहीं और ही चले जाने का निश्चय किया, किंतु मद्र के कई राजपुरुष अंजलिका की विलक्षण सुंदरता के कारण उस पर आसक्त थे, अत: उसके प्रेमिक-पति रोमक के जीवन पर ही प्रहार किया जाने लगा। उस समय संयोग से मद्र के अपराजेय योद्धा राजपुत्र शल्य ने एक दिन अप्सरा अंजलिका को बरबस ही पकड़कर ले जाते सैनिकों को रोककर उसका उद्धार किया। फिर उसकी व्यथा-कथा सुनी। उनको दया आ गई। उन्होंने तत्काल ही अपने पांच योद्धाओं को उनके साथ कर दिया और अपने कोष से उनको सौ स्वर्ण मुद्राएं भी दीं और उन्हें महानद सिंधु के उस पार कुरुजांगल की सीमा में छोड़ आने का आदेश दिया।

रोमक के कहने पर अंजालिका स्वयं राजपुत्र शल्य के कक्ष में गई और अपनी रक्षा के कारण परंपरागत रूप से अपने रूप-यौवन से उनका सत्कार करने की कामना प्रकट की! मद्र के युवराज शल्य ने उस पर प्रसन्न होकर उन दोनों को और भी उपहार दिए और अपनी रक्षा के अधीन वहां से सीमा पार पहुंचवा दिया तथा उनको किसी भी प्रत्युपकार के भार से मुक्त होकर, आर्यविधि से विवाह करके जीवन बिताने का परामर्श दिया। उनका कहना था कि कुरुजांगल राज्य में अब यदि कोई युवती पूर्णत: सुरक्षित है तो इसी विधि से विवाहित होने पर। कम से कम वहां अब भी पत्नी को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। किसी की पत्नी अप्सरा हो अथवा गंधर्वी— उसके अतीत को नहीं देखी जाती। उन्होंने उदाहरण के रूप में स्वयं कुरुराज्य की महारानी सत्यवती का नाम लिया था, जो वास्तव में मीन-मत्स्य से जीविका अर्जित करने वाले एक दाश (धीवर) की पुत्री थी, फिर भी महाराज शांतनु से विवाह होने के बाद वह विशाल कुरुराज्य की महारानी के रूप में सर्वसाधारण के ही नहीं, राजा शांतनु की पूर्वपत्नी देवी गंगा के पुत्र महान् योद्धा भीष्म तक के प्रणाम से सत्कृत होती है। वहीं जाकर तुम दोनों सुख से जीवन बिता सकते हो।

किंतु अंजलिका के भाग्य में उस समय भी सुख नहीं था।

महानंद सिंधु पार करते ही वे दोनों फिर गंधर्वों के एक और लोक में पहुंच गए। वहां उनका सत्कार तो हुआ, किंतु अंजलिका और रोमक को उनकी कामना के अनुसार स्वतंत्र रहकर जीने का अवसर नहीं मिला। गंधर्वराज ने स्वयं अंजलिका को अपनी पत्नियों के समूह में मिला लिए जाने की आज्ञा दे दी। और विपन्न अंजलिका को वहां फिर अपने प्रियतम रोमक से विछोह की यातना सहने को विवश होना पड़ा।

मगध का बाहुक उन्हीं दिनों अपने साथ मगध से अनेक विचित्र शस्त्रास्त्र लेकर सिंधु-तट पर आया हुआ था। वह वास्तव में योद्धा ही था, और उन दिनों एक सार्थ में स्वयं सार्थवाह का अंगरक्षक बनकर उत्तर-पश्चिम के जनपदों की यात्रा पर आया था।

अंजलिका को कुछ पता नहीं था कि अब रोमक कहां है। गंधर्वराज की ज्येष्ठा रानी उसकी यह अद्‌भुत प्रेमलीला देखकर हँसती-हँसती उससे बोली थी, "तू तो अप्सरा होकर भी उन हीन आर्यों की भांति अपने को किसी की पत्नी बनाकर देवी का-सा गौरव पाना चाहती है। अरे, हम कोई तुझसे हीन तो नहीं हैं। हमारे गंधर्वराज का प्रताप इन आर्यों से कई गुना अधिक है। ये तो हमारी पूजा करते हैं। तू हमारे साथ रहकर उस रोमक को भूल जाएगी, और हित तो इसी में है कि उसको तू अब भूल ही जा!"

और एक दिन उसी रानी ने अंजलिका को बताया था, ''तेरा रोमक अब यहां से चला गया है। गंधर्वराज ने उससे कहा था कि यदि वह अब भी तुझे चाहता है तो फिर मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तत्पर हो जाए। और यदि अपना जीवन चाहता हो तो फिर हमारे दक्षिण की यात्रा पर जाने वाले दल के साथ आज ही यहां से सुरक्षित, अपना प्राण लेकर चला जाए!''

गंधर्वी महारानी हँसकर बोली, ''और रोमक ने अंजलिका अर्थात् 'मृत्यु' की अपेक्षा बुद्धिमान व्यक्ति की भांति अपने प्राण को ही चुना....अब तो वह कहीं दूर देश में, किसी और प्रेयसी के साथ रमण करता होगा।''

अंजलिका ने यह सुनने के बाद अपने जीवन से उकताकर स्वयं प्राण दे देने का निश्चय किया। लेकिन वह कुछ कर पाती कि अकस्मात् उस दिन मगध के योद्धा बाहुक ने उसको सिंधु नंद के तट पर स्नान करती देख लिया। अनुरक्त की भांति उसके पीछे-पीछे वह भी गंधर्वलोक में आ पहुंचा। गंधर्वलोक में किसी एकाकी पथिक का प्रवेश वर्जित नहीं रहता था। उन दिनों गंधर्वियों और अप्सराओं के कारण नित्य कितने ही यात्री उनकी बस्ती में आया करते थे, जो किसी न किसी प्रकार से उनके लिए लाभ के कारण बनते थे। ऐसे यात्रियों से उनकी युवतियां न जाने कितने प्रकार की सामग्री एकत्र कर लेती थीं। और कभी-कभी तो वे अप्सराओं की भांति किसी-किसी यात्री से अपार धन भी ऐंठ लेती थीं। ऐसे यात्रियों पर कोई वैसी रोक नहीं होती थी, किंतु उन पर दृष्टि तो रखी ही जाती थी। ऐसे कितने ही यात्री अनेक बार किसी गंधर्वी अथवा अप्सरा को लोभ दिखाकर, उनको अपने साथ कहीं और भाग जाने को विवश कर देते। ऐसे अपराधी प्रवासी के लिए गंधर्वराज की ओर से कठोर दंड की व्यवस्था भी थी।

अंजलिका को उस समय तक गंधर्वराज की पत्नी का पद अवश्य मिल गया था, तो भी उसे अब तक रानी की-सी गरिमा और आदर नहीं प्राप्त हुआ था। ऐसे तो उस गंधर्वलोक की रानियां भी हर प्रकार से उन्मुक्त भोग-विलास के लिए स्वतंत्र थीं....हां, उन पर अधिकार राजा का ही होता था— गंधर्वों में स्त्री के ऐसे मुक्त आचरण को दोष नहीं माना जाता था।

किंतु अब तक अंजलिका को ऐसी स्वतंत्रता भी नहीं मिली थी। किसी अन्य क्षेत्र से आए हुए यात्री का मनोविनोद करने के लिए अभी उसे राजा से अनुमति लेनी पड़ती थी।

बाहुक के मन में अपने प्रति गहन आसक्ति की प्रतीति तो अंजलिका को हो ही चुकी थी। नदी-तट से गंधर्वों के लोक में पहुंच जाने पर अंजलिका ने एक निर्जन स्थान पर ठहरकर उसकी प्रतीक्षा की।

बाहुक निकट आकर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया। अंजलिका ने हँसती आंखों से उसकी ओर निहारा तो वह निहाल होकर अपलक उसी की ओर ताकता खड़ा रहा। अंजलिका ने उसका परिचय पूछा तो वह बोला, ''अब तो मात्र इतना ही परिचय है कि मैं यहां की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का दास हूं।''

अंजलिका को इतने दिनों के बाद हँसी आ गई। वह तो रोमक की याद से ही विकल रहती थी। बोली, ''तो तुम्हारी सर्वश्रेष्ठ सुंदरी ने तुमको अपने साथ इस काल के गाल में आने को कहा था क्या?''

बाहुक ने कहा, ''उनकी तो नहीं जानता किंतु मेरे रोम-रोम ने कहा कि यही करना उचित होगा!''

''न करना अनुचित तो नहीं होता न?''

बाहुक उसकी ओर अवाक् देखता ही रह गया।

अंजलिका ने कहा, ''मैं यहां के गंधर्वराज की रानी हूं!''

बाहुक ने धीरे से कहा, ''तो रानी का दास हूं मैं!''

अंजलिका हँस दी। बोली, ''राजा क्या करेंगे?''

''राजा स्वामी हैं! मैं तो दास हूं न!''

अंजलिका ने मुखर होकर कहा, ''तुमको रानी से क्या चाहिए?''

और तो क्या कहता बाहुक! बोला, ''मैं तो दास हूं। रानी स्वयं ही मेरी आवश्यकता हो सकती है....हां, रानी ही चाहिए मुझे!''

''तो राजा का क्या होगा?''

''सो नहीं जानता।'' कहकर बाहुक ने अंजलिका के निकट आकर कहा, ''यदि आपकी आज्ञा हो तो फिर राजा से ही बात करके देखूं।''

अंजलिका आंखें फैलाए उसकी ओर निहारती ही रह गई। कुछ देर सोचकर बोली, ''क्या बात करोगे?''

''कह दूंगा कि रानी मुझे चाहिए।''

''तो?''

''तो क्या? राजा से कहूंगा कि अपनी यह रानी मुझे दे दो। मैं उसका दास हूं। वह मेरी रानी होगी।''

अंजलिका तो वस्तुतः उस समय मरने की ही सोचकर निकली थी। इस अनोखे योद्धा को बिना एक शब्द कहे अथवा कोई आग्रह किए ही उसने अपने आसपास मंडराते देखा तो मरना भूलकर वह वापस लौट पड़ी थी। न जाने उसको अंत तक अपने प्राणों का मोह जाग उठा, इस कारण लौटी थी, अथवा इस विचित्र योद्धा की प्राणरक्षा की सोचकर! किंतु यह तो ऐसा है कि लगता है, अपने प्राण के विषय में एक पल को भी सोचता ही नहीं! उसके पीछे-

पीछे निर्भीक-सा गंधर्वलोक में प्रवेश कर गया था! इसी कारण बीच ही ठिठककर अंजलिका उससे बात करने लगी थी। उसकी सरल-सीधी बातों में कुछ ऐसा था कि अप्सरा अंजलिका का मन एक बार फिर जीवित रहने को ललक उठा। लेकिन वह कितनी ही अच्छी बातें कर लेता हो, अंजलिका को भय था कि उसकी बातों से गंधर्वराज का मन तो इतना कोमल होकर उसके हित की बात नहीं सोचेगा न! तो?

कुछ सोचकर अंजलिका बोली, ''अब तुम क्या करोगे? मैं तो अब राजा के भवन में चली जाऊंगी।''

इतनी देर से मानो स्वप्नलोक में विचरण करते बाहुक को कल्पना ही नहीं थी कि ऐसा भी कुछ हो सकता है। वह निर्वाक, एकटक अंजलिका की ओर ताकता रहा।

तभी किसी की आहट सुनकर अंजलिका बोली, ''कोई आ रहा है! तुम चाहो तो गंधर्वराज से मिलने आ सकते हो, किंतु याद रखना कि मैं सचमुच रानी हूं....अवसर मिला तो मैं स्वयं गंधर्वराज से कहकर अपने लिए एक दास मांगूंगी....उस समय सुयोग होगा तो तुमको ही अपना दास बनाने को कहूंगी।''

और वह बाहुक को कुछ कहने का अवसर दिए बिना वहां से सीधे राजभवन की ओर चली गई।

जो हो रहा था, वह स्वयं अंजलिका को ही सपने जैसा लग रहा था! वह तो रोमक को खो देने के बाद से विक्षिप्त-सी होकर मनमानी करती रहती थी। क्या करना चाहिए....अथवा क्या करने से, क्या परिणाम होगा—इसकी न तो उसको चेतना थी, न विवेक ही।

उसी संध्या को अवसर मिला तो ज्येष्ठा गंधर्वी रानी ने उसको बुलवाकर कहा, ''तू तो बड़ी चतुर निकली, अंजलिका! तूने अपने लिए ऐसा योद्धा ग्राहक खोज लिया! तेरा 'वह' आज अपने सार्थवाह के साथ गंधर्वराज से मिलने आया था। उसने राजा से निवेदन किया कि गंधर्वराज या तो उसे यहीं अपनी कनिष्ठा रानी का दास बनाकर रख ले अथवा उसकी कामना पूरी करने के लिए उचित मूल्य लेकर रानी को ही यहां से जाने दे....''

''फिर?'' अंजलिका ने धड़कते हृदय से पूछा, ''फिर?''

महारानी ने ईर्ष्या से उसकी ओर देखकर कहा, ''उसके पास मगध के अनेक रत्न थे। उसका सार्थवाह उनको मगध से यहां ले आया था, किंतु हमारे गंधर्वों के पास तो रोज ही ऐसे रत्न आते-जाते रहते हैं। यहां तो रत्नों का कोई अभाव नहीं!''

''तो राजा ने क्या आज्ञा दी?'' अंजलिका धड़कते हृदय से बोली, ''इस

अपराध का दंड दिया होगा न उसे?''

''दंड देता तो अच्छा ही रहता, किंतु हमारे गंधर्वराज को....लगता है, तू उतनी प्रिय नहीं है। उन्होंने एक लौहमय धनुष के मोल में तुझे उसी यात्री की दासी बन जाने का आदेश दे दिया!''

अंजलिका उसकी ओर अविश्वास-भरी आंखों से देखती रही। वह गंधर्वराज की इस सर्वांगसुंदरी महारानी के हृदय में अपने प्रति दहकती ईष्या की अग्नि से तो वह परिचित ही थी। जिस दिन से अंजलिका को गंधर्वराज ने अपनी पत्नी बनाने का आदेश दिया है, उसी दिन से महारानी के मन में अंजलिका की दीनता के प्रति जो समवेदना थी वह मानो धुएं के समान उड़ गई थी और उसके स्थान पर घोर ईर्ष्या ने जन्म ले लिया था। और उसी दिन से वह किसी न किसी प्रकार से अंजलिका को नीचा दिखाने का कोई अवसर नहीं चूकती थी। इसी कारण अंजलिका को शंका हो रही थी कि रानी अवश्य अंजलिका को यातना देने के लिए ऐसी बातें कर रही होगी!

ऊपर से व्यथा दिखाती हुई अंजलिका मंद स्वर में बोली, ''एक धनुष मात्र लेकर राजा ने मुझे उस प्रवासी की दासी बना दिया?''

रानी हँस दी और उसकी यातना को दोगुनी करके सुख लेने की कामना से बोली, ''उस सुदृढ़ लौहमय धनुष को तो तू जानती नहीं न! उस धनुष के बदले में तो तेरे जैसी तीन-तीन रानियों को भी देने को तैयार हो जाते गंधर्वराज। तेरा क्या मोल। वह तो उस लौहमय धनुष को पाने के लिए कितने ही दिनों से व्यग्र थे। उनको इन दिनों आर्यों की ओर से निरंतर होने वाले आक्रमणों की चिंता रहती है।''

अंजलिका चुप रही। अपनी ओर से वह महारानी को यही जताना चाहती थी कि यहां का रानी पद छिन जाने से उसको कितनी पीड़ा हो रही है, किंतु इसका महारानी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उलटे वह यही कहती रही कि ''मुझे तो यह आश्चर्य होता है कि तेरे लिए—मात्र तेरे जैसी क्षुद्र स्त्री के लिए मगध का वह मूर्ख योद्धा अपना महाधनुष देने को तत्पर हो गया!''

''मूर्ख तो मूर्ख ही रहेगा!'' कहती-कहती अंत में महारानी ने वार्ता रोक दी और अपनी दासी को बुलाकर कहा, ''तू इसकी श्रृंगार-सामग्री आदि लेकर इसे इसी समय सिंधु-तट के उन व्यापारियों के शिविर पर पहुंचा दे!'' और वह स्वयं चषक उठाकर सुरा-पान करने लगी।

सिंधु-तट पर योद्धा बाहुक बड़ी व्यग्रता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अंजलिका ने उसे दूर से ही देखा तो विक्षिप्त की भांति लपककर उसने आवेश से उमगती अपनी भुजाएं बाहुक के कंठ में डाल दीं और उसके वक्ष से

लगकर रोने लगी।

इतने लंबे वर्षों के बाद जैसे अंजलिका को पहली बार मुक्त जीवन की झलकी मिली, जिसकी कामना लेकर वह न जाने कहां-कहां भटकती फिरी थी! इस बीच उसे जीवन की कितनी ही ऊबड़-खाबड़ वीथियों से गुजरना पड़ा था। अपनी देह को न जाने कितने चाहे-अनचाहे पुरुषों की बाहों में सौंपना पड़ा था। अंजलिका को पहली बार लगा कि बाहुक की निकटता ही वह नियति थी जो अंततः उसका भाग्य संवारने के लिए मिलनी थी!

हारकर अंजलिका ने अपने को बाहुक के सहारे ही छोड़ दिया था।

बाहुक अपने सार्थ सहित मगध पहुंचा। अंजलिका को लेकर अपने परिजनों से मिला। अंजलिका को अब पूरा विश्वास हो गया था कि उसको एक किनारा तो मिल ही गया है! लेकिन वह विश्वास भी एक दिन डगमगा गया।

किसी कारण मगधराज की ओर से बाहुक की खोज हो रही थी। एक दिन कई सैनिक आकर बाहुक को बंदी बनाकर अपने साथ ले गए। परिजनों में से किसी को बाहुक की सुधि लेने का जैसे समय ही नहीं था अथवा इच्छा ही नहीं थी। अंजलिका को विचित्र-सा लगा। वह पहले तो प्रतीक्षा करती रही, लेकिन जब कई दिन बीत गए तो उसने अपने ज्येष्ठ से कहा, ''महाराज की ओर से उनको बंदी बनाकर ले गए हैं, तो उन्हें कुछ कहा तो गया होगा न! कोई अपराध होगा! कि यहां ऐसे ही किसी को भी बंदी बनाकर ले जाने के बाद उसका कोई पता नहीं लगता?''

ज्येष्ठ वज्र वस्तुतः बाहुक का सौतेला अग्रज था। बोला, ''तुमको मगध के विषय में पता नहीं। चुपचाप पड़ी रहो। हम तुम्हारे पालन-पोषण का भार तो उठा रहे हैं। राजा का तो प्रजा पर अधिकार होता ही है। उससे कोई प्रश्न नहीं कर सकता।''

अंजलिका को न जाने कितने राज्यों से होकर यहां आना पड़ा था। कितने ही राज्यों में तो उसको यातना ही यातना सहनी पड़ी थी, किंतु कहीं ऐसा तो नहीं देखा कि किसी को ऐसे ही मार दिया जाता हो, और उसके परिजनों अथवा उसके पति या पत्नी को भी उसके विषय में सूचना तक न दी जाती हो! बोली, ''यदि उनका पता नहीं लगता तो मेरा पालन करने के लिए आपको कोई भार नहीं लेना होगा। राजा से कोई प्रश्न करे अथवा नहीं, मैं करूंगी। आप तो पता लगाकर बस, मुझे इतना बता दें कि उनके साथ हो क्या रहा है?''

वज्र ने कहा, ''यह हमारे वश का नहीं। हमने तो राजपुरुषों से स्पष्ट कह

दिया है कि बाहुक वर्षों से न जाने कहां-कहां, क्या-क्या करता फिरा है। हमको उसका कुछ पता नहीं। हां, यदि उस पर किसी प्रकार का दंड हो तो उसके भ्राता के रूप में हम उसका आर्थिक दंड भी भर देने को प्रस्तुत हैं। किंतु महाराज की ओर से कोई सूचना नहीं दी जाती। राजपुरुषों ने उसको बंदी बनाकर राजा के सामने उपस्थित कर दिया था, बस!''

धीरे-धीरे कोई तीन महीने बीत गए। बाहुक का कुछ पता नहीं लगा। अंजलिका निराशा से टूट-सी चली। उसको लगा कि वह जीवन को व्यर्थ ही ढो रही है। उसके भाग्य में सुख के साथ कोई पुरुष लिखा ही नहीं है। उसने अपने दुर्भाग्य के कारण अब तक न जाने कितने पुरुषों का विनाश करवा दिया है!

अंत तक अंजलिका ने निश्चय कर लिया कि उसका जीवन तो अब नष्ट हो ही चुका है। और जीने की उसे लालसा ही कहां रही! तो फिर वही जाकर महाराज की राजसभा में दुहाई देगी। कौन जाने, महाराज को उस पर दया आ ही जाए!

किंतु महाराज जरासंध उन दिनों अतिथि के रूप में विदर्भ राज्य की यात्रा पर थे। अंजलिका ने जब महाराज का दर्शन करने की इच्छा से जाकर राजप्रासाद पर दुहाई दी तो सैनिकों ने उसको घेरकर उससे प्रश्न पर प्रश्न करना आरंभ कर दिया। अंजलिका ने अपनी ओर से केवल इतना ही कहा कि वह महाराज की प्रजा है और इस समय अपने पति की प्राणरक्षा के लिए आग्रह करने आई है। यदि महाराज का दर्शन नहीं होगा तो वह यहीं प्राण दे देगी।

उसकी विलक्षण सुंदरता से योद्धाओं का मन आसक्ति की सीमा तक आतुर हो रहा था। वे किसी प्रकार उसका हित तो करना चाहते थे, किंतु महाराज राजधानी गिरिव्रज में नहीं थे, ऐसे में वे कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें।

अंत में उनके प्रमुख ने कहा, ''इसको महाराजपुत्री के समक्ष ले जाओ। उनका जो आदेश होगा, वही किया जाएगा।''

महाराजपुत्री अर्थात् मगध की ज्येष्ठा राजपुत्री देवी अस्ति।

सैनिकों ने अनुमति लेकर राजपुत्री के समक्ष उस अपरूपा अप्सरा को प्रस्तुत किया तो दोनों कुछ पलों के लिए एक-दूसरी की ओर ठगी-सी निहारती ही रह गईं। उन दोनों को ही कल्पना नहीं रही होगी कि कोई युवती ऐसी भी होगी जो उनकी श्री को भी हठात् विस्मित कर सकती है। राजपुत्री अस्ति तो अब तक कौमार्य की दीप्ति से भी जगमग थी, किंतु, रूपवती अंजलिका का रूप संभवतः उसके यौवन के बहुविध उपभोग की ऊर्जा से और भी देदीप्यमान

हो रहा था। वह मानो उपभुक्ता देह पर न जाने कितनी कामनाओं का भार लादे हुए और भी श्रीसंपन्न लगती थी।

अंजलिका को लेकर आए योद्धा ने उसके विषय में संक्षिप्त-सा परिचय दिया।

राजपुत्री ने अपनी राजसुलभ गरिमा से अंजलिका को किंचित हतप्रभ करते हुए पूछा, ''तेरा पति कहां गया है?''

अंजलिका ने कहा, ''महाराज की आज्ञा से उसको आपके योद्धा बंदी बनाकर ले आए थे, देवी। फिर कुछ ज्ञात नहीं। आज तीन मास से अधिक हो गए। हमारे महाराज ने तो....कहा जाता है कि आज तक किसी पर अन्याय नहीं किया....''

राजपुत्री अस्ति ने अंजलिका की व्यथा-कथा सुनी। बोली, ''न्याय होगा!''

फिर अस्ति ने अपनी ही गंधर्वी परिचारिका सुतनुका के साथ उसके आवास एवं जीवन-यापन की व्यवस्था कर दी।

राजपुत्री अस्ति ने दो ही दिन बाद फिर अंजलिका को बुलवाया। हँसती हुई बोली, ''यदि तेरा बाहुक न मिले तो तुझे कैसे प्रसन्न किया जा सकता है, सुंदरी?''

अंजलिका का हृदय धक से रह गया। बोली, ''क्या हुआ बाहुक को, देवी?''

अस्ति ने अपनी हँसी को जरा और प्रगाढ़ करते हुए कहा, ''कुछ हुआ नहीं, सखी! बस, महाराज के आदेश से तेरे बाहुक को किसी कारण चेदि की यात्रा पर जाना पड़ा है। तुम उसके कुशल समाचार के लिए चिंता मत करो। वह जब वहां से आ जाएगा तो स्वयं ही तुमसे मिलेगा।''

इसके बाद अंजलिका को अपना दु:ख अधिक व्यक्त करने का अवसर नहीं था। राजपुत्री अस्ति को न जाने किस कारण उस पर इतनी दया आ गई थी कि वह स्वयं बाहुक के विषय में इतनी खोजबीन करने का कष्ट उठाती रही हैं। ऐसे तो राजपुत्री अस्ति की कठोरता महाराज से भी कई गुना अधिक डरावनी मानी जाती थी। उनकी अपेक्षा तो उनकी अनुजा राजपुत्री प्राप्ति किसी सामान्य स्त्री की भांति ही कोमल मन की हैं—सहज करुणा से भरपूर, किंतु महाराज के राजकाज में वह कोई रुचि नहीं लेतीं। वह तो अपनी सखियों और नृत्यगीत में निपुण अपनी शिक्षिकाओं के साथ ही मग्न रहती हैं। उनका ऐसे विवादों से कोई नाता ही नहीं रहता!

फिर भी इन तीनों दिनों में प्राप्ति ने बार-बार अंजलिका को आते-जाते

देखा था और उसके विषय में चरियों से पूछती रही। राजदुहिता प्राप्ति की अंजलिका के विषय में किंचित रुचि देखकर ही प्राप्ति की धात्री ने उसी समय चुपचाप अंजलिका के विषय में अधिक से अधिक जानकारी एकत्र करने की आज्ञा दे दी थी।

तीसरे दिन अंजलिका आई तो प्राप्ति ने एकाएक कहा, "इस युवती को इतनी बार राजप्रासाद में बुलवाया गया, अंबा, किंतु हर बार उसको ऐसे ही निराश-उदास जाती देखकर शंका होती है!"

धात्री ने तत्काल उसको अंजलिका के विषय में विस्तार से सब कुछ बताया और बोली, "प्रजा पर अत्याचार करने का साहस किसे हो सकता है, राजपुत्री? यह अप्सरा अंजालिका तो स्वयं तुम्हारी अग्रजा के आदेश से सुरक्षित है....किंतु बेचारी का जो दुर्भाग्य उसको यातनाएं दे रहा है, उस पर तो किसी का वश नहीं।"

प्राप्ति ने उस समय तो कुछ नहीं कहा, किंतु संध्या वेला में वह अपनी अग्रजा अस्ति को प्रणाम करने गई तो अकस्मात् ही वहां अंजलिका को उदास खड़ी देखकर बोली, "दीदी! तुम जिसकी रक्षा का आश्वासन दे चुकी हो, क्या मगध में कोई ऐसा भी है जो उसको भी यातना देता रह सके?"

पहली बार अपनी अनुजा की ओर से ऐसी बात सुनकर अस्ति हँसने लगी। बोली, "हमारी प्राप्ति को किस भाग्यशाली पर इतनी ममता आ रही है? मेरी रक्षा में हो, न हो, हमारी प्राप्ति की ममता पाने वाला तो स्वयं दुर्भाग्य की ओर से भी सुरक्षित हो जाएगा!"

बड़ी बहन की बात में सूक्ष्म-सा कोई और संकेत था—प्राप्ति लजाकर बोली, "यह कोई मेरी ममता को 'पाने वाला' नहीं, कोई 'पाने वाली' है, जिसे मैं आज कई दिन से निरंतर तुम्हारे ही प्रासाद में आती-जाती देखा करती हूं। हर बार उसके सुंदर मुखमंडल पर विषाद की छाया और घनी ही होती लगती है। ऐसा कौन महाबली है जो उसको इतने पर भी यातना देने का दुस्साहस करता होगा, जब राजपुत्री अस्ति का संरक्षण इसे प्राप्त हो!"

अस्ति को लगा कि वास्तव में उसने अंजलिका की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया, नहीं तो उसको इतने दिनों तक न्याय के लिए बार-बार यहां आना नहीं पड़ता। किंतु अंजलिका का रूप-यौवन मन ही मन अस्ति को ईर्ष्या से आकुल करता रहता था! प्राप्ति की ओर से उठा यह प्रश्न एक प्रकार से अस्ति के लिए चेतावनी और भर्त्सना दोनों ही रहा। वह लज्जित होकर सोचने लगी—'मैं

---

1. सर्वसाधारण को सुलभ होने के कारण 'वेश्या' का एक पर्यायवाची शब्द 'साधारणी' प्राचीनकाल से ही प्रचलित रहा है।

इस साधारणी[1] से सशंक हूं। मगध की ज्येष्ठा राजपुत्री अस्ति और मगध के चक्रवर्ती सम्राट् जरासंध की परमप्रिय दुहिता इस साधारणी से आशंकित हो।'

तो भी इस समय उसके लिए कुछ करने का मन नहीं हो रहा था। बोली, ''वह तो वस्तुत: हमारी प्रजा भी नहीं है, प्राप्ति। वह मात्र एक साधारणी है। संयोग से उसको एक के बाद एक अनेक पति और न जाने कितने ही पुरुषों के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा है। और एक समय ऐसा भी आया कि सिंधु-तट पर बसे गंधर्वलोक के राजा ने उसको अपनी रानियों में रख लिया था। किंतु वह एक मागध योद्धा बाहुक की आंखों में चढ़ गई और गंधर्वराज ने मात्र एक लौहमय धनुष लेकर इसको बाहुक के हाथ बेच दिया! इस प्रकार वह अपने मागध पति के साथ हमारे यहां आ गई। किंतु मगध में आने के बाद भी वह अपने को मध्यदेश की आर्य पत्नियों की भांति सती मानकर बाहुक ही अर्द्धांगिनी बनी। उसके बिछोह में तड़पती-भटकती रही है। आश्चर्य तो यह है कि वह और किसी उत्तम से उत्तम उपलब्धि से भी संतुष्ट नहीं होना चाहती। मैंने तो उसको कितनी ही बार समझा दिया कि बाहुक स्वयं चक्रवर्ती की इच्छा के अनुसार, चेदिराज की सेवा में दे दिया गया है। उसको तो अब यहां भाग्यदेवता भी नहीं ला सकते, किंतु यह अप्सरा कुछ समझना ही नहीं चाहती। हां, तुम कहो तो इसे भी चेदिराज की ही सेवा में भेजवा दूं। वहां कौन जाने, कुछ ही दिनों के बाद अपने रसीले रूप-यौवन के बल पर यह किसी राजपुत्र अथवा महान् योद्धा का मन जीतकर अपने लिए सुख अर्जित कर सके!'' कहकर यौवन की अल्हड़ हँसी से थिरकती हुई अस्ति अनुजा की ओर निहारने लगी।

हँसी तो प्राप्ति के अधरों पर भी फूट रही थी, किंतु वह उसकी बात पर न हँसकर अपनी बड़ी बहन के संस्कार पर हँस रही थी। फिर भी उसने आलोचना करने का साहस नहीं किया। धीरे से बोली, ''चेदि जाना चाहे तो उसे अवश्य जाने दिया जाए....किंतु उसकी कोई तो इच्छा होगी ही। आपने उसको बता तो दिया ही होगा कि अब बाहुक उसको कभी नहीं मिल सकता!''

अस्ति जरा गंभीर होकर बोली, ''नहीं, इतनी कठोरता मुझमें पहली बार नहीं आ सकी। तो भी मैंने उसे इतना आभास दे दिया है कि अब बाहुक चेदि में ही बहुत लंबे समय तक रहेगा, तो भी निराश नहीं कर सकी उसे। कह दिया कि वह जब भी लौटकर आएगा, उसी से मिलेगा!''

''लेकिन वह तो अब लौट नहीं सकता, देवी!'' प्राप्ति ने कुछ भारी स्वर में कहा, ''फिर?''

अस्ति सोचने लगी। आज यदि प्राप्ति आकर अंजलिका के विषय में जिज्ञासा न कर बैठती तो उसने निश्चय कर लिया था कि अंजलिका को वह किसी योद्धा को सौंपकर कह देगी कि जब तक तेरा बाहुक नहीं आता, तू इसी के साथ सुख से रमण कर। जब वह आएगा तो तू जैसा कहेगी, वैसी ही व्यवस्था कर दी जाएगी। किंतु अब बात प्राप्ति की प्रसन्नता की हो गई थी! और अस्ति अपनी अनुजा प्राप्ति की प्रसन्नता के लिए कुछ भी कर सकती थी!

उसने प्राप्ति से ही कहा, ''तुम जो चाहो, वही करवा देती हूं उसके लिए।''

प्राप्ति ने कहा, ''मेरे लिए तो तुम जो भी करोगी, वही उत्तम होगा.... किंतु जिससे उस सुमुखी अप्सरा को वास्तव में संतोष हो, ऐसा कर पाना तुम्हारे लिए कुछ असंभव तो नहीं है, दीदी!''

राजोचित भाषा को त्यागकर सहसा ही प्राप्ति ने अस्ति को द्रवित कर दिया। वह बोली, ''तो फिर आज ही मैं उसका ऐसा प्रबंध किए देती हूं कि वह अपने सारे दुःख भूल जाएगी, तुम निश्चिंत रहो!'' अस्ति ने प्राप्ति को छाती से लगाकर कहा।

और उसी दिन जब राजपुत्री प्राप्ति गौरी गंधर्वी से नृत्य सीख रही थी, अचानक ही अंजलिका ने आकर उसको प्रणाम किया। प्राप्ति की ओर अपने विशाल नयनों से देखती हुई अंजलिका एकदम निकट आकर, जरा सकुचाई-सी खड़ी हो गई तो प्राप्ति को लगा, वह किसी देवी को देख रही हो! कौन जाने, देवियां भी इतनी सुंदर होती होंगी कि नहीं!

अचानक उसके आ जाने से गौरी को अचरज हुआ था। वह क्षुब्ध कंठ से बोली, ''तुमको इस प्रकार आने का साहस कैसे हुआ यहां!''

किंतु प्राप्ति ने उसको संकेत से रोक दिया। बोली, ''तुम अंजलिका हो?''

उत्तर में उसने जरा हकबकाकर एक बार फिर प्रणाम कर लिया और सिर झुकाए, नीचे देखती खड़ी रही।

प्राप्ति ने हँसकर कहा, ''महाराजपुत्री ने तुमको यहां आने का आदेश दिया?''

अंजलिका ने सिर हिलाकर 'हां' कर दी, किंतु कुछ बोल नहीं सकी।

प्राप्ति ने गंधर्वी गौरी की ओर देखकर कहा, ''आज बस!''

गौरी सिर झुकाकर अभिवादन का आभासमात्र देकर चलने को ही थी कि प्राप्ति ने कहा, ''जाते समय विद्रुम को यहां भेजती जाना।''

विद्रुम मगध का ही था और उन दिनों वही राजपुत्री प्राप्ति के प्रासाद की रक्षा-व्यवस्था के लिए नियुक्त था। वह कुछ ही पलों के बाद आ पहुंचा। प्राप्ति को उसकी आहट मिली तो तत्काल ही बोली, ''विद्रुम! इनको देख लो। महाराजपुत्री ने इनको मेरी सखी बनकर रहने के लिए यहां नियुक्त किया है। अब इनको मेरे समान ही यहां सारे सुख प्राप्त हों। और किसी भी कारण, कोई भी विवाद, इनसे जोड़कर मेरे बिना कोई निर्णय नहीं लिया जाए। महाराजपुत्री ने पहले ही निश्चय करके तब इनको यहां भेजा है।'' कहती-कहती सहसा ही उठकर प्राप्ति ने अंजलिका को अपनी कोमल भुजाओं में भर लिया। कहा, ''मेरी सखी बनकर तुम्हें सुख तो मिलेगा, सुंदरी?''

''दासी का नाम अंजलिका है, देवी! और राजपुत्री की सखी बनने का तो स्वप्न भी सुखकर ही होता होगा! मेरा अहोभाग्य तो देवी की दासी बनकर ही संतृप्त हो गया।''

प्राप्ति ने उसका उत्तर सुनकर आश्चर्य से कहा, ''अरे, तुम तो आर्यबालाओं की बोली भी जानती हो, सखी। तब तो बड़ा आनंद आएगा। तुम मेरे ही साथ जीवन-भर रहोगी तो मेरा मन सुखी होगा।''

अंजलिका ने हँसकर कहा, ''मुझसे तो अब 'सुख' की कल्पना ही नहीं हो पाती, देवी। पर यदि मेरे तन से देवी को कुछ सुख मिले तो फिर अवश्य मेरा भाग्य ही प्रसन्न होकर मुझे यहां आने का अवसर दे रहा होगा।''

प्राप्ति हँस-हँसकर दोहरी हो गई। आंखों में आंसू भर जाने तक वह हँसती ही रही। फिर बोली, ''तेरी इस अनूठी बोली का 'सुख' तो मैं अवश्य प्राप्त करूंगी, सखी। किंतु अब तो तू बस, अपनी मीठी-मीठी बोली से ही मेरा मन सहज हो जाने दे। हम मगध की युवतियों को इतना घूम-फिरकर तो आनंद लेना नहीं आता। तू अपना सहज 'सुख' ही देगी तो और अच्छा लगेगा।''

और उसके बाद से अंजलिका को फिर मानो बाहुक की याद ही नहीं आती थी। कितनी ही बार प्राप्ति के योद्धाओं में परस्पर उसके पति बाहुक की चर्चा होती रहती थी, किंतु स्वयं अंजलिका ने कभी, बाहुक की चर्चा सुनकर भी, कोई उत्सुकता नहीं जताई।

एक दिन राजपुत्री प्राप्ति ने पूछा था, ''अच्छा, अंजलिका! तूने तो जीवन में कितने ही पुरुषों को अपनी हँसी से तृप्त किया है न? फिर तूने गंधर्वराज के स्थान पर एक सामान्य-से मागध योद्धा को अपनाकर क्या पाया?''

अंजलिका एक पल के लिए भी हतप्रभ हुए बिना बोली, ''एक बाहुक के कारण मुझको तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ चक्रवर्ती की दुलारी राज-

दुहिता मिल गईं न!''

प्राप्ति ने हँसकर पूछा, ''तू अब कभी बाहुक को याद तक नहीं करती, सखी! कहीं तुझको इतनी निराशा तो नहीं हुई कि तू अपने जीवन के सबसे बड़े आकर्षण को ही ठुकराकर जीने लगी।''

अंजलिका ने लेकिन अपने को आहत नहीं होने दिया। बोली, ''महासुंदरी, प्राप्ति को पाने के बाद किस अभागे को कुछ और पाने का लोभ होगा, देवी?''

संभवत: प्राप्ति के स्थान पर महाराजपुत्री अस्ति होतीं तो वह इसी बात पर या तो अंजलिका को मगध का सर्वोत्तम सुख दे देतीं अथवा उसको प्राणदंड दे देतीं—मन में प्राप्ति ने सोचा। वह जानती ही है कि अंजलिका ने किसी कारण सहसा ही अब अपने पति बाहुक को याद करना, यहां तक कि उसका नाम तक लेना बंद कर दिया था। इस समय प्राप्ति जब उससे बाहुक के विषय में बात करने लगी तो उसको भी वह अपनी वाक्चातुरी से मूल विषय से परे ले जाकर बात ही समाप्त कर देना चाहती है। अस्ति को उसकी वाक्चातुरी में अपनी सराहना और महासुंदरी के रूप में अपनी प्रतिष्ठापना के लिए गौरव तो होता ही, किंतु प्राप्ति जानती है कि अस्ति को अपने अनुपम रूप-यौवन की प्रतीति है। उसकी सराहना मात्र अंजलिका से सुनकर उसको कोई तृप्ति न मिलती संभवत:। और उसकी वाक्चातुरी से चिढ़कर वह अवश्य अंजलिका को कठोर दंड देती....प्राप्ति को अपनी बड़ी बहन की मानसिकता का आज तक यथार्थ अनुमान नहीं हो पाया था। वह अस्ति के समय-समय पर किए जाने वाले अकल्पनीय कार्यों के कारण भ्रमित ही रहती है। वह कब क्या कर बैठेगी, कौन जाने!

लेकिन स्वयं प्राप्ति ने अंजलिका को उसकी वाक्चातुरी के लिए कोई दंड नहीं दिया। इसके विपरीत, अप्सरा अंजलिका की मादकता को अपने लिए आदर्श मानकर प्राप्ति कितनी ही बार अंजलिका के अनुरूप अपने रूपस्वी तन को एक नया ही अर्थ देने का प्रयास करती रहती थी। अंजलिका का रूप मगध की राजदुहिता अस्ति के लिए ईर्ष्या का कारण हो सकता था! और जहां तक प्राप्ति अपनी अग्रजा को जानती थी, उसको ऐसा ही लगता था कि अस्ति को अंजलिका का विलक्षण रूप-यौवन ही नहीं, उसकी यह अद्‌भुत मादकता निश्चय ही अपनी सुंदरता से अतिरिक्त समर्थ लगी होगी। इसी कारण वह अंजलिका को अपने साथ नहीं सहन कर पाती होगी। नहीं तो अंजलिका जैसी अनुचरी को तो वह अपने पास से एक पल को भी दूर न रहने देती। लेकिन बेचारी अंजलिका का कितना दुर्भाग्य है कि वह अपनी ही सुंदरता के कारण

एक ओर तो 'साधारणी' की भांति कभी यहां, तो कभी वहां भटकती फिरती रही, और जब उसने किसी को अपनाया....किसी की अपनी बनकर जीना चाहा, तब उसका रूप ही उसका दुर्भाग्य बनकर उसको फिर उसी 'साधारणी' के स्तर पर ले आता है। आखिर ऐसा क्या कारण रहा होगा कि बाहुक को ही महाराज ने अपने मित्र चेदिराज दमघोष की प्रसन्नता के लिए चेदि जाने का आदेश दिया होगा?

लेकिन जब अंजलिका नहीं चाहती तो फिर बार-बार बाहुक के बारे में बात छेड़कर प्राप्ति ने उसको प्रताड़ित करना उचित नहीं समझा। उसने फिर उससे कभी बाहुक के बारे में बात नहीं की।

चार

इस बीच बहुत कुछ मानो अपने-आप ही होता रहा। चेदि से लौटकर मथुरा आते ही कंस को पता लगा कि पीछे-पीछे स्वयं मगधपति की सेनाएं भी मथुरा की ओर बढ़ रही हैं। कंस के पहले ही चेदिराज का संवाद मथुरा पहुंच चुका था। फिर स्वयं चेदिराज भी आए और यादवों के साथ कई दिनों तक उनकी वार्ता चलती रही।

यादवगण की मंत्रणा-सभा में अब तक न जाने कितने-कितने विवादों ने जन्म लिया था और हर बार उन्होंने परस्पर सारी बात सुलझा ली थी। फिर भी आज किसी यादव वृद्ध तक को ऐसा कोई प्रसंग नहीं याद आ रहा था, जब यादवों को किसी ऐसे विकट प्रश्न का सामना करना पड़ा हो। आज तो सीमा ही हो गई, जब भोजकुल के युवा योद्धाओं ने स्पष्ट कह दिया था कि उनको तो अब किसी प्रकार का युद्ध प्रिय नहीं और वह भी जरासंध की प्रचंड सेना से मात्र इस कारण युद्ध कि हमारे वृद्धों को कीकट देश की राजदुहिताओं को अपने कुल में वधू बनाकर लाते डर लगता है!

उनको समझाने का प्रयास किया गया कि वास्तव में कीकट की कन्याओं के संस्कारों की ही बात नहीं। यह तो न जाने कहां से नया ही प्रश्न खड़ा कर दिया गया है। हमने तो इसका विरोध किया है कि मगधराज अपनी कन्याओं का विवाह करने के लिए हम यादवों की प्राचीन गण-परंपरा को बदलवाना चाहते हैं।

किंतु भोज यादवों का पूरा दल ही मानो तैयार होकर आया था। उनका कहना था कि कौन ऐसा नहीं करता होगा? अपने गणराज्य में अब हम भी तो मात्र वृद्धों का ही शासन सहते-सहते थक चुके हैं! हमने तो बहुत पहले ही कहा था कि हमको अपनी पिटी-पिटाई परंपराओं को छोड़कर आगे देखना

चाहिए। हमारे यहां तो बस, वही सब होता आ रहा है, जो बहुत प्राचीन काल से होता आया है। आज हम अपने लिए शासन का नया रूप चाहते हैं तो जरासंध का नाम लेकर हमारी बात को हीन ठहराने का प्रयास किया जा रहा है। हम एकमत से कहते हैं कि हमारे नेता कंस को गण में अधिक अधिकार दिए जाएं। हम चलो, यह नहीं मांगते कि अब कंस को ही महानायक चुना जाए, किंतु हम इतना अवश्य चाहते हैं कि हमारे कंस को राज्य का अधिक से अधिक राजकाज सौंपकर उनको स्वतंत्र रूप से काम करने दिया जाए।

कंस ने जैसे रातोरात भोजकुल के युवा समुदाय को मंत्र से कील दिया हो!

चेदिराज की ओर से चेतावनी मिल ही चुकी थी कि यदि जरासंध की इच्छा से अनुरूप व्यवस्था नहीं की गई तो युद्ध अनिवार्य हो सकता है!

उस समय सबसे कठिन विरोध वृष्णियों की ओर से ही आ रहा था। स्वयं वसुदेव ने कहा था, ''आप तो जानते ही हैं, महाराज, कि हम यादवों की अपनी ही परंपराएं रही हैं। हमने युगों से उनका पालन किया है और आज भी करते ही हैं। ऐसे में किसी दूरवर्ती जनपद के एक राजा के कहने से हम अपनी परंपराओं को कैसे बदल दें?''

महानायक उग्रसेन तो हतप्रभ थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि क्या करें! स्वयं अपने पुत्र कंस के कारण यादवों में ऐसा विरोध आते देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए थे।

अंत में चेदिराज दमघोष की बातों का मर्म समझकर वसुदेव ने महाराज उग्रसेन से गण के सभी राजन्यों तथा कुलपुरुषों को बुलाकर इस संबंध में मंत्रणा करने का आग्रह किया।

यादवसभा में तीन दिन तक विचार-विमर्श चलता रहा।

और अंत में वसुदेव ने ही निर्णय की ओर मार्ग दिखाया। वह चेदिराज से सारी बात करके समझ चुके थे कि कंस का पक्ष लेकर जरासंध किसी भी सीमा तक जा सकता है। और इतनी-सी बात को न मानने से हमारे गण पर वास्तव में घोर आपदा आ सकती है। अतः हमको इस समय यह मान लेना चाहिए कि कंस यादवगण के राजकाज का प्रमुख हो। हमको आशा है कि युवा कंस के नेतृत्व में हमारा गण और भी समृद्ध होगा। और इतना तो निश्चित ही है कि इस प्रकार हम कंस के साथ विवाहित मगध की राजदुहिताओं को कुलवधू के रूप में ले आएंगे, अतः मगध का चक्रवर्ती जरासंध हमारा मित्र हो जाएगा। तब हमको उसकी ओर से किसी प्रकार की विपदा की आशंका नहीं रहेगी!

निश्चय होते ही सब कुछ सहज हो गया। कंस को अपना भाग्य बदलने के लिए वैसा कोई पराक्रम नहीं करना पड़ा तो भी उसको मगध की दोनों राजदुहिताएं एक दिन ससमारोह पत्नी के रूप में प्राप्त हो ही गईं।

अस्ति ने आते ही पहली बार कंस को प्रणाम करके कहा, ''आर्यपुत्र ने अपना भाग्य तो बदला कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानती, किंतु हमारा तो सब कुछ ही बदल डाला!'' और अपने को पति के आलिंगन में बंध जाने दिया।

फिर हँसती हुई बोली, ''ऐसे मन से तो आपकी यह 'अनिंद्य सुंदरी' उसी दिन से अपने पराक्रमी पति की बांहों में ही रहती रही है, जिस दिन युवराज ने हमको अपने ही योद्धा के शरसंधान से बचा लिया था!''

कंस हँसकर बोला, ''अब उपहास नहीं करो, प्रिये, नहीं तो दंड मिलेगा! उस दिन की मूर्खता का दंड मेरे लिए इतना मधुर होगा, सो कहां जानता था?'' उसने पत्नी को छेड़कर हँसा दिया।

अस्ति बोली, ''मुझे तो आज भी विश्वास नहीं आता कि कोई धनुष से छूटते बाण को भी ऐसे रोक सकता है!''

कंस बोला नहीं, मुग्धदृष्टि से अस्ति की उन्मदयौवना देह को निहारता रहा।

अस्ति ने ही कहा, ''और फिर उस प्रकार मगध के तीन-तीन मल्लों का मर्दन करने वाला ही हमारा पति हो सकता है, यह तो मैंने उसी पल सोच लिया था!''

''तो भी कितनी यातना देती रहीं, प्रिये!''

''यातना हम दे रही थीं कि स्वयं यातना सहती रही हैं, सो तो नहीं सोचा होगा न युवराज ने।''

कंस ने मुसकराकर कहा, ''लेकिन यातना जब पुरस्कार बन जाए तो कितनी मादक हो जाती है न, प्रिये। अब यदि आज्ञा हो तो अपना पुरस्कार मांग लूं।''

अस्ति ने कहा, ''अब और लज्जित न करें, युवराज! यह पुरस्कार नहीं, यह तो युवराज को हम अकिंचन दासियों की ओर से तुच्छ उपहार है। स्वीकार हो तो हमारा सौभाग्य!''

कंस ने उन्मत्त होकर उस उपहार को पाने के लिए अपने को पागल हो जाने दिया।

अस्ति को लगा, चाहे जो हो, कंस ही उसका पति होने योग्य था! कंस ने यहां बल का प्रयोग किए बिना जिस प्रकार योद्धा यादवों को अपने सामने झुका दिया था, वास्तव में पौरुष का उदात्त रूप है वह!

यादवगण पर ऐसा समय आ गया कि कुल में परस्पर संघर्ष के कारण उनकी गण-व्यवस्था का पतन हो गया। उनके पराक्रमी महानायक उग्रसेन इन दिनों कारागार में थे! मथुरा पर अब महाबली कंस का शासन था। कंस था तो महानायक उग्रसेन का पुत्र ही किंतु उसने पिता से बरबस राजदंड छीन कर उन्हें कारागृह में डाल दिया। और मथुरा के आठों प्रमुख कुलों के यादवों को अपने अधीन साधारण प्रजा की भांति जीने को विवश कर दिया था।

वास्तविकता तो यह थी कि कंस यादवों के पतन का कारण बना, किंतु इन दिनों मथुरा के यादवगण पर वास्तव में शासन करती थीं मगध के चक्रवर्ती सम्राट् जरासंध की दो रूपवती दुहिताएं जो कंस की पत्नी के रूप में मगध की शक्ति बनकर ही आई थीं।

उनमें से ज्येष्ठा महारानी अस्ति तो कंस की पट्टमहिषी थी और एक प्रकार से वही सारा राजकाज संभालती थी। उसने मथुरा आते ही कंस को अपनी परमसुंदरी अनुजा प्राप्ति के रूप-यौवन से मंत्राविष्ट-सा करके उसकी अदम्य काम-वासना को उत्तेजित किया और उसे सहज ही पराभूत कर लिया था। ऐसे तो स्वयं अस्ति अपने युग की अनन्य सुंदरी थी, किंतु वह जितनी ही सुंदर थी, उतनी ही महत्त्वाकांक्षिणी भी थी। बाल्यकाल से ही उनके पिता ने अपनी दोनों पुत्रियों का उनकी कामनाओं के अनुरूप ही पालन-पोषण किया था। अस्ति में उसने कूट-कूटकर अपनी ही महत्त्वाकांक्षा भर दी थी। उसने अस्ति को अपने पुत्र सहदेव की ही भांति शास्त्रास्त्र के साथ ही राजधर्म में पारंगत करने का विशेष यत्न किया था। और उसको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि अस्ति यदि अपनी सुंदरता से किसी भी पुरुष को वशीभूत कर सकती है, तो उतनी ही निपुणता से वह राज्य पर शासन भी कर सकती है।

दूसरी राजदुहिता प्राप्ति अपने वैभव तथा ऐश्वर्य के अनुरूप जीवन को सुख और आनंद से भोगने की कामना से ओतप्रोत रहती थी। यही नहीं, वह वास्तव में सुकुमार नारीत्व की जीती-जागती प्रतिमा थी। नृत्य, गीत आदि कोमल और लालित्य से सिक्त कलाओं में उसकी रुचि थी और शृंगार उसका परम प्रिय विषय था।

जरा राक्षसी उन दिनों भी मगध के राजवंश की पूजनीया देवी थी। जरासंध के पिता राजा बृहद्रथ ने अपने पुत्र के खंडित शरीर को जोड़कर जीवित कर देने वाली उस राक्षसी के लिए अपने समय में ही एक भव्य आयतन[1] बनवाकर उसमें जरा को प्रतिष्ठापित कर दिया था। अब जरा राक्षसी स्वयं तो जीवित नहीं

---

[1] मंदिर

रही, किंतु जरासंध के समय में भी उसकी उपासना उसी भक्ति और निष्ठा के साथ की जाती थी, जिस निष्ठा के साथ मगध में शक्ति के देवता भगवान् पशुपति रुद्र की पूजा की जाती थी। जरासंध ने अपने को आर्य परंपराओं का घोषित शत्रु प्रमाणित कर दिया था। उसको इस बात से चिढ़ थीं कि मध्यदेश के आर्यों ने मगध को हेय दृष्टि से 'कीकट देश' जैसा नाम दे दिया था। मगध के योद्धा भी उन्हीं आर्यों के प्रतापी राजाओं के वंशज थे, फिर भी उनको 'व्रात्य' कहना आरंभ कर दिया था। व्रात्य कहकर वे एक प्रकार से ऐसे क्षत्रियों के प्रति अपनी घृणा का परिचय देते थे।

व्रात्यों को वेद-विधि से यज्ञ आदि करने का अधिकार नहीं था, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि वे वेद पर विश्वास नहीं करते और हीन संस्कारों से अपना जीवन बिताते हैं। उन्हें आर्य संस्कारों से वंचित माना जाता और उनके साथ मध्यदेश के ही नहीं, अब तक सिंधु-तट से वैदिक संस्कारों का प्रचार करने वाले ऋषि और ब्राह्मण भी उनको हीन कुल का मानते थे और उनका सम्मान नहीं करते थे। उत्तर के राजाओं ने अब तो उन व्रात्य क्षत्रिय-कुलों में अपनी पुत्रियों का विवाह तक करने पर रोक लगा दी थी।

जरासंध को इन्हीं कारणों से ऐसे सभी आर्य क्षत्रिय-कुलों के प्रति घोर द्वेष की भावना संतप्त करती रहती थी। उसको तो ऐसा लगता था कि वहां के क्षत्रिय मगध की राजदुहिता की अवहेलना भी कर सकते हैं। इसी कारण जरासंध स्वयं सम्राट् बनकर अपने को सारी पृथ्वी[1] पर चक्रवर्ती के रूप में स्थापित करके सब राजाओं से अपनी पूजा करवाने का संकल्प लेकर एक के बाद एक राज्य को पराभूत करता हुआ साम्राज्य-विस्तार करने में रत हो गया था।

अपनी इसी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप जरासंध ने अपनी दोनों पुत्रियों का पालन-पोषण किया था। फिर चेदि में कंस को वश में करके अवसर पाते ही उसने कंस की महत्त्वाकांक्षा को उकसाकर मथुरा के यादवों को भी अपनी भेद-नीति से ही पराभूत कर दिया।

किंतु कंस ने यादवगण को प्रतिहत करने के बाद भी स्वयं वहां का राजा बनकर अपने को सीमा में नहीं बांधा। अपने श्वशुर के संकेत पर उसने राजकाज का प्रमुख बनकर ही संतोष नहीं किया, वरन् अपनी पट्टमहिषी अस्ति की इच्छा के अनुसार, उसने मगध से आए अपने योद्धाओं के बल पर एक दिन अकस्मात् ही अविश्वसनीय कांड कर डाला और यादवगण के महानायक

---

[1] स्मरणीय है कि पौराणिक 'पृथ्वी' उन दिनों की परिकल्पना के अनुसार मुख्यत: भरतखंड तथा उसके आसपास के कुछ परिचित भौगोलिक स्थानों तक सीमित थी।

को—अर्थात् अपने पिता उग्रसेन को ही—बंदी बनाकर उन्हें कारावास में डाल दिया। यह सब कुछ पलक झपकते, इतनी शीघ्रता के साथ हुआ था कि किसी के किए कुछ नहीं हो सका। यादवों ने जब सोचा कि उत्पाती कंस को प्रतिबंधित किया जाए तो उनको ऐसा लगा कि अब तो कुछ करने का अर्थ होगा कि वे अपना विनाश स्वयं ही करने पर तुले हैं!

पिछली रात में ही तो महानायक उग्रसेन ने गण के समस्त यादव योद्धाओं से परामर्श करके निश्चय किया था कि कल ही प्रातःकाल कंस को बुलाकर उसको अपना व्यवहार सुधारने का आदेश देंगे अथवा उसको राजकाज से वंचित कर दिया जाएगा और पहले की ही भांति अपने मंत्रियों के साथ महानायक उग्रसेन स्वयं शासन का राजकाज संभाल लेंगे।

किंतु कंस ने इसका अवसर ही कहां दिया था! उस समय तो अधिकतर मथुरावासी गहन निद्रा में ही लीन थे, जब कंस की सेना के गिने-चुने योद्धाओं ने सहसा ही उग्रसेन के प्रासाद को घेर लिया और उनको चारों ओर से काटकर अपने ही प्रासाद में बंदी की भांति जीने को विवश कर दिया था। फिर सवेरे ही सारे यादव प्रमुखों को 'महाराज कंस' की ओर से आदेश दिया गया कि वे अपनी ओर से आकर 'महाराज' की सभा में अपनी राजभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करें अन्यथा उनको प्राणदंड दिया जाएगा!

यादवों में खलबली-सी मच गई। मथुरापुरी नृशंस मागध सैनिकों के निर्मम प्रहारों से रक्त से भीग गई।

उसी दिन तो कंस ने अपनी महारानी अस्ति की निपुणता और सैन्य संचालन में उसकी अपराजेय दक्षता का पूरा-पूरा प्रमाण भी पाया था। अस्ति ने अपने कौशल से सारे यादवों की ऐसी दशा कर दी थी कि वे यदि जरा भी विद्रोह की चेष्टा करते तो उनको बिना युद्ध के ही मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता।

अंत में यादवकुलों के कई गणमान्य वृद्ध प्रमुख आकर कंस से मिले और उन्होंने व्यर्थ रक्तपात को रोकने की प्रार्थना की। कंस ने अपनी परमप्रिया अस्ति से परामर्श करके वृद्ध प्रमुखों को राज्य-भर में जा-जाकर, अपनी मागध सेना के अधीन ही, अन्य यादवों से मिलने का अवसर दे दिया। और सुप्रतिष्ठित यादवकुलों के उन प्रमुखों के आग्रह पर तीन-चार दिन के भीतर ही मथुरा के समस्त बलशाली यादवकुलों द्वारा कंस के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया गया था....

मथुरा में शांति स्थापित हो गई। यादव योद्धाओं को जीवन में पहली बार इतनी सरलता से, युद्ध किए बिना ही, पराजित करके किसी ने उन पर अपना

प्रभुत्व स्थापित कर लिया था!

इस विचित्र अनुभव की कालिमा महीनों तक मथुरापुरी पर छाई रही थी। अपने युग के अप्रतिम बलशाली यादवों की उस राजधानी पर किसी 'राजा' का शासन सहज ही स्थापित हो गया था तो भी लगता था, कहीं कुछ भी नहीं हुआ था। यमुना की धारा जैसी की तैसी ही बहती रही! लोकविख्यात यादवों पर ऐसी विपदा आकर बीत गई—न तो आसपास के किसी राजा के कानों पर जूं रेंगी, न किसी संबंधी की ओर से ही कोई विरोध हुआ और न किसी ओर से यादवों को सहायता प्राप्त करके संघर्ष करने का अवसर ही मिला।

मथुरा कुछ दिनों तक भले ही यादव योद्धाओं को श्रीहत जान पड़ी हो, लेकिन शीघ्र ही महारानी अस्ति और रानी प्राप्ति की कामना के अनुसार उस प्राचीन नगरी को भव्य रूप देने का अभियान आरंभ कर दिया गया था। और मथुरा, अब पहले की अपेक्षा कुछ अधिक ही संपन्न और सुंदर दिखने लगी थी। कितने ही कुलों की यौवन मद से माती मानिनी कुलवधुओं को तो ऐसा लगता था मानो उनको पहली-पहली बार यादवों की कठोर परंपराओं और बंधनों से मुक्ति मिली और नए ढंग से उन्मुक्त जीवन जीने के अवसर मिले!

प्राप्ति की आज्ञा से दूर-दूर के कलाकार और शिल्पी आकर मथुरा में बसे। और मथुरापुरी के सौंदर्य का निरंतर विकास होने लगा। फिर तो कुछ ही दिनों में इस पुरी की शोभा की चर्चा हर कहीं होने लगी।

इस आकस्मिक पराभव के बाद भी यादव एकदम से निस्पंद नहीं हुए। उनका स्वतंत्र मन किसी भी प्रकार मगध की ओर से थोपे हुए इस राजतंत्रात्मक शासन को सहन करने को तैयार नहीं था। भले ही कंस उनके ही यादवकुल का हो और महानायक उग्रसेन का पुत्र हो, किंतु उसने जो किया था, वह प्राचीन काल से चली आती यादव-परंपरा के सर्वथा विपरीत था और किसी भी मूल्य पर सहन नहीं किया जा सकता था।

समय बहता गया।

और धीरे-धीरे कंस को विश्वास होता चला गया कि अब उसका विरोध करने वाला कोई नहीं रहा। और तो और, भोज यादवों की भांति कितने ही कुलों के युवा यादवों ने भी अब खुलकर राजा कंस का समर्थन करना आरंभ कर दिया था। कंस उनसे प्रसन्न होता था और महारानी अस्ति से बार-बार कहता रहता था—'अब तो हम यादवों के सबसे लोकप्रिय राजा हैं! हमें इस अवसर का लाभ उठाकर अधिक से अधिक युवा यादव योद्धाओं को अपनी ओर मिला लेना चाहिए।'

बहुत सोच-विचार करने के बाद महारानी अस्ति को भी लगा कि कंस की बात मान लेने में कोई दोष नहीं है। यदि इन युवा यादवों को मिलाने का प्रयास न किया जाए तो भी कोई उपलब्धि तो होनी नहीं है। यादव युवाओं को अपने पक्ष में कर लेने से राज्य का ही हित होगा। राजधर्म में पटु होने के कारण अस्ति को इसका ज्ञान तो था ही कि सेना के बल पर किसी पूरी जाति को दबाकर उसको सदा-सदा के लिए अपने वश में नहीं रखा जा सकता। राज्य को अपने अधीन रखने के लिए और दीर्घकाल तक स्थायी, सुदृढ़ राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक है कि युवा पीढ़ी का समर्थन प्राप्त किया जाए।

उन्हीं दिनों अस्ति ने एक रात कंस को सुझाया कि यहां का सबसे प्रबल कुल इस समय तो वृष्णिकुल ही है। किसी प्रकार से उनको अपने पक्ष में कर लेने पर अपना राज्य सदा-सदा के लिए स्थिर हो जाएगा।

और कंस के मागध मंत्रियों ने तत्काल इसका उपाय भी खोज निकाला। उन्होंने महारानी अस्ति को ही परामर्श दिया, "इन दिनों अपने महाराज के पितृव्य राजा देवक की ज्येष्ठा पुत्री देवकी वयप्राप्त करके विवाह योग्य हो चुकी है। महाराज ने जबसे महानायक महाराज उग्रसेन को कारागृह में रखा है, उनके अपने कुल—भोज यादवों में ही बड़ी तीखी प्रतिक्रिया होती रही है। विवशता के कारण भले ही कुलपुरुषों ने मौन साध लिया है, वास्तव में तो उनके मन में महाराज कंस के प्रति आक्रोश है ही। उसका अंत करने का यह बड़ा सुंदर साधन होगा—यदि देवकी का विवाह वृष्णिकुल के प्रमुख वसुदेव से करा दिया जाए तो एक साथ दो-दो कुलों का समर्थन तथा मैत्री प्राप्त हो जाएगी। महानायक उग्रसेन के भ्राता राजा देवक भी महाराज कंस की इस कामना का स्वागत ही करेंगे, क्योंकि उनको ऐसे समय में शूरसेन के राजा वसुदेव से अधिक योग्य वर तो अपनी पुत्रियों के लिए मिलेगा नहीं। और वह संभवतः मन ही मन ऐसा ही चाहते भी हैं, किंतु सत्य यही है कि वे दोनों ही महाराज के भय से ही ऐसा कोई निर्णय प्रकट रूप से लेने का साहस नहीं कर पा रहे हैं।"

महारानी अस्ति रात-दिन इस पर मनन करती रही। उसे भी लगा कि ऐसा कर पाने का सबसे बड़ा लाभ तो यही होगा कि राजा देवक और वृष्णिकुल दोनों की मनोकामना पूरी हो जाएगी और महाराज को कुल का हितैषी मानकर स्वयं भोजकुल का भी महाराज के प्रति विश्वास उत्पन्न होगा। दूसरी ओर, वृष्णिकुल का वसुदेव जैसा प्रभावशाली योद्धा प्रमुख हमारा हो जाएगा! इसका एक परोक्ष और अत्यंत महत्त्वपूर्ण लाभ तो यही होगा कि वसुदेव के साथ ही हस्तिनापुर का कुरुकुल भी हमारे निकट आ जाएगा!

अस्ति ने उत्साहित होकर इस संभावना पर और अधिक गहराई तक विचार किया। उसने पहले तो अपने मंत्रियों से सारी कथा सुनी। उसको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि हस्तिनापुर के महाप्रतापी राजा शांतनु के अनुज महाबली वाह्लीक की पुत्री सुंदरी रोहिणी ही वसुदेव की ज्येष्ठा पत्नी है। रोहिणी की चार अनुजाएं भी वसुदेव से ही विवाहित हैं, इसी कारण वसुदेव का कुरुओं से गहरा नाता रहा है। फिर एक और कारण से उनका कुरुवंशियों के साथ अटूट संबंध है—वसुदेव की भगिनी पृथा को बाल्यावस्था में ही भोजराज कुंतिभोज ने दत्तक पुत्री के रूप में अपना लिया था जो कुंती के नाम से विख्यात है। उस राजदुहिता कुंती ने स्वयंवर में हस्तिनापुर के राजा पांडु का वरण किया था। वही अब हस्तिनापुर की महारानी है! यदि हम वसुदेव को अपनी ओर मिला लेने में सफल हो जाते हैं तो इसका अर्थ यही होगा कि हमको कुरु राज्य की ओर से किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाएगी।

यह बात कंस की समझ में भी तत्काल ही आ गई, क्योंकि एक तो स्वयं महारानी अस्ति ने इस विचार को मान्यता दे दी थी, फिर कंस को याद आया कि महाराज जरासंध भी उत्तर के राज्यों में कुरु राज्य को ही परम शक्तिशाली मानते हैं और इसी कारण उन्होंने अब तक इस ओर अभियान करने की चेष्टा नहीं की थी। वैसे जरासंध ने कहा था कि हम एक-एक करके उन सारे राज्यों को अपने वश में करने को कृत-संकल्प तो हैं ही; किंतु उनका विचार था कि जिस प्रकार दक्षिण में उन्होंने राजा सुनीथ दमघोष के पुत्रों और विदर्भ-नरेश भीष्मक के राजपुत्रों को अभी से अपने सेनापति का पद देने का विचार कर लिया है, उसी प्रकार उनकी इच्छा है कि उत्तर के राज्यों पर हमारे जामाता कंस की विजय-दुंदुभि बजे।

वह कंस को अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह और मान देने को तत्पर थे। और कंस ने मगध की दोनों कमनीया युवतियों को पत्नी के रूप में पाने के बाद अस्ति की प्रेरणा से यह निश्चय कर लिया था कि हो सका तो वह स्वयं ही हस्तिनापुर पर विजय प्राप्त करेगा। किंतु उसकी इच्छा अब तक मन में ही दबी रह गई थी, क्योंकि उसकी आशा के विपरीत, यादवों की ओर से निश्चिंत होकर अपना शासन दृढ़ करने में ही उसका काफी समय नष्ट हो गया था। अब देवकी के विवाह का प्रसंग आया तो उसको लगा कि सचमुच ऐसा सुनहरा अवसर एक प्रकार से उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।

वास्तव में वह स्वर्णिम अवसर ही तो था....

अस्ति ने उस दिन कंस का विशेष सत्कार करने के बाद अत्यंत प्रसन्न मन से उसको अपने प्रासाद में ही उस रात विश्राम करने का आग्रह करके कंस

की सोई-सी वासना की लौ को एकदम उकसा दिया। हँसती-हँसती आत्मसमर्पण करके पति को परमसुख देने के पश्चात महारानी अस्ति ने कंस को अवगत कराया कि वास्तव में चरों की सूचना सच ही थी। पितृव्य राजा देवक के भवन में तो पिछले एक वर्ष से रात-दिन किसी प्रकार अपनी सातों पुत्रियों को वसुदेव से विवाह देने की चर्चा चलती रहती है, किंतु सच बात तो यही है कि वे लोग महाराज के भय से ही यह प्रसंग अब तक नहीं उठा पाए हैं। यदि अब महाराज चाहें तो उनका प्रयास सार्थक ही होगा और एक प्रकार से इस भूखंड पर महाराज को अपना एकछत्र राज्य स्थापित करने की ओर यह पहला डग होगा, जो निश्चय ही कल के 'महाराज्य' की ही सशक्त भूमिका होगी!

और महाराज कंस ने दूसरे ही दिन अपने पितृव्य राजा देवक को एकांत में विचार-विमर्श के लिए आमंत्रित कर दिया।

राजा देवक को चिंता व्यापी कि न जाने किस अपराध में यह राक्षस उनको एकांत में बुलवा रहा होगा! जो दुरात्मा कंस अपने प्रतापी पिता तक का अपमान करते नहीं हिचका और उनको बंदीगृह में रखकर मगध की उन अनार्य वधुओं के मत से अपने कुल को त्रस्त-कलंकित कर रहा हो, वह कभी, किसी को हित करने की कामना से तो बुलाने से रहा!

लेकिन कंस की अवहेलना करने का साहस भी तो किसी में नहीं था! राजा देवक को विवश होकर उससे मिलने के लिए एकांत में जाना ही पड़ा।

राजप्रासाद के सिंहद्वार पर ही कंस ने उनका स्वागत किया। देवक को तो विश्वास ही नहीं आया कि वह सचमुच जीवित ही हैं और 'महाराज' कंस उनका स्वागत कर रहे हैं! वह अवाक्-से कंस की ओर ताकते हुए बैठे उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे।

कंस का व्यवहार किंचित अलग तो था, किंतु चारों ओर मगध योद्धाओं और कंस के अनुगत गिने-चुने यादव मंत्रियों का जमघट तथा राजसुलभ गरिमा का प्रदर्शन यथावत ही था। लगा मानो कंस का अपना कोई हित तो है, किंतु वह उसे आदर-मान अथवा कुल की आत्मीयता के आधार पर न प्राप्त करके, अपने बल और अधिकार से ही पाने को उत्सुक है!

तो भी जब महाराज कंस की ओर से सहसा ही देवकी के विवाह का प्रसंग उठाया गया तो एक पल के लिए देवक स्तंभित रह गए। उनकी आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। ज्येष्ठा पुत्री देवकी का कोमल, निर्दोष मुखमंडल राजा देवक के सामने अपनी निश्छल, पावन मुसकान के साथ अपलक निहारता-सा लगा। उनकी आंखों के सामने सहसा ही देवकी का वह भविष्य विद्रूप होकर नाच उठा जिसका उन्होंने मन ही मन निश्चय किया था। इस बीच

उनकी वृष्णिकुल के प्रमुखों से गोपनीय स्तर पर ही वार्ता चल रही थी। उनको तो भय था कि कहीं वसुदेव कंस के ही कारण उनकी सर्वथा निर्दोष पुत्री को ग्रहण करने से मना कर दें। क्योंकि कंस का क्रूर कर्म ऐसे तो समस्त यादवकुल के प्रति ही अपराध था, किंतु उसने विशेषकर सबसे कुलीन और समर्थ वृष्णिकुल की घोर अवहेलना की थी। अपनी ओर से तो उसने यही प्रयास किया था कि यादवों की इस राजधानी से इन सारे वृष्णियों को ही निर्वासित कर दिया जाए। इसका प्रयास तो वह उसी समय से करता आया था जब मगधराज जरासंध के दबाव में आकर यादवगण का सारा राजकाज उसके हाथों सौंप दिया गया था।

पांच

देवकी का विवाह वसुदेव से करना उचित होगा कि नहीं, यही तो कहा था कंस ने। सुनकर भी उसकी बात पर विश्वास नहीं आ रहा था राजा देवक को। वह तो यही जानते थे कि कंस को सबसे अधिक रोष उन दिनों वसुदेव पर ही था। उन दिनों वृष्णिकुल की ओर से ही तो जरासंध के प्रस्ताव का प्रबल विरोध हुआ था! वे तो अपनी ओर से जरासंध से युद्ध तक करने को भी तैयार हो गए थे। कंस को पता लगा था कि वसुदेव ने अपनी ओर से तो दूतों को बल–संग्रह के लिए पंचाल तथा कुरु राज्य की ओर जाने को कह ही दिया था। मगधपति का विरोध करने के लिए पंचालराज तथा कुरुराज की सहायता प्राप्त करना ही एकमात्र उपाय था।

संयोग से उसी दिन स्वयं चेदिराज सुनीथ दमघोष मथुरा पहुंच गए थे और उनसे वार्ता होने तक वसुदेव ने अपने दूतों को रोक दिया था, सो ठीक ही रहा! बाद में तो यही निर्णय हुआ था कि जरासंध की सेनाएं तो पूरे शूरसेन मंडल को घेरकर तैयार खड़ी हैं और किसी की सहायता यहां तक पहुंचने के पहले ही वह मथुरा को अपने गर्दभों से रौंदवाकर ध्वस्त कर देगा। उस समय मात्र वही किया जा सकता था, जो अंत में स्वयं वसुदेव ने ही सुझाया था। वास्तव में उन्होंने ही यह निर्णय लिया कि इस समय किसी तरह से पहले तो अपने यादवगण की रक्षा करनी होगी, फिर समय आने पर सोचा जाएगा।

उस बात को बीते आज कितने ही वर्ष हो चले थे! किंतु कंस को तो नहीं ही भूली होगी! उसने तो आज तक अपने व्यवहार से यही सिद्ध किया था कि उसका वश चलता तो वह यादवगण से सारे के सारे वृष्णि यादवों को निर्वासित करवा देता अथवा उनको मरवा ही डालता, लेकिन वृष्णि इतने निर्बल

नहीं हुए थे। और होते भी कैसे? उनका तो कितने ही राजाओं से विवाह-संबंध था। उनका कुल भी तो ऐसा छोटा-मोटा नहीं था। कंस को छोड़कर शेष भोजकुल भी वृष्णियों का निकट-संबंधी था और उनका आदर करता था। वास्तव में तो यह मथुरापुरी वृष्णियों की ही थी। कहना तो यही उचित होगा कि यादवगण का आधार वृष्णियों का त्याग एवं अपने गौरव तथा वैभव एवं ऐश्वर्य का बलिदान ही था!

अचानक उन्हीं वृष्णियों के प्रमुख वसुदेव के साथ अपने कुल की कन्या का विवाह करने का संकल्प कंस ने प्रकट किया तो राजा देवक को लगा कि अब कंस मथुरापुरी पर पूर्ण अधिकार तथा शूरसेन राज्य का विपुल वैभव पा जाने के बाद वास्तव में गंभीर हो चला है!

उद्दंड कंस के सामने 'ना' कहने का साहस किसे होता! फिर राजा देवक के तो मन की ही बात पूरी होने को थी! वह तत्काल 'हां' कहकर कंस का आभार मानने को उतावले हो उठे।

वहां से लौटकर वह सबसे पहले इन कुछ दिनों से अपने आवास में ही अवरुद्ध अपने अग्रज महाराज उग्रसेन से मिले। उन्होंने कंस की इस उदारता का संवाद देकर उग्रसेन को प्रसन्न करना चाहा, किंतु उग्रसेन ने मात्र आश्चर्य ही प्रकट किया! उनको विश्वास ही नहीं होता था कि कंस को अपने पितृव्य देवक की पुत्रियों की कोई चिंता रही होगी अथवा उसने यह सब अपने मन से विचार करके किया होगा। बोले, ''मुझे मात्र इतना ही हर्ष होता है, देवक, कि तुम्हारी पुत्रियों को वसुदेव जैसा समर्थ पति महाकाल की ही प्रेरणा से मिल रहा है। अस्तु, शुभ हो! देवता कल्याण करें।''

राजा देवक अपने अग्रज की बातों से कुछ आशंकित तो हुए किंतु उनको देवकी आदि सातों कन्याओं के लिए मनचाहा वर मिल रहा है, यह प्रसन्नता उनको सहज बनाए रही।

उन्होंने कुलदेवता की पूजा करवाई और अपने कुल के समस्त परिजनों को प्रीतिभोज में बुलाकर उन्हें इस हर्षजनक समाचार से अवगत कराया।

इस बीच कहीं कोई त्रुटि न हो जाए—हर पल देवक आशंकित रहते। किंतु फिर सब कुछ देवताओं पर ही छोड़कर गहरी सांस ली—जो होना है, होगा ही। वह उसे रोक तो नहीं पाएंगे। होगा, तो होगा....

लेकिन कहां क्या हो गया! दो दिन के बाद ही देवक को सहसा आभास हुआ कि कंस ने केवल स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही ऐसा करने का निश्चय किया है। यह चर्चा सारी पुरी में हो रही थी। देवक ने अपने अग्रज से मिलकर कहा,

''आपने सुना....कंस केवल इस कारण देवकी का विवाह उनसे करवा रहा है कि इस प्रकार वह वसुदेव को अपने पक्ष में कर लेगा। वह तो वृष्णिकुल को भी अपने साथ मिलाकर अपनी शक्ति का और भी विस्तार-भर करना चाहता है!''

उग्रसेन ने हँसकर कहा, ''अनुज! मैंने तो पहले ही कहा था। कहीं न कहीं, कोई और ही कंस को नचा रहा होगा! तो भी तुमको व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं। तुम तो मात्र इतना मानकर ही प्रसन्न रह सकते हो कि तुमने जो सोचा था, और जो उचित है, वही हो रहा है। तुम्हारी पुत्रियों को वसुदेव जैसा समर्थ पति तो मिल ही रहा है! अब यह सब किसी प्रकार कंस के हित में हो तो भी तुमको आपत्ति करने का कोई अवसर नहीं रहा। कंस को रोकने का समय तो हमारे हाथ से निकल ही गया है। अब तो सांप निकल जाने के बाद हमारे हाथ बस, लकीर पीटने वाली बात रह गई है। उसको पीटते रहना ही मूर्खता होगी। अपना काम बन रहा हो तो चुपचाप इस झमेले से अलग रहने में ही इस समय तुम्हारा और हम सबका हित है!''

राजा देवक का लहू सदा ही तप-तपकर उफनता रहता था! अपने अग्रज उग्रसेन को कारागृह में देखकर वह धधकते रहते थे। अपने कुल और वंश के सबसे प्रतापी योद्धा की यह दशा देवक से सही नहीं जाती। किंतु प्राण दे देने से भी तो उनका कोई हित नहीं होने का। देवक को उस समय घोर निराशा होती थी जब उनको लगता कि इतने दिनों से कारागृह में अपने पुत्र द्वारा बंदी रहने के बाद अब स्वयं महाराज उग्रसेन का मन ही टूट गया है। उन्हें अब मुक्त होकर कुछ कर पाने का रंचमात्र भी उत्साह नहीं रहा।

अवसर के अनुसार तो वही उचित था जो अग्रज ने कहा है। अपनी ओर से देवकी के विवाह पर उन्होंने अपने कुल के अनुरूप ही उत्सव करने का विचार किया था, किंतु उनको यह देखकर अपनी पुत्री के भाग्य पर गर्व हो आया कि स्वयं मथुरापति कंस ने अपने कुल की कन्या का विवाह मानकर अपनी ही ओर से भव्य समारोह करवाने का आदेश दिया था। अब तो स्वयं राजा देवक एक प्रकार से महाराज कंस की भगिनी के विवाह-समारोह में 'अतिथि' मात्र बनकर रह गए थे! यह अपने-आपमें कितनी बड़ी विडंबना ही तो थी! किंतु राजा देवक को लगा कि यह विडंबना भी इस समय देवकी के भाग्य की देन है।

और देवकी की विदाई के समय तो राजा देवक आवेग से विह्वल हो उठे। कंस ने ऐसे तो अपने कुल के साथ कभी वैसा दुर्व्यवहार नहीं किया था, किंतु उसने राजा बनने के बाद ऐसा नेह भी तो कभी नहीं दिखाया था! समूचे

यादवगण को अपनी क्रूरता से ही अपने वश में रखने वाला कंस इस समय नेह के अतिरेक को व्यक्त करने के लिए सहसा ही स्वयं निकट गया और देवकी को वक्ष से लगाकर उसने उसे सौभाग्य का आशीष दिया। फिर स्वयं उसको वसुदेव के रथ पर चढ़ा दिया। विदा करने के पहले उसने वसुदेव की ओर देखकर कहा, ''हमारी अनुजा देवकी को कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिए, राजन्!''

वसुदेव ने हँसकर कहा, ''मथुरा के महाबली महाराज की भगिनी को कौन पीड़ा देने का साहस कर सकता है, महाराज।''

कंस ने सहसा ही रथ के सारथी को संकेत करके नीचे उतर आने को कहा और अगले ही पल वह स्वयं उछलकर रथ पर बैठ गया। अश्वों की वल्गा अपने हाथ में लेकर वह देवकी और वसुदेव का रथ स्वयं हांकता हुआ बढ़ चला। वसुदेव गद्‌गद् होकर देवकी की बांह थामे अवाक्-से कंस की ओर निहारते रह गए।

देवकी तो अपने अग्रज कंस को इतना दुलार करते देखकर उसके कंधे पर सिर टिकाकर रोती हुई बोली, ''अग्रज, अब ऐसा ही हो कि मथुरा को अपने महाराज की ओर से नेह ही नेह मिले! सारी धरती को अपने नेह से गीली करके उसे अपूर्व सुख दो, भाई! अब कृपा करके आज ही, इसी शुभ पर्व पर, हमारे ज्येष्ठ पिता को भी मुक्त कर दो!''

वसुदेव ने पत्नी की आकुलता को भांपकर कंस से कहा, ''राजन्! इस अवसर पर अपनी दुलारी भगिनी की इच्छा पूरी करके सारी मथुरापुरी को सुखी कर दो! देवता तुम्हारा कल्याण करें....''

कंस को लगा, उसने कहीं कोई बहुत बड़ी भूल कर दी है! उसको अकस्मात् याद आया कि यहां आते समय ही किसी ने उससे कहा था, ''राजन्! तुमने कहां से ऐसा भ्रम पाल लिया! यह संबंध करने को किसने कहा? जानते हो, इन वृष्णिकुल के यादवों ने शपथ ली है कि एक दिन वह अपने कुल का इतना विस्तार करेंगे कि तुम से अपनी मथुरा छीनकर स्वयं राजा के रूप में इसका पालन करेंगे....वे तो कहते हैं, 'कंस को राजा बनाकर हमको क्या मिलना है! जिस कंस ने हमारा अपमान किया है, उसका प्रतिकार हम नहीं कर सकते तो हमारे वंशज अवश्य उसका वध करके अपने अपमान का प्रतिशोध लेंगे....' राजन्, आपने सोचा तो होता कि कदाचित् देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाले पुत्र ही आपकी हत्या करने की प्रतिज्ञा पूरी करें....।''

कंस सहसा ही चौंक पड़ा मानो उसने आकाशवाणी-सी सुन ली हो, 'राजा कंस, तुझे हो क्या रहा है! अपने हाथों ही तू अपने विनाश का उपाय

कर रहा है....इस देवकी के गर्भ से तेरा वध करने वाला भी तो जन्म ले सकता है! इसका पुत्र तेरा क्या होगा? वह तो वसुदेव का ही पुत्र होगा न! वह वृष्णिकुल का ही तो होगा, जो तेरा विनाश करने की शपथ ले चुके हैं! वसुदेव ने ही तो कहा था....महानायक उग्रसेन को तो इस कुलांगार पुत्र का जन्म होते ही इसे मार देना था....वही वसुदेव अब तेरी ही भगिनी के गर्भ से तेरा विनाश करने वाले पुत्रों को जन्म देगा....सावधान कंस! तूने नारद की बातों को सुनकर भी उनकी अवहेलना की है....तूने उन देवर्षि की बात भी नहीं मानी तो अवश्य तेरे सिर पर तेरा विनाश ही नाच रहा है....''

और अगले ही पल दृश्य सहसा बदल गया—कंस के कंधे पर सिर रखकर उसके स्नेह से भीगी-भीगी देवकी को सहसा ही झटके से उठाकर कंस ने उसे खींचकर अपने सामने खड़ी कर लिया और अपना खड्ग उठा ही रहा था कि वसुदेव ने उसको एक ओर धकेलकर देवकी को अपनी ओट में कर लिया।

''राजन्, क्या हो गया आपको?''

कंस ने किचकिचाकर कहा, ''तुम वसुदेव! मैं....तुमको जानता हूं....मुझे ऋषियों ने बता दिया है कि तुमने मेरी हत्या करवाने की शपथ ली है। तुम इसी देवकी के गर्भ से उत्पन्न संतान से मेरी हत्या करवाओगे....प्रतिशोध लोगे....''

वसुदेव को समझ में आ गया कि कंस के मुंह से उसके मन की हीन भावनाएं ही बोल रही हैं। उसका अपराधी मन बोल रहा है....कंस ने अब तक जो किया है, वह जानता तो है ही कि उसने अनाचार ही किया है! और यह भी जानता है कि पराक्रमी यादव उसको अवसर पाने पर क्षमा नहीं करेंगे। उसको दंड मिलकर ही रहेगा। उसने आज तक अपनी ओर से तो यही प्रयास किया है कि अपने समस्त शत्रुओं को नष्ट कर दे, तो भी लगता है कि किसी नीतिज्ञ ने उसको एक ऐसा मार्ग दिखाया होगा कि वृष्णियों से विरोधभाव को नष्ट करके वह अपना हित कर सकता है! फिर भी कंस के अपराधी मन में दबी उसकी कायरता और आशंकाएं उसे सहज नहीं होने दे रही हैं....अब तो लगता है कि कंस भय और कायरता के कारण अपना विवेक भी गंवा बैठा है। अब वह सहज नहीं रहा। उसको विक्षिप्त मानकर ही व्यवहार करना होगा!

वसुदेव ने खिन्न, विनम्र हँसी के साथ कहा, ''यदि किसी ने ऐसा कहा है तो भी महाबली कंस द्वारा अपनी भगिनी की हत्या करना तो शोभा नहीं देता। इससे तो आपकी घोर लोकनिंदा होगी, राजन्!''

''होती हो, तो होने दो! मैं इस मृत्यु की जड़ को ही काट दूंगा....''

''सावधान!'' वसुदेव ने गरजकर कहा, ''राजन्, आप जो करने जा रहे

हैं, वह हम अपने जीवन को नष्ट कर देने पर भी नहीं होने देंगे। आप इस विषय में कुछ तो विवेक से काम लें। देवकी के पुत्रों से आपको भय हो तो भी इस निर्दोष अबला का क्या दोष? इस निरीह अबला की हत्या करना तो आपको शोभा नहीं देता!''

कंस को आसपास शस्त्रों की झनझनाहट सुनकर चेत आया। उसको लगा कि एक ओर तो उसके विरोधी—संभवत: अधिकतर यादवों का समूह है और दूसरी ओर, उसके अपने अंगरक्षक हैं, जिनमें लगभग सभी मागध योद्धा हैं। उसने आवेश से भरकर कहा, ''तुम विद्रोह करना चाहते हो, वसुदेव!''

''हम तो यादवकुल का विनाश रोकना चाहते हैं, राजन्! हम चाहते हैं, कि आप अपनी इस नवपरिणीता अनुजा को क्षमा करें, और अपनी इच्छा प्रकट करें....हम इसकी रक्षा के लिए क्या कर सकते हैं?''

''इसकी कोई संतान नहीं होनी चाहिए!'' कंस ने दांत पीसकर कहा।

वसुदेव ने पल-भर सोचकर कहा, ''वह तो देवताओं के अधीन है, महाराज। हम मानवों में उसकी गति में बाधा पहुंचाने का सामर्थ्य नहीं है। हां, हम इतना आश्वासन देते हैं कि यदि महाराज को उसकी संतानों से ही भय हो तो हम उसकी हर संतान के जन्म लेते ही उसे लाकर आपको सौंप देंगे। फिर आप स्वयं ही निर्णय कर लीजिएगा कि उसका क्या किया जाए। आपको देवकी की हत्या करने से तो कोई लाभ नहीं, राजन्! यदि आपको ऐसी ही शंका है तो यह भी सोच लीजिए....मात्र देवकी ही तो हमारे कुल में ऐसी वधू नहीं, जिससे पुत्रों का जन्म होगा! आप कितनी युवती वधुओं की हत्या करके अपना राज्य चलाना चाहते हैं और कब तक....''

कंस का आवेश उतरने-सा लगा।

वसुदेव की बात में उसको सत्य का आभास मिला। बोला, ''तुम प्रतिज्ञा करते हो?''

''करता हूं।'' वसुदेव ने दृढ़ स्वर में कहा।

और कंस सहसा उनको वहीं छोड़कर अपने अंगरक्षकों से घिरा राजप्रासाद की ओर चला गया।

छ:

दो वर्ष बाद....मगध के क्रूर सैनिकों से घिरा हुआ कारागृह! एक के बाद एक तीन लौहमय कपाटों को पार करने के बाद वह कक्ष है, जिसमें वसुदेव और देवकी को रखा गया था!

वसुदेव पर विश्वास करके कंस ने पहले तो उनको उनके भवन में ही रखा था। हां, उसके चारों ओर मागध प्रहरी नियुक्त कर दिए थे। किंतु फिर कंस के मागध मंत्रियों ने मंत्रणा दी थी कि कोई कितना भी सत्यवादी क्यों न हो, अपनी संतान के विषय में वह घोर असत्य भी अपना सकता है। वसुदेव स्वयं अपनी नवजात संतान को लेकर पहुंचाने आएगा–इस पर कौन विश्वास कर सकता है। फिर ये वृष्णिवंशी यादव! इन्होंने तो कुलदेवता की सौगंध लेकर प्रतिज्ञा की है कि कंस को एक पल के लिए भी निश्चिंत होकर राज्य नहीं करने देंगे! विनाश कर देंगे उसका।

देवकी गर्भवती है–यह सुनते ही कंस ने वसुदेव और देवकी को कारावास में डाल दिया था।

कारागृह पर नियुक्त क्रूर प्रहरी उस समय बाहर ठहाके लगा रहे थे और भीतर देवकी प्रसव-पीड़ा से तड़फड़ाती हुई चीख-चीख पड़ती थी।

अर्धरात्रि ऐसे ही बीत चली। सहसा चीत्कार रुक गए। उस भयानक शांति से वासुदेव सिहर उठे। उन्होंने कांपते स्वर में पूछा, ''देवकी कुशल से तो है, त्रिशला!''

कारावास के प्रहरियों के प्रमुख योद्धा प्रतिदाह की मुंहलगी प्रेमिका थी त्रिशला। दासी थी वह और कुछ समय पूर्व तक यादव प्रमुख वसुदेव के समक्ष आंख तक नहीं उठा पाती थी। किंतु इस समय उच्छृंखलता के साथ इठलाकर बोली, ''कुशल से है आपकी देवकी रानी....पुत्र उत्पन्न हुआ है! पुरस्कार दोगे....''

वसुदेव ने गले में अटका अवरोध घूंटकर कहा, ''देता तो, त्रिशले.... किंतु....किंतु इस समय तो....''

''रहने दो अपना पुरस्कार! मुझे तो पुरस्कार महाराज देंगे ही! मैं जाती हूं।'' वह व्यंग्य से हँसकर मुड़कर चल दी। फिर तुरंत ही पलटकर बोली, ''वह अचेत पड़ी है। चुपचाप शिशु को लेकर महाराज के पास चले जाओ!''

''आं?'' वसुदेव चौंक पड़े।

त्रिशला व्यंग्य से खींचकर बोली, ''हांऽऽ! जाओगे न? या मैं जाकर प्रतिदाह से कहूं। वही ले जाएगा इसे!''

''नहीं, नहीं! मैं...'' वसुदेव ने पसीना पोंछते हुए कहा, ''मैं ही जाता हूं!''

त्रिशला खिल से हँसकर चल दी!

देवकी चेत में आते ही चिल्ला पड़ी, ''मेरा पुत्र कहां है, आर्यपुत्र....मेरा नन्हा-

सा लाल....'' वह किसी प्रक़ार उठ बैठी, ''कहां है आप?''

किंतु वहां न देवकी के पति थे, न वह नवजात शिशु ही!

देवकी पर जैसे वज्राघात हुआ। वह तड़पकर फिर बेसुध हो गई!

''देवी....देखो तो....उठो देवकी! यह लो! अपने पुत्र को संभालो प्रिये....''

''पुत्र!'' देवकी ने आंखें खोली। विक्षिप्त-सी देखती रही फिर झपटकर वसुदेव के हाथ से पुत्र को झपटकर उसने छाती में भींच लिया।

''कुछ भी हो, देवी! आखिर कंस भी है तो मनुष्य ही! महानायक उग्रसेन का पुत्र है! उनके संस्कार तो रहेंगे ही। मेरे हाथों में कुलबुलाते शिशु को कुछ देर घूरता रहा, फिर विचलित होकर दूर हट गया। बोला, 'वसुदेव! तुमने वचन निभाया। मैं प्रसन्न हूं। अब ले जाओ इसे! इस अबोध शिशु से मेरा कोई वैर नहीं। ऋषियों का कहना है कि देवकी का आठवां पुत्र ही मेरा शत्रु है। उसे मैं नष्ट कर दूंगा! जाओ!' ''

वसुदेव ने लंबी सांस छोड़ी। बोले, ''मुझसे....मेरे सत्य से प्रसन्न होकर कंस ने हमें कारागृह से मुक्त करने की आज्ञा भी दे दी है।''

देवकी हुलस उठी। उसे लगा, जीवन में सर्वस्व मिल गया। उसका नन्हा-सा लाल मृत्यु के मुख में जाकर भी लौट आया था। उसकी कृशकाया में मातृत्व के आवेग से जैसे भावनाओं की लहरें-सी दौड़ने लगीं। उसने शिशु को दुलारा। चूमा और अपने दूध से भरे स्तन को खोलकर नन्हें-से सुंदर मुख को हृदय से सटा लिया! रोम-रोम अद्‌भुत आनंद से विभोर हो उठा था देवकी का....

भोर होते ही! वज्राघात-सा हुआ!

प्रचंड गर्जन!

लौहमय कपाट सहसा धड़ाम से खुला।

देवकी कुछ समझ पाती कि राक्षस की भांति हुंकारते कंस ने झपटकर नवजात शिशु को छीन लिया। पांव पकड़कर उसे जोर से घुमाया और पत्थर के खंभे पर दे मारा।

नन्हे से शरीर के चिथड़े उड़ गए। खून के छींटों से नहाया कंस विक्षिप्त की भांति हुंकारता-गरजता हुआ चला गया।

देवकी के सामने घोर अंधकार छा गया। सब कुछ नाचता-सा जान पड़ा।

वसुदेव स्वयं आंखें फाड़े वह दृश्य देख़ते रहे। फिर उन्होंने धीरे से देवकी को उठाकर आस्तरण पर लिटा दिया और मिट्टी के कलश से जल छिड़क-छिड़क़कर देवकी को सचेत करने का प्रयास करने लगे।

बाहर अब भी निर्मम प्रहरियों के अट्टहास गूंज रहे थे। कहीं दूर से संभवत: प्रतिदाह के कक्ष से त्रिशला की तीखी खनक-भरी हँसी सुनाई पड़ रही थी।

कई दिन बाद वसुदेव को एक यादवी दासी बता रही थी—महाराज कंस विक्षिप्त-से हो गए हैं। कितनी ही बार बड़बड़ाया करते हैं : "....वह ऋषि ठीक ही कहता है....यह पहला पुत्र ही आठवां हो सकता है....मैं नष्ट कर दूंगा! सभी को नष्ट कर दूंगा...."

निकट ही बेठी देवकी ने कांपकर चेहरा पति के वक्ष में गाड़-सा दिया।

वसुदेव एक शब्द भी बोले बिना पत्नी की कांपती देह को धीमे-धीमे थपकी देते हुए सांत्वना देने की चेष्टा करते रहे।

सात

धीरे-धीरे मथुरा में यादव सैनिकों और योद्धाओं का प्रभाव क्षीण ही होता जा रहा था। मागध सेनापतियों की क्रूरता से आतंकित करने वाला शासन अब इतना दृढ़ हो चला था कि कंस के अनाचारों का खुलकर विरोध करने वालों का अब कहीं जैसे अस्तित्व ही नहीं रह गया हो।

देवकी के विवाह के बाद कितने ही वर्ष बीत गए थे।

इस बीच कंस ने देवकी के गर्भ से उत्पन्न छह पुत्रों की क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी थी। वसुदेव और देवकी को कितने ही वर्षों से कारागृह में ही रहना पड़ा। कौन सोच सकता था कि वृष्णिकुल का वह प्रतापी योद्धा, जिसके संकेत पर सारा कुल प्राण देने को तत्पर रहता हो, इस प्रकार अपने यौवन के दिन नवपरिणीता वधू के साथ कंस जैसे निरंकुश राजा के कारागार में बिताने को विवश होगा....

केवल वृष्णिकुल को ही नहीं, वरन एक-एक करके सभी यादवकुलों को अनुभव हो गया था कि कंस का राज उनके हित के लिए नहीं, वरन अकेले कंस के और मगध के उस महाबली जरासंध की महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए ही था। यह तो संयोग की ही बात थी कि कंस का अंत:पुर अनेक राज्यों की राजकन्याओं से भरा हुआ था और उनके अतिरिक्त न जाने कितनी और भी रानियां थीं, तो भी कंस की उन अनगिनत भार्याओं ने एक भी पुत्र को जन्म नहीं दिया था! और यदि ऐसा होता भी तो....मगध की दोनों राजपुत्रियों के होते किसी और रानी का पुत्र होता भी तो क्या कंस उसे अपना

युवराज बना सकता था?

यादव एकमत होकर कहते थे कि अपने श्वसुर जरासंध के अधीन रहकर कंस चाहे कितने ही दिनों तक राज कर ले, किंतु अंत तक मगध का वह चक्रवर्ती स्वयं ही मथुरा पर अपना राज स्थापित करेगा। उसकी दोनों पुत्रियां वास्तव में कंस को अपने रूप-यौवन के जादू से बांधकर अपने पिता का ही हित साधने के लिए मथुरा आई हैं और एक सीमा तक तो वे सफल हो ही चुकी हैं। अब मथुरा में उनके अधिकार से बाहर बचा ही क्या रह गया है?

यादवों ने प्रारब्ध को ऊपर से एक सीमा तक स्वीकार भले ही कर लिया हो, वह विवशता थी, किंतु उन्होंने मन से एक दिन को भी हार नहीं मानी। कंस के कारण प्रत्यक्षत: तो यादवों की सारी ही प्राचीन परंपराएं लगभग समाप्त ही हो चली थीं, किंतु समाज का कार्य तो किसी न किसी रूप में चलता ही रहता था।

स्वयं महारानी अस्ति पहले की तरह यादवों की अपने-अपने कामों में रत रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना ही उचित समझती थी। उसका कहना था कि यदि उन्हें अपनी छोटी-छोटी प्रथाओं और रीतियों के प्रसंग में रोका गया तो भयंकर विरोध होगा! फिर ऐसा तो हो नहीं सकता कि सारे के सारे यादवों को कारावास में रखकर उनको वश में किया जा सकेगा। इसलिए होना यही चाहिए कि उनको पहले की तरह ही अपने दैनिक कार्यों में उलझा रहने दिया जाए और बिना किसी प्रकार की रोक लगाए उन्हें अपने-अपने सामाजिक पर्वों- उत्सवों को भी करने दिया जाए। इस प्रकार उनका मन शिथिल होकर धीरे-धीरे अपनी परंपराओं को क्षीण होते देखकर तनाव में पड़ने से भी मुक्त हो जाएगा। वे चुपचाप अपना-अपना काम करते रहेंगे तो एक दिन पीड़ा वाली बात ही समाप्त हो जाएगी और वे सहज मन से कंस को अपना स्वाभाविक अधिपति मानने लग जाएंगे। फिर उनको यह कसक भी नहीं होगी कि अब उनके यहां गण के स्थान पर राजतंत्र स्थापित हो गया है?

कंस ने कुछ ही दिनों के बाद देखा कि वास्तव में यादवों पर जितना ही कठोर बंधन लगाया गया था, वे उतने ही प्रबल विरोधी होते जाते थे, किंतु जबसे अस्ति की नीति का पालन किया जाने लगा था, तब से अधिकतर यादवों के मन का तनाव दूर होता-सा लगता था। एक समय तो ऐसा आ गया कि अब यादवों के युवक कंस की ओर से पहले की तरह विलगाव की बात भूलकर, उसकी सेना तथा राजकीय कार्यशालाओं में भी भाग लेने लगे थे।

इसके साथ ही कंस की महारानी अस्ति ने कुछ और भी उपाय किए थे। कंस को पहले अस्ति की बात पर विश्वास नहीं आता था कि एक दिन

सचमुच मथुरा के हाट-बाजार भी पूर्व के मगध राज्य के हाटों की भांति महारानी की ओर से बनवाए जाने वाले उन पानागारों को अथवा मद्रदेश के आमोदगृहों की-सी परंपरा को स्वीकार कर लेंगे। लेकिन महारानी अस्ति का साथ मानो प्रारब्ध भी देता रहता था। कंस को कुछ ही मास में यह देखकर अचरज और हर्ष दोनों ही अनुभव हुए कि अब मथुरा पर वैसा ही मतवालापन छा रहा था जो कई वर्ष पहले उसने यात्रा करते समय मद्र आदि राज्यों में देखा था।

स्वयं कंस महाविलासी था और अपने राज्य की शोभा बढ़ाने वाली देश-देश की सुंदरियों की भीड़ मथुरा में बढ़ती देखकर उसको वास्तव में हर्ष ही होता था।

देखते ही देखते मथुरा को रंगीन सपनों की नगरी-सी बनाकर अस्ति एक दिन हँसती-हँसती कंस से बोली, ''लो, महाराज! हमने केवल राजा को ही नहीं, राजा की राजधानी को भी हास-विलास की राजधानी बना दिया। अब तो महाराज की ही भांति महाराज की प्रजा भी अपने मन की सुंदरियों के साथ अपने को आकंठ सुख में डुबाकर महाराज को रात-रात-भर की चैन की नींद देने लगी है।''

महाराज कंस को तो अपने लिए कोई बहाना ही चाहिए था। उन्होंने महारानी को अपनी भुजाओं में भरकर कहा, ''महारानी प्रजा को सुख देने की लालसा में अपने राजा के सुख की तो ऐसी अवहेलना करती रहती हैं कि यह दास अब भी तरस-तरसकर ही रात काटता है।''

सुंदरी अस्ति ने इतराकर कहा, ''अब तो महाराज को एक कला और भी आ गई है। पहले जब महाराज मात्र पराक्रम से ही मगध की राजदुहिताओं को जीतकर ले आए थे, तब यह कला राजा को नहीं आती थी। अब तो महाराज ने अपनी प्रजा को देख-देखकर अपनी रानियों को छलना भी सीख लिया है।''

कंस ने हँसकर कहा, ''तो क्षमा करें, महारानी! जिस राजा के पास इसी धरती पर एक नहीं, दो-दो ऐसी रानियां हों जो देवागनाओं को भी लज्जित करने वाले रूप-यौवन से संपन्न हों, उस राजा को यदि रातों में ऐसे ही नींद के बिना सोना पड़ता हो तो किस का दोष! छल तो अब अपने को छलने के लिए ही करना पड़ता है। मगध की सुंदरियों ने तो आकर मेरे जीवन की धारा ही बदल दी है। अब तो कहने का मन होता है कि 'यथा प्रजा, तथा राजा।''

अपने महाबली पति को इस प्रकार कहावत को ही बदलकर प्रजा से सीख पाने की ललक देख अस्ति बड़ी देर तक लहरा-लहराकर हँसती रही। बोली, ''जब राजा ही अपनी प्रजा की भांति मनोरंजन को प्रिय समझता हो तो

मगध की सुंदरियों का क्या जाता है। महाराज की इच्छा पूरी करने के लिए ही तो हम सब कुछ छोड़कर इतनी दूर चली आईं हैं!''

और उस रात पूरे एक वर्ष बाद पहली बार अस्ति ने अपने को पूरी तरह से पति के अंक में ढलक जाने दिया था!

और उसी रात वृद्ध आर्य विकद्रु यादव ने अपने यहां यादवों का एक समारोह आयोजित करवाया था। उसमें विकद्रु ने अपने सभी वयोवृद्ध यादवों के साथ जाकर महाराज कंस को भी आमंत्रित किया था। प्रसंग था– स्वयं विकद्रु यादव के ज्येष्ठ पुत्र की कन्या के विवाह का।

विकद्रु ने विशेष रूप से महारानी और उनकी अनुजा देवी प्राप्ति का भी दर्शन करके उनसे अनुनय किया था कि महाराज को यदि अवकाश हो तो अनुकंपा करके वर-वधू को इस अवसर पर अपने दर्शन का अवसर दें। वर-वधू महाराज और महारानियों को प्रणाम करके आशीर्वाद पाने को उत्सुक हैं।''

महाराज कंस को इससे पूर्व कभी, किसी भी शुभ पर्व पर इतने मान्य और वयोवृद्ध यादव की ओर से ऐसा अनुरोध नहीं प्राप्त हुआ था। उन्होंने हर्षपूर्वक महारानी की ओर देखा और बोले, ''देवी, प्रजा की इच्छा का पालन करना हमारा धर्म है। यदि आपकी अनुकंपा हो जाए तो प्रजा को विशेष सुख प्राप्त होगा।''

किंतु महारानी के मुखमंडल पर आए भावों को देखते ही कंस ने तत्काल समझ लिया कि महारानी को उसका यह उदार प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा है। वह बोला, ''तो ऐसा हो कि दोनों वर-वधू यहीं राजप्रासाद पर आकर महारानी का प्रसाद प्राप्त करें।''

विकद्रु तो मानो यही चाहते थे। बोले, ''हम तो इसी आकांक्षा से महाराज की आज्ञा प्राप्त करने आए थे। देवता आपका कल्याण करें!''

विकद्रु आदि के जाते ही कंस ने अस्ति से कहा, ''मैं तो समझता था, देवी यही चाहती होंगी! ऐसे अवसर पर वहां समारोह में जातीं तो अधिक से अधिक प्रजा को आपके दर्शन का सुख मिलता। साथ ही प्रजा को एक नई परंपरा से अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करते रहने की प्रेरणा भी मिल जाती।''

कंस की बात सुनकर महारानी अस्ति को लगा कि अब महाराज की भावनाएं वास्तव में प्रजापालन और उसका हित-अहित देखने की ओर प्रवृत्त हो रही हैं। किंतु वह किसी ऐसे समारोह में जाकर अपनी गरिमा को हीन नहीं करना चाहती थी। वह तो प्रजा और राजप्रासाद के बीच इतनी दूरी बनाए रखने को ही राजधर्म मानती थी कि प्रजा के मन में सदा ही राजा और महारानी का

दर्शन पाने की ललक बनी रहे और वह भी ऐसी कि वह इसके अतिरिक्त अपने जीवन में कुछ सोच ही नहीं सके। इसी कारण महारानी अस्ति कभी एक-दो पल को प्रजा की दृष्टि में आ जाने को—मात्र एकाध उत्तेजक-सी झलकी दिखा देने को—ही पर्याप्त मानती थी। वह ऐसा करना उचित नहीं मानती थी कि जाकर महारानी उन लोगों के बीच बैठी हुई वर-वधू का ऐसा सम्मान करें जिससे प्रजा को महारानी और महाराज की जगह वर-वधू की गरिमा ही अधिक जान पड़े।

कंस अब तक अपनी बात का उत्तर पाने की आशा से पत्नी की ओर ताक रहा था।

अस्ति ने उसे प्रसन्न करने की इच्छा से कहा, ''महाराज की प्रजा के प्रति ऐसी प्रीति देखकर तो अच्छा लगा, किंतु महाराज ही सोचें, यदि प्रजा का मन इतना बढ़ गया कि वह हर बार किसी युवक-युवती के विवाह के अवसर पर महाराज और महारानी को वहीं पधारकर आशीष देने को कहने लगी तो फिर महाराज को राजकाज देखने का अवसर ही कहां मिलेगा!''

कंस को मानो इस बीच कोई और ही विचार आकर आंदोलित करने लगा था। वह तत्काल ही इस प्रसंग को भूलता हुआ बोला, ''एक बात तो अवश्य ही विचारणीय है, महारानी। आपने ध्यान नहीं दिया कि इस बार हमारे पास आने वाले सभी यादव वयोवृद्ध ऐसे यादव योद्धा थे जो एक दिन इस मथुरा के वास्तविक शासक थे!''

'वास्तविक शासक' वाली बात पर चकित होकर महारानी ने कहा, ''ऐसे वचन कहकर महाराज तो हमको विचलित कर देते हैं। 'वास्तविक शासक' तो मात्र एक ही हैं—स्वयं महाराजाधिराज कंस! जो आज मथुरा के अधिपति हैं और जिनका आदर स्वयं मगधपति करते हैं। जिनका पराक्रम इसी से सिद्ध है कि मगध के चक्रवर्ती ने स्वयं अपनी उन दोनों ही लोकविख्यात दुहिताओं को महाराज की सेवा में प्रस्तुत कर दिया, जिनको पाने के लिए यक्ष-गंधर्व तक आतुर रहते होंगे!''

कंस महारानी की ओर से मीठी-सी भर्त्सना सुनकर मन ही मन लज्जित हुआ। बोला, ''मेरा आशय मात्र इतना ही था, प्रिये, कि कल जो अपने को मथुरा का 'वास्तविक शासक' मानते थे....उनका आना और हमारी अनुकंपा के लिए विनीत होकर इस प्रकार अनुनय करना विशेष रूप से विचारणीय है। उनके द्वारा हमारे अधीन नतशीश होकर ऐसा भाव प्रदर्शित करने का अर्थ है कि वे अब हमारा विरोध त्यागकर हमारी अधीनता स्वीकार करके ही रहना चाहते हैं।''

महारानी अस्ति अवहेलना-सी दिखाती हुई बोली, ''नहीं तो उनको अपने जीने की और कौन-सी राह मिलती, महाराज? उनको तो यदि यहीं रहकर जीना है तो यह अवसर मात्र हमारी कृपा को स्वीकार करके ही प्राप्त हो सकता है! नहीं तो उनको भी अपने अनेक बंधु-बांधवों की भांति पलायन करके किसी और राज्य में जाना होगा!''

कंस कुछ विचलित तो हुआ, किंतु उसने महारानी पर अपने मन का भाव नहीं प्रकट होने दिया। उसको उस समय अपने बालमित्र संभव की याद आ रही थी। उस संभव ने असंभव को ही संभव कर दिखाया था। कंस को आशा थी कि संभव उसकी समृद्धि को देखकर उसकी सराहना करेगा और बाल्यकाल की उन बातों को याद कर-करके हँसेगा कि कंस ने अपनी इच्छा के अनुसार, सचमुच ही काल को विचलित करके अपने को परम सफलता उपलब्ध करवा ही दी। किंतु कंस को यह सुनकर आश्चर्य हुआ था कि मथुरा पर कंस का अधिकार होने पर सबसे पहले संभव ने ही मथुरा छोड़कर अन्यत्र प्रस्थान कर दिया था।

कंस को एक बार तो लगा कि संभव को संभवत: भय के कारण जाना पड़ा होगा अथवा उसके साथ कोई और घटना हो गई होगी। किंतु बाद में कंस को उसके चरों ने ही बताया था कि संभव तो कंस की इस उपलब्धि को ही दुर्भाग्य घोषित करके स्वयं मथुरा छोड़कर चला गया है। चरों ने बताया कि उन्होंने तो महाराज का बालमित्र जानकर ही आर्य संभव चले जाने दिया। यदि उनको आशंका होती कि वह स्वयं महाराज के विरोधियों का साथ देंगे तो....

संभव ने अपने-आप ही राज्य से अपने को निर्वासित कर लिया था, जबकि कंस को विश्वास था कि उसका वह बालमित्र निश्चय ही उसका साथ देगा! कंस तो उसको ही अपना अंगरक्षक बनाना चाहता था। न जाने संसार में किस समय किसका रूप कितना बदल जाता है, लेकिन इसी बात पर कंस को लगा, वह स्वयं ही तो इसका सबसे बड़ा प्रमाण है! क्या उसके बारे में किसी ने, स्वयं संभव जैसे बालमित्र ने भी, कभी सोचा होगा कि एक दिन यही कंस अपने पिता तक को बंदी बनाकर स्वयं को महाराज घोषित कर देगा और यादवगण को ध्वस्त करके स्वयं 'राजा' बन जाएगा?

किंतु कंस को महारानी अस्ति इतनी देर तक सोचने का अवसर ही क़हां देती हैं! वह किन चिंताओं में लीन रहते हैं, अस्ति को इसका पूरा-पूरा ध्यान रहता है। वह तो कंस को मात्र अपने राज्य के बारे में ही सोचने का अवकाश देती है। और वह भी जब अनिवार्य हो जाता है, तभी। नहीं तो इस विषय में भी सोचने का और राजकाज को चलाने का कार्य तो स्वयं महारानी ही करती

हैं।

संभव के विषय में महारानी ने एक बार नहीं, अनेक बार महाराज से सुना है और उसका पता भी लगवा लिया है। कंस का वह बालमित्र इन दिनों किसी ऋषि के आश्रम में रहता है और उसके शिष्यों को धनुर्वेद की शिक्षा देकर अपना जीवन-यापन कर रहा है। किंतु चाहती हुई भी अस्ति ने उसको अपने राज्य में बुलवाने की कोई चेष्टा नहीं की थी। वह नहीं चाहती कि महाराज का बालमित्र संभव किसी प्रकार की हीन बातें करके स्वयं कंस का मन फेरने का प्रयास करे। ऐसा तो न जाने कितने यादवकुल के नेता और हितैषी करते ही रहते हैं।

हँसती-हँसती महारानी ने महाराज का हाथ थामकर कहा, ''अब विश्राम का समय है, देव! अथवा हम दोनों में से किसी दासी की ओर से महाराज की कामनाओं का सत्कार करने का! ऐसा सुखद समय क्या चिंतन में गंवा देने का है?''

महारानी अस्ति की ओर से ऐसा मादक प्रस्ताव आने के बाद तो महाराज कंस को इंद्रपद का लोभ भी नहीं डिगा सकता था। और धनुर्धर संभव यादव तो बीते हुए समय का एक हीन प्रसंग मात्र रह गया था!

आठ

उसी रात वयोवृद्ध विकद्रु के यहां यादवों का समुदाय अपनी गोपनीय मंत्रणा में लिप्त था। महाराज कंस की आज्ञा के अनुसार, वर-वधू को लेकर यादवियों का समुदाय कुछ ही समय पहले नृत्य-गीत के साथ उत्सव-यात्रा-सी निकालकर राजप्रासाद की ओर चला गया था। उनकी रक्षा के प्रबंध का भार श्वफल्क यादव के पुत्र अक्रूर को सौंपा गया था जो अपनी ओर से यादवों का विद्रोही बनकर इन दिनों महाराज और विशेषकर महारानी अस्ति का प्रिय मंत्री हो गया था! श्वफल्क यादव अपने दान और उदारता के कारण यादवकुल के अलंकार माने जाते थे। कहा जाता है कि उनकी उपस्थिति से सारा राज्य उनके पुण्यकार्यों के कारण सदा ही अकाल आदि प्राकृतिक व्याधियों से भी मुक्त रहता था। जहां स्वयं श्वफल्क जैसे पुण्यात्मा दानवीर हों, वहां इंद्र देवता की कृपणता का कोई प्रभाव प्रजा पर नहीं होने वाला था। श्वफल्क यादव की उदारता ही प्रजा को संतृप्त रखती थी।

और उनकी पत्नी काशीराज के ही कुल की थी—गांदिनी। कहा जाता है कि उदारता और दान में गांदिनी तो श्वफल्क से भी कई गुना आगे थी। उसने

अपने बाल्यकाल से ही इतनी-इतनी विशाल संख्या में गायों का दान किया था कि राजा ने उस पुत्री का नाम ही गांदिनी रख दिया था– अर्थात् गायों का दान करने वाली!

उन उदार दानी दंपती का पुत्र था अक्रूर– अर्थात् जो क्रूर नहीं हो! उसका एक नाम वभ्रु भी था। अपने एक पराक्रमी पूर्वज 'वभ्रु' के समान ही तेजस्वी होने के कारण यह उसका प्रतीक नाम रहा। अक्रूर स्वयं ही इतना दानी था कि उसका एक नाम 'दानपति' भी हो गया था। दानपति अक्रूर ने अचानक ही एक विचित्र-सा कार्य कर डाला था। एक दिन सुनने में आया कि दानपति अक्रूर ने स्वयं जाकर महाराज कंस से आग्रह किया था कि उनको इन यादव वृद्धों का निरंतर विवाद करने वाला स्वभाव अच्छा नहीं लगता। वह अपने राज्य की प्रजा का हित करने का अवसर पाना चाहता है। 'ऐसा तो अब एक ही प्रकार से संभव है कि यहां के सब यादव एक होकर महाराज के साथ प्रजा का हित करने का संकल्प लें। मेरा यही मत है और मैं महाराज की आज्ञा हो तो जैसे भी संभव हो, अपने राज्य की प्रजा का हित करने के लिए अपना प्राण भी निछावर करने को तत्पर हूं।'

उस समय महाराज कंस की सेवा में प्राचीन देवयोनि की जातियों यक्ष-गंधर्वों के क्षेत्र से एक सार्थवाह अनेक विचित्र वस्तुएं लेकर आया था और महाराज उसकी चकाचौंध कर देने वाली वस्तुओं को देख-देखकर चकित-विस्मित हो रहे थे। उनको अक्रूर की बात सुनकर अचरज हुआ। मन ही मन हर्षित कंस को लगा कि अब यादवों के बीच वास्तव में, महारानी की इच्छा के अनुसार, नए-नए समर्थक पैदा हो रहे हैं। फिर भी उनको उस समय अक्रूर से विस्तार से बात करने की इच्छा नहीं थी। अतः उन्होंने पल-भर सोचकर कहा, ''जाकर तुम महारानी के चरणों में निवेदन करो। संभव है, महारानी के पास तुम्हारी सेवाएं प्राप्त करने का कोई अवसर हो।''

कंस ने वास्तव में अक्रूर को उस समय टालने के लिए ही ऐसा कहा था। ऐसे तो कंस को आभास था ही कि महारानी से विचार-विमर्श किए बिना यादवों के इतने विख्यात वंश के अक्रूर जैसे किसी युवक को अपनी सेवा में लेना संभव नहीं होगा। और वह अक्रूर को ऐसा जताना भी चाहता था कि 'महाराज कंस' को उन लोगों की सेवा की कोई चिंता नहीं रहती। उनकी इच्छा हो तो वे अपने-आप जाकर महारानी से ही विनती करें। महारानी को मगध की चरी कहकर उनका अपमान किया जाता रहा है और कितनी ही बार तो प्रजा के बीच ऐसा विवाद फैलाने का प्रयास भी किया गया था कि महारानी अस्ति वास्तव में हमारे पावन संस्कारों का अपमान करती है और अपने कीकट क्षेत्र

की हीन संस्कृति का प्रचार करके यादवों को भ्रष्ट करना चाहती है।

ऐसे कितने ही यादवों को महारानी की आज्ञा से दंडित किया गया था। कंस ने तो ऐसे विद्रोहियों को प्राणदंड देने को कह दिया था, किंतु महारानी अस्ति ने ऐसा नहीं होने दिया था। उनकी आज्ञा से ऐसे कितने ही लोग इन दिनों भी कारागृह में पड़े जीवन का एक-एक पल दुस्सह यातनाएं झेलते हुए काट रहे थे।

कंस की इच्छा थी कि महारानी का अपमान करने वाले किसी भी व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार नहीं होना चाहिए। किंतु महारानी ने अपनी मादक हँसी से अपने पति को पलक मात्र में कोमलता से तर करती हुई कहा था, ''महाराज, इस प्रकार तो हमारी सारी ही प्रजा किसी दिन आवेश में आकर अपना जीवन गंवा देने को आ जाएगी। ऐसे में महाराज राज्य किस पर करेंगे? और सच कहती हूं, मेरी कामना प्रजा के प्राण लेकर सुखी नहीं होती। मेरी तो इच्छा है कि जिस प्रकार मैं महाराज के हृदय पर राज्य करती हूं, उसी प्रकार महाराज की प्रजा के हृदय पर भी हम दोनों रानियां शासन करें। यह देखने के लिए तो मुझे प्रजा का जीवन चाहिए, उनका प्राण नहीं! यही सोचकर मैं उनको भी जीवनदान करती हूं कि कल को तो उनको भी मेरे प्रति विश्वास जागेगा ही। उस समय वह स्वयं हमारा जयजयकार करते हुए आकर हमारे प्रति अपना आभार जताएंगे और हमारी कामनाओं के अनुसार हमको अपने हृदय में स्थान देंगे!''

महाराज कंस ने जो कुछ इतनी देर में महारानी से सुना था, उसमें से मात्र एक ही बात उसकी समझ में आ सकी थी कि रूपवती अस्ति को हृदय का राज्य चाहिए। वह बोले, ''तो महारानी, अपने कोमल चरणों से मेरे हृदय को रौंदकर अपना शासन सुदृढ़ कर लें!''

और मदिरयौवना महारानी को राजा कंस से इससे अधिक की आशा ही कहां रहती थी?

जिस समय अक्रूर को महारानी की सेवा में प्रस्तुत किया गया था, उस समय महारानी अस्ति ने अपना उत्तम शृंगार किया था। अक्रूर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि महारानी के विषय में तरह-तरह की सूचनाएं सुनते-सुनते उनके समक्ष जिस अतिक्रूर, महत्त्वाकांक्षिणी कीकट युवती की छवि उभरती थी, महारानी अस्ति तो उसके विपरीत, अपनी सुंदरता और शालीनता के कारण मन को मुग्ध करने वाली सहज, समर्थ और उन्मदयौवना स्त्री है! हो सकता है कि अपने पिता जरासंध के साथ जुड़ी होने के कारण ही उसको यादवों की ओर

से मात्र घृणा ही मिला करती है, नहीं तो उसको देखने और उससे वार्ता होने के बाद तो अक्रूर को अस्ति बड़ी ही योग्य और राजधर्म को जानने वाली ऐसी सुंदरी लगी जो संयोग से कंस जैसे अयोग्य और क्रूरकर्मा व्यक्ति की पत्नी होने का अभिशाप भुगत रही है!

अक्रूर के मन की बात तो वह सुंदर रानी नहीं ही सुन पाती होगी सो अक्रूर को ऐसा ही लगा कि महारानी ने निश्चय ही यादवों का हित करने की ही सोचकर महाराज कंस को वसुदेव से देवकी का विवाह करने का परामर्श दिया होगा। किंतु कंस ने अचानक ही वृष्णियों के प्रति अपना द्रोह होने के कारण उस उत्तम विवाह-संस्कार को ऐसे गर्हित कांड में बदल डाला था! भय की अवहेलना करने की घोषणा करते रहने वाले ऐसे ही असमर्थ और अपराधी मानसिकता के व्यक्ति अपनी ही भीरुता के कारण कितना नीचे गिर जाते हैं, इसका उदाहरण कंस जैसा योद्धा था! वह पहले तो अपने श्वसुर जरासंध के संकेत पर अपने ही कुल के यादवों का शत्रु बनकर राजा बना और अब अपने ही भय के कारण सारे राजसुख को मृत्यु का फंदा मानकर पीड़ित हो रहा है। महारानी अस्ति की रूपाभा और शालीनता से विचलित अक्रूर को उस समय तो सचमुच ही महारानी अस्ति के प्रति सहानुभूति-सी ही होने लगी थी।

जो भी हो, महारानी ने नीतिकुशल होने का भी पूरा परिचय दिया। वह अक्रूर की इस बात से संतुष्ट हो गई कि वह यादवों को धीरे-धीरे स्वयं कायाकल्प-सा करके उन्हें महाराज और महारानी के प्रति निष्ठावान बनाकर प्रजा के पक्ष में लाने के लिए प्रयास करना चाहते हैं। और इसके लिए उन्हें ऐसे तो अभी कुलपुरुषों की आंखों में अपमान और घोर तिरस्कार ही मिलता रहता है, किंतु जब वह देखेंगे कि अक्रूर को महाराज की कृपा से सचमुच प्रजा का हित करने का अवसर मिल रहा है तो वे अवश्य इस पर विचार करेंगे।

संतुष्ट होकर महारानी ने स्वयं अक्रूर से पूछा था, ''आप किस पद पर कार्य करने को उत्सुक हैं?''

उस समय महारानी की मीनाकार आंखें पहली बार मादक हँसी से तर-सी हो उठी थीं, फिर भी अक्रूर को उनमें नीतिगत चातुरी की झलक मिली। वह सावधान हो गए। नतशिर होकर बोले, ''देवी ने मेरा आशय जो भी समझा हो, मैं उसे देवताओं की इच्छा मानता हूं। किंतु मेरा मन तो किसी पद पर कार्य करने का नहीं है। मेरा तो मात्र इतना ही अनुरोध है कि कोई ऐसा अवसर दिया जाए कि मैं अधिकार के साथ महाराज की ओर से प्रजा का हित करना चाहूं तो किसी के द्वारा उसकी अवहेलना न की जा सके।''

''किंतु हमने तो सुना है, दानपति अक्रूर, कि आपका प्रजा पर ऐसा

प्रभाव है कि बिना राज्याधिकार के ही प्रजा आपकी आज्ञा पर मरने को तत्पर रहती है!'' अस्ति ने मर्मस्पर्शी दृष्टि डाली।

अक्रूर ने तत्काल सावधान होकर कहा, ''यह तो महारानी का मुझ पर नेह है। वैसे सचमुच प्रजा की मेरे प्रति गहन आत्मीयता रहती है। मेरे पिता के कारण भी प्रजा हमें नेह देती रही है। किंतु अब मैं चाहता हूं कि उस आत्मीयता का उपयोग वास्तव में स्वयं प्रजा के हित में हो सके। यही प्रजा के नेह का उचित प्रतिदान हो सकता है, जो तभी संभव होगा, जब महारानी की कृपा हो!''

और दो दिन बाद ही महारानी की इच्छा के अनुसार, अक्रूर को सेना में एक सामान्य-सा पद दे दिया गया था। उसके साथ ही पता लगा कि स्वयं अक्रूर के पिता श्वफल्क यादव ने महाराज के भय से अपने द्रोही पुत्र अक्रूर का कोई गंभीर तिरस्कार तो नहीं किया, किंतु उसी दिन से अक्रूर को अपने प्रियजनों के साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करने से रोक दिया गया था। बहाने से उनको निवास के लिए एक अन्य भवन दे दिया गया था। उनका कहना यही था कि अब वह राज्याधिकारी हैं और उनको प्रजा की सुविधा के अनुरूप भवन भी मिलना ही चाहिए।

अक्रूर को पता तो नहीं लगा कि कौन उन पर आंखें रखता होगा, किंतु उनकी एक-एक कार्यविधि पर दृष्टि अवश्य रखी जाती होगी! और तो और, उनके परिजनों की ओर से उनके साथ क्या व्यवहार होता रहता है, यह भी महारानी अस्ति को पता तो रहता ही था। सो अक्रूर ने एक सिद्धांत बना लिया कि कोई भी बात महारानी से न छिपाई जाए। उनका अपने परिजनों की ओर से बहिष्कार और फिर अपमान तथा समय-समय पर होने वाली अवमानना के विषय में महारानी को ऐसे भी पता तो लगता ही रहता था!

उस दिन अक्रूर महारानी का दर्शन पाने का अनुरोध करना ही चाहते थे कि स्वयं महारानी की ओर से ही बुलावा आ गया।

अक्रूर की कल्पना उस सीमा तक नहीं पहुंच सकती थी कि महारानी ने उनको किस कार्य से बुलवाया होगा। वास्तव में अक्रूर ने कल रात को तीन ऐसी युवतियों को हाट से बंदिनी बनाकर अपने आवास पर ही रखा था, जिनके विषय में कोई नहीं जानता था। वे तीनों ही यहां राज्य के भेद लेने को आती ही रहती थीं। और अब तक उनकी ओर से यह भी नहीं बताया गया कि वह किस राजा की ओर से नियुक्त थीं। उन धृष्ट युवतियों का हठ था कि वे महारानी के समक्ष ही अपने विषय में निवेदन करेंगी।

महारानी ने आज अक्रूर से बड़ी ही विचित्र भेंट की थी। ऐसा लगा मानो आज महारानी ने अक्रूर और अपने बीच का सारा ही अवरोध दूर कर दिया हो। महारानी ने हँसती आंखों से उनकी ओर देखा और बोलीं, ''हमारी अनुचरियों को ही बंदिनी बनाकर आपने तो सचमुच अपूर्व निष्ठा का परिचय दिया है!''

''महारानी!'' अक्रूर चकित-से उनकी ओर देखते ही रह गए।

महारानी का संकेत पाते ही उनकी परिचारिका तत्काल ही बाहर गई और अपने साथ उन्हीं तीनों बंदिनी युवतियों को लेकर आई। वे तीनों ही अक्रूर की ओर देखकर हँसीं और विनय सहित उनको प्रणाम किया।

अक्रूर स्तब्ध होकर उनकी ओर देखते रह गए।

अपनी श्रृंगारवती देह को मादक हँसी से हिलाती हुई महारानी अस्ति उनकी ओर देखकर बोली, ''आपने प्रमाणित कर दिया कि महाराज के प्रति आपकी निष्ठा का कोई मूल्य नहीं हो सकता। आपको महाराज की ओर से विशेष पद देने की आज्ञा दी जा चुकी है। आप आज जाकर आनंद करें। यदि आपको इन तीनों सुंदरियों में से कोई प्रिय हो तो आपको हमारी ओर से उपहार....''

सतर्क अक्रूर ने अचानक ही महारानी अस्ति के विषय में प्रचलित वासना से सनी विकृत विशेषताओं को मन में उभरती अनुभव किया और विनीत होकर बोले, ''मेरे लिए तो महारानी की अनुकंपा ही सब कुछ है।''

उन्होंने एक बार उन तीनों युवतियों की ओर आंख उठाकर देखा। उनको लगा मानो वे तिरस्कृत-सी होकर मुरझा-सी गईं और उनकी ओर देखती हुई कातर आंखों से उलाहना दे रही हों।

महारानी ने हँसती आंखों से ही अक्रूर को विदा दी।

और उसी दिन से दानपति युवा अक्रूर को महाराज कंस की ओर से महत्त्वपूर्ण मंत्रिपद प्राप्त हो गया था!

अब अक्रूर स्वयं महारानी अस्ति की ओर से निष्ठावान मान लिए गए थे। महारानी अस्ति की ओर से अब उनको विशेष आत्मीयता भी प्राप्त होने लगी थी! जिसमें पहले की-सी आतुरता अथवा वैसा कोई प्रयास नहीं था कि वह किसी प्रकार से अक्रूर की परीक्षा लेना चाहती हों। अब उनको पूरी तरह से महारानी का विश्वास प्राप्त हो गया था। अक्रूर ही महाराज कंस के एकमात्र ऐसे यादव मंत्री थे जो महाराज और महारानी द्वारा राज्य के संबंध में लिए जाने वाले किसी महत्त्वपूर्ण निर्णय के समय भी प्रायः उपस्थित रहते।

महारानी को शंका थी कि संभवतः वसुदेव के विषय में महाराज का निश्चय अक्रूर को विचलित करे, किंतु अक्रूर ने उस समय भी महाराज का ही

साथ दिया। अस्ति के पूछने पर अक्रूर ने स्पष्ट स्वर में कहा था, ''महारानी से मेरा इतना ही निवेदन हो सकता है कि वसुदेव अथवा देवकी के प्रति जो होना था, वह तो हो ही चुका है! और अब जो बीत गया, उसको तो फिर से लाया नहीं जा सकता, किंतु महाराज यदि अब वसुदेव और देवकी को क्षमा करके उनको कारागार से मुक्त कर दें तो कोई अनिष्टकर घटना नहीं होगी। हां, इससे संभवतः प्रजा को किंचित आश्वासन ही मिले।''

उसी दिन कंस ने कठोर स्वर में पूछा था, ''दानपति अक्रूर! आपने महारानी से वसुदेव और देवकी को मुक्त कर देने का अनुरोध किया है। हम विचार करेंगे। किंतु क्या हम इसे आपकी ओर से आग्रह समझें?''

''यदि महाराज इससे किसी प्रकार राज्य का हित मानते हों तो मेरा आग्रह ही कहकर स्वीकार करें। मेरा विचार है कि कुछ ही दिनों में यादवों का प्रसिद्ध 'इंद्रमह' समारोह होने वाला है। उस अवसर पर यदि महाराज की ओर से मुक्त होकर वसुदेव और देवकी भी वहां उपस्थित होंगे तो उसका प्रभाव प्रजा पर उत्तम होगा। महाराज की उदारता का स्वागत ही होगा।''

महारानी अस्ति ने गहराई से विचार करने के बाद महाराज कंस को अक्रूर के इस उचित आग्रह को मान लेने के लिए ही प्रेरित किया।

कंस अब उस अवस्था में पहुंच गया था कि वह अपनी ओर से किसी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ-सा हो चुका था। उसने महारानी के निर्णय को ही महत्त्व दिया और उसी दिन जाकर वसुदेव और देवकी को अपने ही हाथों से मुक्त कर दिया।

साथ ही अतिरिक्त भावावेग में आकर कंस ने उस समय एकाएक विचित्र-सा कांड कर डाला था—उसने सहसा ही देवकी के चरणों पर सिर रखकर कहा, ''अनुजे, तुम अब मां की भांति मुझे क्षमा कर दो! मैं तुम्हारा अपराधी हूं। मैंने तुम्हारे निर्दोष शिशुओं की हत्या करके जघन्य अपराध किया है, किंतु तुम माता हो और तुम्हीं मुझे क्षमा करके मेरी रक्षा कर सकती हो!''

उसी रात को वयोवृद्ध आर्य विकद्रु ने पितामह आर्य अंधक की आज्ञा मानकर यादवों की सभा में अचानक ही कंस के जन्म संबंधी वह विचित्र पौराणिक आख्यान भी सुनाया था। उन्होंने बताया कि यह कथा उनको तो वर्षों पहले तीर्थाटन के समय एक महर्षि ने सुनाई थी। उन महर्षि का तो कहना यह था कि वास्तव में यह कंस पुराणों में वर्णित कालनेमि दानव का अवतार है, जिसे स्वयं भगवान विष्णु ने युद्ध में मारा था। इस जन्म में कंस का रूप धारण करके वह फिर पृथ्वी पर अनाचार कर रहा है और इसका वध करने के लिए एक

दिन स्वयं विष्णु ही अवतार लेंगे। महर्षि ने कहा था कि यादवों को किसी प्रकार निराश नहीं होना चाहिए। यह सब दैव की इच्छा से ही हो रहा है।

"उन सर्वशक्तिमान पर विश्वास करके हमें अपने धर्म का पालन करना चाहिए। एक दिन तो इस अनाचार का अंत कर देने वाला आएगा ही...."

फिर आर्य विकद्रु ने अत्यंत गूढ़ स्वर में कहा था, "और वह आ चुका है! किंतु जब तक कंस की आयु पूरी नहीं होती, तब तक तो वह कहीं और ही रहकर कंस के अपराधों की गणना करता रहेगा!"

नौ

अक्रूर अपने पिता और माता के समान ही शील और गुणों से संपन्न थे। साथ ही वह बड़े ही नीतिज्ञ तथा बुद्धिमान भी थे। जब स्वयं अपने पिता उग्रसेन को भी पद से हटाकर कंस यादवसंघ पर एक प्रकार से राजतंत्र की भांति शासन करने लगा तो अक्रूर ने समझ लिया कि इस समय कंस का विरोध करना असंभव-सा है। यादवों को अपने कुल का विनाश नहीं करवाना चाहिए। उन्होंने ही वसुदेव को भी परामर्श दिया कि किसी प्रकार कंस को प्रसन्न रखकर इस समय तो उसके दंभ को ही संतुष्ट करने में सबका हित है। उसका श्वसुर मगधपति जरासंध घोर महत्त्वाकांक्षी है और वह समग्र भरतखंड का एकछत्र सम्राट् बनना चाहता है। उसने अपनी शक्ति का पर्याप्त विस्तार भी कर लिया है। और यादवों में अभी तो इतनी शक्ति है नहीं कि अपने घर में ही जरासंध के अनुचरों की भीड़ तथा कंस के साथ ही अस्ति और प्राप्ति के होते हुए जरासंध से छिपाकर कोई उपाय कर सकें! इसके लिए तो यादवों को सावधानी से ऐसा यत्न करना होगा कि कंस को इसका आभास तक नहीं मिले, और उसको राजपद से च्युत करने का लक्ष्य पूरा करने की सार्थक युक्ति रची जा सके।

किंतु यह कैसे संभव है?

"इसको संभव करना ही होगा, नहीं तो पृथ्वी से कुछ दिनों के बाद हम यादवों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। जरासंध तो यही चाहता है। वह अपनी शक्ति से प्रतिहत करके यादवों को मागध युवकों और युवतियों के संपर्क से संकर करके उनके कुल का अभिमान ही समाप्त करने का प्रयास कर रहा है! जरासंध ने यदुवंशी कंस को जामाता बनाकर यह दिखावा मात्र किया है कि वह हमको अपने से उच्च मानता है। किंतु कल उसके मागध सेनापति और नायक यहीं मथुरा में यादवियों को व्यभिचार करने के लिए

विवश करेंगे। कितनी ही युवतियों को तो उन्होंने हीन कीकटों के भोग-विलास की सामग्री बन जाने को विवश कर ही दिया है। यह कोई छोटी बात नहीं, येन-केन-प्रकारेण यादवकुल को ही नष्ट कर देने की युक्ति है। कल को वे कीकट अनाचारी यहां की यादव कन्याओं से विवाह भी करने लगेंगे। हमारी कुलकन्याएं उनके हीन स्पर्शों से दूषित-पतित होंगी! हमको अपने कुल की पवित्रता की रक्षा करने का उपाय तो करना ही होगा! किंतु यह तभी संभव है, जब कंस को हम अपनी ओर मिलाकर उसे वश में रखें।''

वृद्ध सुमंतवान ने कहा, ''यह कैसे हो सकता है? कंस को तो न जाने किसने ऐसा कूटमंत्र दिया है कि वह अपने पिता को बंदी बनाकर भी अपने को राजा बनाए रखने को कृतसंकल्प है। जरासंध के संकेत पर वह समस्त यादवों का विनाश करने पर तो तुला ही हुआ है। ऐसे में कंस को अपनी ओर मिलाए रखने की कल्पना तो बस, कल्पना ही हो सकती है।''

किंतु वितुंड यादव ने कहा, ''मेरे विचार से आयुष्मान् अक्रूर की नीति ही उचित है। कंस को अपने पक्ष में रखने का एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि जब तक उचित अवसर न आ जाए, तब तक हम उसकी हां में हां मिलाते रहें। हां, हमको इस बीच युक्तिपूर्वक अपनी शक्ति का विस्तार भी अवश्य करते रहना चाहिए।''

पितामह अंधक वय की दृष्टि से यादवों में सबसे ज्येष्ठ थे। उन्होंने कहा, ''इस समय कंस ने पृथ्वी के समस्त योद्धाओं में से अपराजेय योद्धा जरासंध को अपना रक्षक बना लिया है। यह तो निश्चित ही है कि हम इस स्थिति में कंस को परास्त नहीं कर सकते। नीति से ही काम लेना होगा। नीति तो अब वास्तव में अब यही होनी चाहिए कि जैसे भी हो, कंस के मन में हमारे प्रति विश्वास जाग उठे और निरंतर बना रहे। तब तात्कालिक लक्ष्य तो यह होगा कि हम अपनी संख्या के बल पर सदा कंस को मागधों की नीति से दूर ही रखें। यद्यपि यह बहुत कठिन होगा। कारण यह है कि कंस के कानों तक और कंस के मन तक मागधों की ऐसी पहुंच है कि हम उसका सामना नहीं कर पाएंगे। जरासंध की दोनों पुत्रियां कंस के मन पर छाई रहती हैं। ऐसे में वह वही देखेगा जो दोनों रानियां उसको देखने के लिए कहेंगी। और वही करेगा जो उसकी पत्नियां चाहेंगी। तो भी कंस के मार्ग में बाधा तो डाली ही जा सकती है। उसकी दोनों पत्नियां ऐसे तो अब यादवकुल की वधुएं हैं, अतः उन पर हम ऐसा कोई आक्षेप भी नहीं लगा सकते जो कुल को लांछित करने वाला हो। फिर भी हमको ऐसी चेष्टा करनी ही होगी जिससे कंस उन मायावी युवतियों के छल के जाल से मुक्त हो जाए।''

वृष्णिकुल के प्रमुख वसुदेव ने बड़ी देर तक सबकी बातें सुनने के बाद कहा, ''हमारी विवशता तो यह है कि हम यादवों पर, विशेषकर शूरसेन के वृष्णिकुल पर इतना अनाचार हो रहा है! हम हस्तिनापुर के कुरुकुल के घनिष्ठ संबंधी हैं, तो भी उनकी ओर से हमारी सहायता का कोई संकेत नहीं मिलता। कितने आश्चर्य की बात है कि देवी रोहिणी के पिता आर्य वाह्लीक स्वयं कुरुवंशियों के माननीय कुलपुरुष हैं, और रोहिणी के चचेरे भाई अमित पराक्रमी कहाधनुर्धर भीष्म तो कुरुकुल के संरक्षक ही हैं। एक प्रकार से कुरुओं की विशाल सेना के महासेनापति स्वयं भीष्म ही हैं। रोहिणी के प्रति उनका स्नेहभाव भी है, किंतु मथुरा में यादवों की गण-परंपरा भंग हो गई; इतना बड़ा परिवर्तन हो गया, फिर भी उन लोगों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। ऐसा किस कारण है? यदि इतने निकट-संबंधी होने पर भी कुरुवंशी तक हमारे साथ नहीं आए तो फिर हम शक्ति-विस्तार अथवा बल-संग्रह की कल्पना किस आधार पर करें?''

वसुदेव के साथ जो भीषण अत्याचार हो रहा था, उसके विषय में यादवों का एक-एक बालक तक जानता था। सभी क्षुब्ध थे कि कंस उनके साथ घोर अन्याय कर रहा है। संभवतः इसका सबसे बड़ा कारण यही हो कि कंस स्वयं वृष्णिवंशी यादवों से भयभीत रहता है। अथवा उसको यही समझाया गया हो कि वृष्णियों की शक्ति तोड़ दी जाए तो यादवों में कोई भी उसका प्रबल विरोध करने वाला नहीं रह जाएगा। वृष्णियों की दशा देखकर अन्य कुलों के यादव भी चुपचाप उसकी अधीनता में बने रहेंगे।

आर्य विकद्रु की यह बात यादवों को गहरी लगी। यह तो सच है कि पहले तो कंस ने वृष्णियों को अपने पक्ष में करने के लिए वसुदेव से अपने पितृव्य राजा देवक की कन्या देवकी का विवाह करने का उपाय किया। किंतु इसी बीच न जाने क्या हो गया कि कंस अचानक वसुदेव की संतानों को ही समाप्त करने पर तुल गया—विशेष रूप से देवकी के गर्भ से उत्पन्न सभी संतानों की। अर्थात् उसको देवकी की संतान से ही वैर है! पिछले दिनों कुरुकुल की कन्या रोहिणी जब नंद के साथ मथुरा आई थी तो कंस ने उनको वसुदेव से मिलने की अनुमति सहज ही दे दी थी। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह कुरुओं के भय से रोहिणी को कोई यातना देने से हिचकता हो! स्वयं जरासंध अब तक उत्तरापथ की ओर उतनी तीव्रता से नहीं बढ़ा। इसके पीछे भी संभवतः यही रहस्य है कि वह अभी पराक्रमी कुरुओं से रार नहीं लेना चाहता।

इस विषय में यादवों की परस्पर मंत्रणा प्रायः होती ही रहती है। लोकचर्चा के स्तर पर कही-सुनी जाने वाली बातों को भी यादवों के चर अपने

कुल के श्रेष्ठ पुरुषों तक पहुंचाते रहते थे।

उनसे बहुत-सी ऐसी बातें भी ज्ञात होती रहती थीं जिनसे जन-सामान्य की रुचि तथा उनकी प्रवृत्तियों का पता लगता रहता था। इस विषय में अक्रूर ने कई महत्त्वपूर्ण बातें सुनी थीं। उनका कहना था कि संभवतः कुरु योद्धा भीष्म ने यादवों में व्याप्त विसंगति के विषय में सुनकर विचार प्रकट किया था, 'जब तक जरासंध प्रत्यक्ष रूप से उन पर आक्रमण नहीं करता, तब तक हमको स्वयं यादवों के पारस्परिक व्यवहार में हस्तक्षेप करना उचित नहीं। कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे ऐसा लगे कि हम किसी प्रकार उनके आपसी विग्रह का लाभ उठाना चाहते हैं। अब तक हमसे यादवों ने भी कोई सहायता मांगी तो नहीं; न उनकी ओर से ऐसी कोई सूचना ही मिली कि उनकी गण-शासन-व्यवस्था को बरबस बदलने की चेष्टा की जा रही है। हमको तो ऐसा लगता है कि यादवों का यह विचलन उनके कुलों का पारस्परिक विरोधकांड मात्र है। वे स्वयं अपने ढंग से ही अपना विरोध दूर करके फिर पहले की तरह शासन करेंगे। हां, यदि किसी की ओर से सहायता के लिए कोई आग्रह आया तो हम विचार करने के बाद जो उचित होगा, करेंगे....'

यह चर्चा हस्तिनापुर से आए कई यात्रियों के माध्यम से यहां तक पहुंची थी। उसका कोई निश्चित आधार नहीं था। किंतु जो कुछ हो रहा है, उसको देखते हुए तो यही प्रतीत होता है कि यह एकदम निराधार नहीं है।

फिर प्रश्न तो वही रहा—हमको करना क्या चाहिए?

बड़ी देर बाद अंधक ने कहा, ''मुझे तो लगता है कि तत्काल कोई समाधान नहीं प्राप्त हो सकता, फिर भी उसको खोजने का उपाय तो निरंतर करना ही होगा। उपाय यही है कि हम कंस के मन को तथा उसके मंत्रियों के मन को टटोलकर यह जानने का प्रयास करें कि अब वह करना क्या चाहते हैं। अनुमान को पहले सत्य की कसौटी पर परखना होगा, तभी कोई ऐसा समाधान मिलेगा, जो सार्थक हो।''

कैसे?

फिर भी प्रश्न बना ही रहा।

बड़ी देर बाद आर्य विकद्रु ने वरिष्ठ योद्धा पितामह अंधक की ओर देखकर कहा, ''यदि आर्य उचित समझें तो मेरा परामर्श मानें। मेरा विचार है कि कंस का मन छूने के लिए पहले हमें यह सिद्ध करना होगा कि हम उसके सबसे बड़े हितैषी हैं। यह कार्य बलिदान से ही संभव है। हममें से कुछ व्यक्तियों को स्वयं अपने कुल और जाति के समक्ष अपने को 'लोभी', 'कुटिल' और 'कुल का द्रोही' प्रमाणित करना होगा। और इस समय संयोग से

श्वफल्कनंदन अक्रूर कंस के बहुत निकट हैं। हमने तो सुना है कि मगधपति की दुहिता महारानी अस्ति भी उनका बड़ा आदर करती है!'' विकद्रु ने अक्रूर की ओर देखा।

अक्रूर ने हँसकर कहा, ''आदर तो वह करती है, आर्य! मैं तो सौभाग्य तब मनाता जब वह मेरा भी अनादर ही करती, किंतु....''

विकद्रु ने कहा, ''नहीं। यह तुम्हारे सौभाग्य-दुर्भाग्य का प्रश्न नहीं है, आयुष्मान्, हम समस्त यादवों के मान-सम्मान का प्रश्न है! समूचे यादवगण की आन का प्रश्न है। तुमको वास्तव में महारानी अस्ति का आदर मिलता हो तो तुम उसकी अधिक से अधिक निकटता पाने का प्रयास करो....उसका प्रगाढ़ मोह भी पाने की चेष्टा करो....''

अक्रूर इस बात से तमतमाकर उनकी ओर ताकने लगे।

आर्य विकद्रु ने मुसकराकर कहा, ''वत्स! मेरा आशय केवल इतना है कि अब तुम महारानी से उपलब्ध आदर को ही संबल बनाकर महारानी अस्ति का मन जीतने का प्रयास करो। उसके विश्वास को जीतो और संभव हो तो उसके इतने निकटतम आत्मीय बन जाओ कि वह जो मन में सोचे, उसका तुमको आभास मिलता रहे। अस्ति का अर्थ है, महाराज कंस का मन! जो कुछ भी अब मथुरा में होता है, वह अस्ति के संकेत पर ही होता है। और कल जो होगा, वह भी अस्ति की इच्छा से ही होगा! अतः समाधान के निकट पहुंचने का इस समय सबसे सरल मार्ग यही है।''

''साधु! साधु!'' विकद्रु का आशय समझकर सहसा ही पितामह अंधक ने उनकी सराहना करते हुए कहा, ''इस समय सचमुच यही उत्तम मार्ग है!''

कुछ ही समय के पश्चात यादवों में एक समाचार फैला कि अक्रूर ने वृष्णि कुल से किसी कारण घोर मनमुटाव कर लिया है। यहां तक कि उन्होंने सुप्रतिष्ठित यादव-प्रमुख शिनि के वंशजों के यहां पुत्रजन्म के अवसर पर होने वाले भोज तक ठुकरा दिया और उनके यहां नहीं गए।

यह समाचार यादवों के लिए अत्यंत उत्तेजक सिद्ध हुआ। कितने ही लोग अक्रूर के इस व्यवहार की कठोर आलोचना करने लगे। और तो और, इस बात पर स्वयं अक्रूर के भाइयों ने भी उनकी निंदा की और उनसे स्पष्ट विरोध व्यक्त करते हुए वे सभी शिनिवंशी यादव समुदाय के प्रीतिभोज में भी सम्मिलित हुए। कहा जाता है कि उन सबने एकमत होकर अक्रूर का कुल से बहिष्कार भी कर दिया!

यह समाचार राजपरिषद् तक में गंभीर चर्चा का विषय रहा। कंस के

मागध मंत्री यादवों के दो समर्थ कुलों में हुए इस विस्फोट से बड़े प्रसन्न थे, किंतु ऊपर से वे गंभीर ही बने रहे।

इस कांड के केवल एक मास पश्चात् ही एक दिन अक्रूर के भवन पर विशाल समारोह हुआ। महाराज कंस ने अक्रूर को परम विश्वासपात्र मानकर उनको अपना मंत्री नियुक्त कर ही दिया था!

यादव सामान्यत: मिलकर ही रहते थे, किंतु अक्रूर के कारण अब यादवों के बीच फूट-सी पड़ने लगी थी। यादव वृद्धों को तो इस पर बड़ी ही पीड़ा होती थी कि अक्रूर ने अपने कुलपुरुषों की परंपरा का ध्यान नहीं रखा और उनसे विरोध-भाव अपनाकर राजा कंस के अनुगत मंत्री बन गए। फिर अक्रूर ने अपने यहां हर्ष के समारोह में कुल के मान्य पुरुषों में से किसी को आमंत्रित नहीं किया! इसे तो वैर की नींव डालना ही कहा जाएगा! कौन सोच सकता था कि दानपति अक्रूर जैसे बुद्धिमान तथा योग्य, सुप्रतिष्ठित यादव युवा ही यादवों की महान् परंपरा नष्ट करने में सबसे आगे रहेंगे!

समय तेजी से बीतने लगा।

अक्रूर महाराज कंस के ही नहीं, महारानी अस्ति के भी निकटतम मंत्रियों में से थे!

एक दिन महारानी अस्ति ने उनको एकांत कक्ष में बुलवाकर उनसे एक विशेष समस्या पर परामर्श किया। उनको शंका थी—'गोकुल में नंद के यहां रहने वाले तथा इतनी-सी वय में जाने कितने चमत्कारों के लिए विख्यात होने वाले वे दोनों बालक गोपपुत्र क्या सचमुच वसुदेव के ही पुत्र हैं?'

अक्रूर ने कहा, ''देवी, आपसे आज अपना निश्चित मत बताता हूं। मैंने वास्तव में उन सबसे और स्वयं अपने कुल से इसी कारण रार ली है कि वे मुझे अपना नहीं मानते। यह सारा भेदभाव तो उनकी ही ओर से बोया गया है। और अब देखिए कि आपकी कृपा से मुझे महाराज ने अपना मंत्री बनाने योग्य मान लिया तो उन लोगों को कितनी पीड़ा हो रही है! मुझे तो वे लोग 'कुलांगार' कहते हैं। मेरे पिता अत्यंत उदार थे और अपनी सरलता के कारण उनको कभी किसी बात पर टोकते तक नहीं थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनको तो यों ही बहलाए रखा जाता था। फिर हम सभी को उसी प्रकार बहलाए रखने का प्रयास किया जाने लगा। देवी, इन लोगों की कुटिलता से तो आप स्वयं परिचित हैं! मुझसे यही सहन नहीं हो रहा था कि महाराज तो तुमको अपना मानकर हर प्रकार से तुम्हारा हित करते हैं और तुम बिना किसी कारण के उनके विरुद्ध रहते हो! मेरी इस बात पर जो चर्चा होती रहती थी, उसी का

परिणाम है कि मेरा अपमान किया जाने लगा था। किंतु मैं तो निष्ठा और परस्पर विश्वास को ही महत्त्व देता हूं। महाराज ने मेरा कितनी ही बार हित किया है तो मैं उनका विरोध कैसे करता?''

फिर अक्रूर ने रहस्यमय स्वर में कहा, ''मेरे कुल के वयोवृद्ध लोग भले ही मुझसे अप्रसन्न हों, महारानी! किंतु वृष्णिकुल के अधिकांश युवा मेरे साथ हैं!''

महारानी अस्ति को मानो रहस्य का छोर ही मिल गया। अपना मूल प्रश्न तो उन्हें जैसे भूल ही गया। वह उत्कंठित होकर बोलीं, ''विरोध करते हैं न शेष यादव? मैं तो कितनी ही बार महाराज को इस विषय में सावधान कर चुकी हूं। किंतु वह मानते ही नहीं। उनको तो बस, एक ही धुन लग गई है कि गोकुल में नंद के यहां पलने वाला वह गोप बालक वास्तव में वसुदेव का पुत्र ही है।''

''क्षमा करें, देवी! मैं तो इस विषय में निश्चित रूप से अब तक नहीं जानता। आपकी आज्ञा होगी तो अब मेरे लिए इस रहस्य को भेदना भी कोई कठिन नहीं होगा। फिर भी मेरा एक निवेदन है। पहले तो ऐसा होना संभव नहीं, किंतु एक पल को मान ही लें कि....जैसा कि देवी को सूचना दी गई है....वे दोनों गोप बालक यदि वसुदेव के पुत्र ही हों तो भी उनमें इतनी शक्ति कहां है कि वे किसी प्रकार महाराज जैसे प्रतापी नरपति का कोई अनिष्ट कर सकें। तब भी महाराज उन गोपों की इतनी चिंता करते हैं....मुझे तो विश्वास ही नहीं आता कि देवी भी उनके कारण चिंतित हैं। महापराक्रमी मगधपति जरासंध के रहते उन क्षुद्र गोपों से काहे का भय?''

अस्ति का कमनीय मुखमंडल सहसा तमतमा उठा। वह कुछ वितृष्णा के साथ बोली, ''मुझे तो विश्व की किसी भी शक्ति से भय नहीं। और न महाराज को ही उन गोपों का भय सताता है! किंतु प्रश्न तो यह है कि जो बात हमारे चरों ने बताई है, यदि वह सत्य है....अर्थात् हमारी आंखों में धूल झोंककर वसुदेव के पुत्र को सचमुच गोकुल पहुंचा दिया गया तो धिक्कार है हमारी राज-व्यवस्था को। महाराज के रोष का कारण मात्र अपने चरों तथा अपने सैनिकों की असावधानी ही है! यदि हमारे मागध चरों की आंखों को भी छलकर यहां से कोई शिशु नगर के बाहर, यमुना के उस पार, गोपों की बस्ती में पहुंचाया जा सकता है तो कल को और कुछ ऐसा भी हो सकता है, जो, महाराज के लिए....''

अस्ति बोलती-बोलती अटक-सी गई।

किंतु अक्रूर ने मन में उसका वाक्य पूरा कर लिया, '....जो महाराज के लिए घातक हो!' और हँसकर कहा, ''देवी, यह तो असंभव ही है। फिर उस

समय तो वसुदेव कारागार में ही थे! जब देवकी का आठवीं बार प्रसव हो रहा था तो कारागृह को हमारे निष्ठावान सैनिकों ने चारों ओर से घेर रखा था। ऐसे में यह कैसे संभव हो सकता है कि कारागृह में जन्म लेने वाले शिशु को रातोरात यमुना पार करके गोकुल पहुंचा दिया जाए? मुझे तो यह प्रचार भी किसी की कुटिल चाल ही लगती है। महाराज को अब इस विषय में अधिक चिंता नहीं करनी होगी। मैं स्वयं इसका शोध करवाऊंगा।''

महारानी ने मधुर हँसी के साथ अपने परम विश्वस्त मंत्री को विदा किया।

नौ

कंस अपने द्वारा किए गए कुछ कृत्यों के कारण मन में उठती व्यथा को स्वयं ही बहुत दिनों तक सहन नहीं कर पाया था।

उसने अक्रूर के आग्रह पर स्वयं जाकर देवकी से कारागृह में ही क्षमा मांगी थी और उसी दिन वसुदेव तथा देवकी को कारा से मुक्त करके उनको अपने राजप्रासाद से कुछ ही दूरी पर एक सुंदर भवन देकर सुख से जीवन बिताने के लिए सारी व्यवस्था भी करवा दी थी। देवकी ने अपने छ:-छ: नवजात पुत्रों के जीवन का नृशंसता-पूर्वक अंत करने के अपराध के लिए भी कंस को क्षमा कर दिया था! कंस को क्षमा कर देने के अतिरिक्त उस समय उनके वश में था ही क्या? कंस को इस प्रकार संतुष्ट कर देने से कम से कम इतना तो हो रहा था कि वर्षों बाद उन्हें और उनके पति को कारावास की कालकोठरी से बाहर का संसार देखने को तो मिला!

कंस के कारावास से मुक्त होने पर वसुदेव से मिलकर उनसे सहानुभूति जताने के लिए वृष्णिकुल तथा अन्य कुलों के लोग भी उनके नए आवास पर आने लगे थे। यद्यपि स्वयं देवकी और उसके पिता राजा देवक को निरंतर शंका बनी रहती कि इस प्रकार वसुदेव का आदर-मान बढ़ता देखकर सहजद्वेषी कंस कहीं फिर से सशंक न हो उठे। उसके मन में तो वास्तव में मूलत: वृष्णियों की ओर से ही भय बसा था। उसको जिसने भी उकसाया हो, निश्चित ही उसने कंस को विशेषकर वृष्णिकुल से ही सशंक रहने को कहा गया था।

कुछ ही दिन पूर्व वृंदावन से गोपों के प्रमुख नंद राजकर पहुंचाने के निमित्त मथुरा आने वाले थे। उनकी ओर से भी वसुदेव से मिलने का आग्रह आया। किंतु वसुदेव के हितैषियों ने नंद को स्वयं वसुदेव के आवास पर आने का परामर्श नहीं दिया। कंस के चर और विशेषकर महारानी अस्ति के चरों के

नेत्रों से कुछ छिपा नहीं रहता था। सब जानते थे कि कंस की ओर से नियुक्त गुप्तचर निरंतर वसुदेव के आवास पर दृष्टि रखते हैं। और उनके निकट होने के कारण राजा देवक तक के आवास की कितनी ही दासियां वास्तव में अस्ति की चरी ही हैं। वे तो इतनी चतुर थीं कि अपनी ओर से कितने ही नए-नए प्रसंग उठाकर अंत:पुर की युवतियों के मन में कौतूहल जगातीं और फिर उसी का बहाना लेकर कितनी ही उलटी-सीधी बातें कर-करके उनसे भेद उगलवा लेती थीं। इस संकट से बचे रहने का एकमात्र समाधान यही था कि किसी प्रकार का भेद ही न रहे! किंतु ऐसा तो संभव नहीं था, अत: इसका यही उपाय किया जाता था कि अधिक से अधिक चेष्टा करके ऐसे रहस्यों के स्रोतों को आवास में आने से ही बचाया जाए। नंद यदि वसुदेव से मिलने के लिए उनके आवास में आएंगे तो निश्चय ही अनेक प्रकार की आशंकाएं जन्म लेंगी। अस्ति की दूतियां तो बड़ी ही चतुर थीं। वे एक की चार बनाकर सूचना अस्ति तक पहुंचातीं। फिर कंस को नंद पर भी संदेह अवश्य हो जाता। तब तो वृष्णिकुल का सारा उद्योग ही नष्ट हो जाता!

यह सूचना पाते ही कि नंद भी वसुदेव से मिलना चाहते हैं, यादवों के बीच हलचल-सी मच गई।

सबसे पहले श्वफल्कपुत्र अक्रूर की ओर से एक दूत मथुरा के बाहर ही यमुना के तट पर स्थापित गोपों के उस शिविर पर पहुंचा, जहां नंद गोप के परिवार और उनके साथ आए गोपों ने डेरा डाल रखा था। मंत्री अक्रूर की ओर से कठोर आदेश आया था— महाराज की ओर से आज्ञा दी गई है कि आज ही सबसे पहले नंद आदि गोप विशेष रूप से मंत्री अक्रूर से मिलकर अपने गोष्ठ के विषय में तथा गोधन आदि के विषय में विस्तार से सूचनाएं अंकित करवा दें। क्योंकि इन दिनों वृंदावन के गोष्ठों के संबंध में राजपुरुषों की ओर से निरंतर सूचित किया जाता रहा है कि वहां गोधन के पोषण तथा उनकी वृद्धि पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया जाता।

दूत की ओर अवाक् होकर देखते रह गए नंद। उनको जीवन में आज पहली बार ऐसा आदेश दिया गया था! यह अपमानजनक व्यवहार भी श्वफल्कनंदन अक्रूर की ओर से आया था, जो सामान्यत: अपनी शिष्टता तथा शालीनता के लिए विख्यात थे! अपमानित अनुभव करने पर भी गंभीर स्वभाव वाले नंद ने कोई आवेश नहीं प्रकट किया। सहज स्वर में बोले, ''आयुष्मान् अक्रूर को मेरा आशीर्वाद देकर निवेदन करना कि यदि इस विषय में महाराज को शंका है तो मेरी ओर से केवल इतना ही निवेदन है कि वे जिसको भी उचित समझें, वृंदावन के गोष्ठों का भार उसको ही सौंप दें। हम कहीं और जाकर कृषि

अथवा किसी अन्य व्यवसाय से जीवन-यापन कर लेंगे।''

नंद और भी न जाने क्या कहते कि उनको लगा, दूत ने कुछ संकेत-सा किया और एक भूर्जपत्र उनको थमाता हुआ कुछ तीव्र स्वर में बोला, ''जो भी हो, आप स्वयं आकर मंत्रिवर अक्रूर के समक्ष अपना विचार प्रस्तुत कर सकते हैं।!''

नंद को इतना अपमान कभी नहीं सहन करना पड़ा होगा। वह कुछ देर तक तो वहीं खड़े रहे, फिर अचानक ही अपनी पत्नी यशोदा के निकट चले आए। वह बैठकर मन ही मन सोच ही रहे थे कि यशोदा अपनी उज्ज्वल हँसी से पति को सुवासित करती हुई बोलीं, ''आप तो आज हम सबको लेकर आर्य वसुदेव के आवास पर चलने को कह रहे थे, आर्यपुत्र।''

''सुयोग नहीं लगता, देवी।'' नंद ने बिना आवेश जताए कहा, ''इस बार हमने, लगता है कि, शुभ मुहूर्त में राजधानी की यात्रा नहीं की है। लगता है हमको अपमानित करने के लिए ही महाराज ने इस बार हमें यहां बुलवाया है। आज तो आश्चर्य की बात है कि हमको स्वयं अक्रूर ने अपने आवास पर ही पहुंचकर गोधन-संबंधी शंकाओं का समाधान करने का आदेश दिया है!''

गोकुल की अधिष्ठात्री देवी की-सी सुंदरी यशोदा अपने नन्हे से पुत्र को नवनीत खिला रही थीं। पति से ऐसी बात सुनकर उनका सुंदर मुखमंडल मेघाच्छन्न चंद्रमा के समान किंचित मलिन हो गया। फिर वह हिचकती-सी रहस्यमय स्वर में बोलीं, ''किंतु, देवी रोहिणी का क्या होगा, आर्य? वह तो कितने ही दिनों से अपने पुत्र के साथ आर्य वसुदेव से मिलने को आतुर रही हैं। उनको पति से मिले कम से कम पांच वर्ष होने को आए। महाराज की आज्ञा से जब से आर्य वसुदेव कारागृह से मुक्त कर दिए गए, तब से तो वह नित-नित दिन गिनती रही हैं। यदि हमको ऐसे ही, आर्य वसुदेव का दर्शन किए बिना ही लौट जाना पड़ा तो देवी रोहिणी पर क्या बीतेगी?''

नंद पल-भर पत्नी की गोद में उछलते-कूदते होंठों पर नवनीत लपेटे सुघर-सांवले बेटे की ओर देखते रहे, फिर हँसकर बोले, ''तुम इसको जरा आंचल से ढककर ही रखा करो, प्रिये। हमारे इन दोनों बालकों को तो यहां के लोग ऐसे एकटक देखा करते हैं मानो जीवन में कोई शिशु देखा ही न हो।''

यशोदा ने अपने चपल पुत्र की ओर भर-आंख निहारा, फिर उसको जल्दी से छाती से भींचकर आंचल से ढकते हुए कहा, ''कहां से देखते भला? हमारे सलोने बेटे जैसा सुंदर कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। देखते कहां से?''

हँसते-हँसते पति को सहसा ही उदासी आक्रांत कर गई, तो यशोदा ने चकित होकर पूछा, ''क्या. हो गया, आर्यपुत्र?''

''कुछ नहीं, देवी।'' नंद ने उसांस भरकर कहा, ''मुझे अपने इस पुत्र को देखकर कभी-कभी आर्य वसुदेव और उनकी पत्नी राजपुत्री देवकी की याद आ जाती है तो मन भारी हो जाता है। राजा देवक की पुत्री होते हुए भी आर्या देवकी को कितना अत्याचार सहना पड़ा! जरा सोचो, प्रिये, जब देवकी को अपने छह-छह पुत्रों के जन्म लेते ही नष्ट किए गए पुत्रों की याद आती होगी....फिर आठवीं संतान उस अबोध पुत्री की....तो उन पर क्या बीतती होगी! यदि उन पर ऐसा संकट न होता तो कम से कम रोहिणी देवी से जन्मे पुत्र को ही देखकर वे दोनों कुछ तो सुखी हो पाते। किंतु....संयोग कितना दुर्धर्ष होता है कि हम देवी रोहिणी को किसी प्रकार छिपाकर अपने साथ ले भी आए तो लगता है कि आर्य वसुदेव का दर्शन हम स्वयं भी नहीं करने पाएंगे।''

यशोदा कनखी से, कुछ ही दूर पर, स्वर्णिम कांति से युक्त बलवान शिशु को खेलते देखकर मन ही मन प्रसन्न होती कुरुनंदिनी रोहिणी की ओर देखती हुई बोलीं, ''आर्यपुत्र, कुछ तो करना ही होगा। आप, न हो तो भद्र अक्रूर से ही अनुरोध करके देवी रोहिणी और आर्य वसुदेव को चाहे कुछ ही पलों के लिए मिलाने का उपाय कीजिए....कुछ पल ही सही....''

नंद ने लंबी सांस लेकर कहा, ''वही तो सोच रहा हूं, प्रिये, किंतु लगता है, प्रारब्ध ही हमारे विपरीत चल रहा है। आयुष्मान् अक्रूर से तो हमें बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, किंतु आज उनका ही संवाद ऐसा विचित्र लग रहा था मानो उनका हमारे साथ कोई संबंध ही न हो! तो भी मैं अपनी ओर से प्रयास तो करूंगा ही। पहले तो महाराज कंस की आज्ञा के अनुसार हमें मंत्रिप्रवर अक्रूर से मिलना ही होगा!''

नंद ने अपने साथ आए गोपों को लेकर सबसे पहले अक्रूर से ही मिलने का निश्चय किया। उनको आया देखते ही अक्रूर ने अपने सहायक अधिकृत से कहा कि आर्य नंद को ले जाकर मेरे कक्ष में बैठा दो और तुम स्वयं उनके साथ आए सभी गोपों से गोष्ठों से संबंधित समस्त प्रश्नों का विस्तृत उत्तर प्राप्त करके उनका पूरा विवरण मुझे दो।

कक्ष में पहुंचकर नंद क्षोभ के साथ बैठ गए। उनको लग रहा था कि अक्रूर अब पूरी तरह भोजराज कंस के अधीन हो गए हैं और इस समय अवसर पाकर अपना वैभव तथा ऐश्वर्य दिखाने के लोभ से ही मुझको यहां अपने सुसज्जित प्रासाद पर बुलवाकर तिरस्कृत कर रहे हैं।

किंतु कुछ ही देर बाद सहसा अक्रूर के भवन का भीतरी द्वार खुला और एक सुंदर-सी परिचारिका प्रकट हुई। उसने निकट आकर सादर प्रणाम करके

कहा, ''आर्य, कृपा करके भीतर मंत्रणाकक्ष में पधारकर अपना विवरण स्वयं मंत्रिवर के समक्ष प्रस्तुत करें।''

गुरु-गंभीर स्वभाव वाले नंद ने उस समय भी अपने को तिरस्कृत तो अनुभव किया, किंतु परिचारिका के वेश में आई स्त्री के मुखमंडल पर जो मृदु हास था, वह मानो उनकी हृदय की ज्वाला को शांत करके उनको एक विचित्र-सी रहस्यमय अनुभूति करा रहा हो। वह उठकर परिचारिका के पीछे-पीछे अक्रूर के भवन के विशाल मंत्रणाकक्ष में पहुंचे। प्रवेश करते ही वह चमत्कृत रह गए। सामने ही वसुदेव खड़े थे। उनको देखते ही वसुदेव ने दोनों विशाल भुजाएं फैलाए बढ़कर सहसा नंद को हृदय से लगा लिया। मुसकराकर बोले, ''आपको तो बड़ा आश्चर्य हो रहा होगा कि आयुष्मान् अक्रूर द्वारा आपके साथ ऐसा व्यवहार किया जा रहा है!''

नंद को मानो एक पल में ही सब कुछ समझ में आ गया।

दूसरे ही पल स्वयं अक्रूर ने आकर नंद का आलिंगन करके उनका अभिवादन किया। बोले, ''क्षमा करें, आर्य! राजा का अनुचर होने के कारण हमें नित्य कितने ही अप्रिय कर्म करने होते हैं। आज जितना कठिन कर्म करना पड़ा, उसके लिए क्षमा चाहता हूं। मैं वास्तव में आपको आर्य वसुदेव से इसी प्रकार छल करके मिलवाना चाहता था। महाराज कंस को इसकी गंध तक नहीं लगे, इस कारण आपको गोष्ठों का विवरण स्वयं यहां तक आकर देने के लिए बाध्य करना पड़ा। मैं यदि आपको ससम्मान आमंत्रित करता तो महारानी की जो चरी हमारे कक्ष में भी उपस्थित रहती है, उसका भय था। वह तत्काल ही जाकर इसकी सूचना हमारी मागधी पट्टमहिषी अस्ति को देती और महाराज कंस की ओर से तत्काल ही खोजबीन आरंभ हो जाती। अब आप तो यहां अग्रज वसुदेव से विचार-विमर्श करें, और मैं जाकर अन्य गोपों से विवरण लेने का नाटक करता हूं।''

वसुदेव ने नेत्रों से ही उनकी सराहना की।

जाते-जाते ठिठककर अक्रूर ने नंद से कहा, ''यदि कोई आवश्यकता हो तो जिस परिचारिका ने आपको यहां तक पहुंचाया है, वही आपकी हर आज्ञा का पालन करेगी। वह हमारी नितांत विश्वसनीय परिचारिका है। महाराज वसुदेव की ओर से वही हम सबका संवाद एक्र-दूसरे तक ले जाती है। और समय आने पर वह अत्यंत विकट कर्म भी कर सकती है। आपको विश्वास तो नहीं होगा, किंतु इसे प्रारब्ध का संकेत कह सकते हैं कि वह वास्तव में हमारी पट्टमहिषी की परमविश्वस्त चरी थी, किंतु उसने महाराज वसुदेव और देवकी की पीड़ा और यातना को देखकर हमारा हित करने का संकल्प ले लिया है।

आप आश्चर्य न करें। मानव-जीवन ऐसा ही तो है! कौन कह सकता है कि महाराज कंस का परम विश्वासी मंत्री होने पर भी यह अक्रूर उनके परमशत्रु का हित करने में तत्पर रहता होगा?''

अक्रूर ने प्रणाम करके विदा ली और कक्ष के बाहर निकल गए।

उनके जाते ही उसी परिचारिका ने आकर वसुदेव से कहा, ''देव! इस समय किसी भी प्रकार देवी रोहिणी को यहां ले आना हितकर नहीं होगा। इसलिए उनसे मिलने का पर्व फिर कभी!''

नंद ने उसकी ओर कौतूहल से देखकर कहा, ''किंतु किसी भी समय एक बार तो देवी रोहिणी को महाराज से मिलवाना ही होगा। नहीं तो यशोदा हमें क्षमा नहीं करेंगी।''

परिचारिका ने विनीत स्वर में कहा, ''देव, विश्वास रखें! महारानी बिना आर्य से मिले, मथुरा से नहीं जाएंगी।''

''साधु....'' नंद ने उसकी सराहना की और अपनी ओर से उसको चंदनकाष्ठ का छोटा-सा बहुमूल्य गंधपात्र देते हुए कहा, ''यह तुम्हारे सुरभित कार्यों के लिए है! इसको तुम अपने उदात्त कार्यों एवं निष्ठा के लिए किसी प्रकार मूल्य अथवा उत्कोच नहीं मानना। यह मेरे स्नेह का प्रतीक है! बस।''

''मैं धन्य हुई, आर्य!'' परिचारिका ने सिर झुकाने के साथ ही कहा, ''अब समय आने पर फिर आऊंगी। इस समय महारानी अस्ति की अनुचरी हमारे पास आदेश लेकर आई है।'' और तत्काल वहां से अदृश्य हो गई।

वसुदेव की आंखें भर आईं। वह कोमल स्वर में बोले, ''मित्र! अब तो लगता है कि नियति की दृष्टि हम पर कुछ कोमल हो रही है। देवकी के छह-छह पुत्रों और अंतिम पुत्री की बलि ले लेने के बाद हम पर कृपालु होकर नियति अब न जाने क्या करना चाहती है। उस समय तो लगता था कि सारा विश्व हमसे रुष्ट होकर हमारा अहित करने पर तुला है। क्या कहा जा सकता है!''

वसुदेव जैसे पराक्रमी की आंखों में आंसू देख नंद विचलित-से होकर बोले, ''आर्य, किसी न किसी दिन तो समय बदलता ही है! आपने जिस धैर्य का आश्रय लेकर इतने वर्ष काट दिए, उसका फल भी अवश्य मिलेगा। आप विश्वास रखें। आपके मित्रों के रहते तो कोई कितना ही महाबली हो, तब भी आनकदुंदुभि आर्य वसुदेव के वंश को निर्मूल नहीं कर सकता!''

उनकी वार्ता नितांत गूढ़ थी, तो भी मानो युगों तक यातना सहने के बाद वसुदेव को अब सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों से भी भय लगता था। जिस पिता को

अपनी आंखों के सामने अपनी नवजात संतानों की क्रूरतापूर्वक हत्या होते देखना पड़ा हो और जिस पति को अपनी परमप्रिय पत्नी को अकाल ही काल-कवलित हो जाने वाले पुत्रों के लिए रोती-कलझती देखते हुए इतने वर्ष बिताने पड़े हों, उसके लिए तो अब जीवन ही बोझ हो चला था! किंतु उनके सामने नंद जैसे मित्र भी तो थे जो उनका हित करने के लिए सर्वस्व गंवा देने को भी तत्पर रहते थे। उनको यही तो अब भी सांत्वना देते थे।

दोनों मित्रों में बड़ी देर तक वार्ता होती रही। वसुदेव का दुःख नंद से मिलने के बाद आधा हो गया था। नंद से वह विस्तार से अपने पुत्र बलभद्र तथा उसकी माता रोहिणी के बारे में बार-बार पूछते रहे। नंद भी तो उनको अपनी ओर से सब कुछ बताकर मानो उनके मन की वेदना को हर लेना चाहते थे....रोहिणी का पुत्र तो इतना बलवान था कि इतनी-सी वय में ही वह बछड़ों को पकड़कर बरबस ही खींच लाता था और यशोदा के पुत्र को गोद में उठाकर हँसता रहता था!

वसुदेव आहत होकर बोले, ''मित्र! तुम यहां से यशोदा को लेकर जल्दी से जल्दी व्रज की ओर चले जाओ। तुम अपने पुत्र के साथ वहां सुख से रह तो सकते हो। मुझ जैसा अभागा कौन होगा कि मैं एकमात्र पुत्र का भी मुख तक देखने के लिए तरसता रह गया हूं। व्रज में ही रोहिणी के गर्भ से जन्म लेने वाले मेरे पुत्र को भी तुम अपना ही समझकर उन दोनों का पालन करना। तुम अपने पुत्र कृष्ण की भांति ही उसकी रक्षा करना। कहीं यह राक्षस....क्रूरकर्मा कंस उसका भी वध न करवा दे....तब तो पितरों की दृष्टि में मैं पुत्रहीन ही रहकर लोक में कलंकित हो जाऊंगा। मुझे पुत् नामक भयानक नरक भुगतना पड़ेगा! पितृपक्ष के दिनों में पुत्रवान लोग मेरी ओर देखकर मेरी हँसी उड़ाएंगे। मेरी निंदा स्वाभाविक ही होगी। मैं तो ऐसा भाग्यहीन हूं कि परमकुलीना, देवी रोहिणी जैसी उत्तम गुणों वाली अपनी पत्नी द्वारा उत्पन्न अपने एकमात्र पुत्र को आज तक देख भी नहीं पाया।''

वसुदेव जैसे यशस्वी को इस प्रकार अधीर स्वर में विलाप-सा करते देखकर उन्हें सांत्वना देते-देते नंद स्वयं भी विचलित हो गए थे। फिर भी उन्होंने वसुदेव को साहस और धैर्य बनाए रखने को प्रेरित किया और गूढ़ स्वर में बोले, ''आपका वह पुत्र महाकाल की ओर से देवी रोहिणी को वरदान के रूप में मिला है! आप निश्चिंत रहें! वह आपके यश की वृद्धि अवश्य करेगा। आपको इस विपन्नता की अवस्था में भी ज़ब अपने प्रियजनों तथा आत्मीयों का ऐसा सहयोग मिल रहा है तो निश्चय ही देवता अब आप पर प्रसन्न हैं। आपका हित ही होगा। आपका कल्याण हो। मैं तो आपकी पत्नी और पुत्र को

भी गोपनीय रूप से अपने साथ ही लाया था। मेरा विचार था कि अब आपको उस प्रकार से कारागृह में नहीं रखा जा रहा है तो अवश्य आपसे मिलने का भी अवसर मिल ही जाएगा। देवी रोहिणी ही नहीं....हमारी यशोदा भी कुरुनंदिनी रोहिणी को रात-दिन आपके दर्शन के लिए लालायित देखकर, अब तो उनसे भी अधिक व्यथित रहती है। किंतु....''

वसुदेव चिंतित होकर बोले, ''देवी यशोदा का तो हम पर बहुत बड़ा ऋण है, मित्र। पिछले दिनों रोहिणी की ओर से जो संवाद आया था, संयोग से वह अक्रूर ने किसी प्रकार मुझ तक पहुंचा ही दिया था। उसी से मैं शुभांगिनी यशोदा के प्रति अपने को ऋणी अनुभव करता हूं। रोहिणी ने अवगत करवाया है कि यशोदा उन्हें अपनी बड़ी बहन मानती हैं और रोहिणी के पुत्र की भी अपने पुत्र की भांति ही अपनी वत्सलता से पोषण करती है। तुम दोनों ने हमारे लिए जो भी किया और कर रहे हो, वह तो अब तक हमारे कुल के योद्धाओं के लिए भी असंभव-सा बना रहा। देवी यशोदा तो मेरी अनुजा के समान ही हैं....तो भी उनसे कहना कि अपने पुत्र के लिए व्यथित वसुदेव, तुम जैसी अंबा को प्रणाम करता है!'' वसुदेव की आंखों से आंसू की धारा बह रही थी।

नंद ने द्रवित होकर उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, ''आप क्या करते हैं, आर्य! हम तो आपके अनुचर हैं और अपने प्राण देकर भी आपका हित करने को तत्पर रहते हैं। यही हमारा धर्म है। यशोदा आपकी अनुजा के समान है। आपका प्रणाम नहीं, मात्र आशीष ही उसके लिए वरदान है....और वही हम सबके लिए भी उपलब्धि है।''

वसुदेव ने नंद को हृदय से लगाकर कहा, ''प्रियवर! यशोदा लोक की परम यशस्विनी देवी हैं! उनको तो प्रणाम करना ही काम्य है। अस्तु....तुम रोहिणी को आश्वस्त कर देना। हम किसी समय अवसर पाते ही कंस की अनुमति लेकर, संभव हुआ तो, कुरुक्षेत्र में स्नान करने का आयोजन करेंगे। ऐसा हो सका तो तुम्हें हम समय से पहले ही संवाद भेज देंगे। तब हो सकता है कि मुझे वहां अपने पुत्र हो हृदय से लगाने का अवसर....''

नंद ने धीरे से कहा, ''आर्य निश्चिंत रहें। मुझे आशा है कि उसके पहले ही आर्य को अवसर मिल जाएगा। मेरी ओर से और भी प्रयास किए जा रहे हैं।''

वसुदेव कांपकर बोले, ''किंतु, कहीं तुमने किसी और से रोहिणी और उसके पुत्र के यहां होने की बात तो नहीं कह दी, मित्र!''

''नहीं, नहीं, आप चिंता न करें, आर्य! आपके पुत्र के पहले मेरा पुत्र बलि चढ़ा दिया जाएगा। यशोदा सहित हम गोपकुल के समस्त योद्धा और

स्त्रियां प्राण देकर भी आर्या रोहिणी और आपके पुत्र की रक्षा करेंगे। आप हमारी यशोदा को नहीं जानते, आर्य! उनकी निष्ठा अपार ऊर्जामयी है। वह कुछ भी निश्चय कर लें तो करके ही रहती हैं। उनका विचार है कि हम मथुरा से तभी लौटेंगे, जब आर्य से देवी रोहिणी....''

वसुदेव के मुखमंडल पर भय की विवर्णता गहराती देखकर नंद सहसा ही चुप हो गए।

उनको सचमुच विश्वास नहीं हो रहा था कि शूरसेनकुल का यह पराक्रमी योद्धा कभी ऐसी व्यथा और भय का आहार बन जाएगा। बोले, ''तो जैसी आपकी आज्ञा। हम....जैसा आप कहते हैं, वैसा ही करेंगे!''

वसुदेव मानो आश्वस्त होकर बोले, ''तात, नंद! मुझे वास्तव में यह सारा ज्ञान तो है कि यह जो भी होता है, सब प्रारब्ध के अधीन होता है! तो भी पुत्र के अकल्याण का भय मुझे निरंतर व्यापे रहता है। इस दुरात्मा कंस के कारण तो मानो भय ने मेरी बुद्धि का ही अपहरण कर लिया है। मुझे हर पल कंस से अपने पुत्र के लिए भय लगा रहता है। न जाने कब किस बहाने से वह मेरे उस पुत्र को भी पकड़वाकर मार डाले—कोई ठिकाना नहीं उसका!''

कुछ देर सन्नाटा-सा छाया रहा, फिर वसुदेव ने कुछ धीरज के साथ कहा, ''तात, इस समय तो तुम मुझ पर मात्र इतना ही उपकार करो कि मेरे पुत्र....रोहिणीनंदन बलभद्र की हर उपाय से रक्षा करो। इस राक्षसी राज में तो इन दिनों....तुमने अनुभव किया होगा न कि आजकल बालकों, विशेषकर शिशुओं की हत्या करने की कितनी घटनाएं नित्य ही होती रहती हैं! बालकों के लिए व्याधियों का समूह मानो इन दिनों सारे लोक को व्याप रहा हो। न जाने क्या होने वाला है!''

वसुदेव गहरी सांस भरकर कहीं दूर देखते हुए-से बोले, ''हमने सुना है कि कंस की उन दोनों रानियों ने कंस को पागल कर दिया है। वे अपनी महत्त्वाकांक्षा इस हीन यादवकुमार कंस पर थोपकर सारे यादवकुल का संहार करवाने पर तुली हैं। कहा जाता है कि मगधराज जरासंध किसी राक्षसी जरा द्वारा जीवन पाकर मगध का राजा बना था। यह सत्य है कि नहीं, किंतु उसकी ये दोनों पुत्रियां अस्ति और प्राप्ति तो मुझे वास्तव में मानवी नहीं, राक्षस, दानव अथवा यक्षयोनि की ही ज्ञात होती हैं। तुमने तो संभवतः देखा नहीं होगा, किंतु विश्वास करो, नंद, वे अपरूपा युवतियां सचमुच मायाविनी, कामरूपिणी यक्षिणी ही जान पड़ती हैं। तभी तो कंस जैसा महाबली यादव योद्धा कामातुरता के कारण उनके वशीभूत, उनके ही संकेत पर भयंकर अनाचार करता रहता है। उसको तो अब....कहा जाता है कि कंस को वास्तव में राजकाज से कुछ लेना-देना रहा ही नहीं। उसको न जाने किस कुचाली ने षड्यंत्र रचकर ऐसा

विश्वास दिला दिया था कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला हमारा पुत्र ही उसका प्राणघाती शत्रु होगा! कहीं ऐसा भी होता है? किंतु हो रहा है। कंस के भय से अथवा इस षड्यंत्र का आरोपण करने वाली उस अज्ञात कुटिल शक्ति के भय से आज एक से एक महाज्ञानी ज्योतिषी भी उसके समक्ष इसी मान्यता का समर्थन कर देते हैं....परिणाम है—देवकी के पुत्रों का गर्भ से बाहर आते ही उनकी दारुण हत्या....ओह!''

वसुदेव उत्तेजना से कांप रहे थे।

कुछ देर बाद शांत होकर उन्होंने कहा, ''मैं भी पहले तो ऐसा ही सोचता था कि कंस वास्तव में अपने पितृव्य राजा देवक के प्रति शत्रुभाव होने के कारण उनसे प्रसन्न नहीं होगा, अतः देवकी के पुत्रों की हत्या करवा रहा है। फिर मेरे कुल के यादवों का यह मत आया कि कंस को वृष्णिकुल से मित्रता करते देख, किसी कुटिल नीतिज्ञ ने कंस को उकसाकर ऐसा प्रचार किया होगा! अथवा अस्ति और प्राप्ति के कहने पर ही कंस सारे यादवकुल का विनाश कर रहा होगा। महारानी अस्ति जितनी सुंदर है, उतनी ही क्रूर है....वह नागिन की भांति भयंकर विष से लहराती रहती है। अब तो कंस को छोड़कर सभी जानते हैं कि दोनों मागधी युवतियां वास्तव में कंस को लुभाकर मथुरा पर मगधपति जरासंध का आधिपत्य जमाने के लिए ही आई हैं। हमारे पुराने मित्र चेदिराज दमघोष का भी कुछ ऐसा ही विचार है। यद्यपि वह स्वयं जरासंध की अधीनता में रहने को विवश हैं, किंतु हमारी अनुजा श्रुतश्रवा के पति भी तो हैं! उन दोनों मागधी राजदुहिताओं से जब कंस के विवाह का निश्चय हो रहा था, उसी समय उन्होंने हमें सचेत किया था कि मगधपति वस्तुतः कंस को जामाता बनाकर अपनी ही शक्ति का विस्तार करना चाहता है। उसकी ओर से सावधान रहना ही काम्य है! किंतु सावधान होने को बचा ही क्या था? कंस जिस प्रकार अपने पूज्य पिता को भी मागध सेनापतियों के बल पर बंदी बनाकर, यादवगण का विनाश करके, अपने श्वसुर के कहने पर, उसका अनुकरण करते हुए यहां का राजा बन बैठा है, उसे देखकर किसका साहस है कि उसकी शक्ति को चुनौती देता? अब तो वह जरासंध की शक्ति के बल पर यहां निर्बाध शासन करता ही रहेगा न!''

नंद को लगा कि मथुरा की राजनीतिक स्थिति सचमुच बड़ी ही कठिन अवस्था में संत्रस्त हो रही है। ऐसे में बड़ी कुशलता से प्रयत्न करने पर ही फिर यादवों का उद्धार हो, तो हो। सहज ही तो कुछ संभव नहीं लगता। बोले, ''महाराज, आपने अपने संबंधियों से इस विषय में विचार-विमर्श नहीं किया....''

सहसा वही परिचारिका आकर वसुदेव से बोली, ''महाराज, अब आपको तुरंत ही यहां से जाना होगा। क्षमा करें, आर्य!'' उसने नंद की ओर देखकर

साग्रह कहा, ''मंत्रिवर, अब अपने कक्ष में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं....''

वसुदेव ने दु:खी होकर नंद की ओर देखा और उनको एक बार फिर हृदय से लगाकर चले गए। लगा कि वह अभी बहुत कुछ कहने को आतुर थे, किंतु व्यवधान के कारण मन की मन में ही रह गई।

अक्रूर ने नंद की ओर रहस्यमय दृष्टि से देखा और बोले, ''आपके गोष्ठों का विवरण हमको मिल गया, आर्य नंद! किंतु महाराज अथवा महारानी जब तक उसको देखकर निर्णय न दें, आपको मथुरा में ही रुककर प्रतीक्षा करनी होगी।'' अक्रूर की आखों में कुछ ऐसा था जो नंद को चुपचाप उनका निर्णय स्वीकार कर लेने की प्रेरणा दे रहा था।

वह मुसकराकर बोले, ''जैसी, महाराज की आज्ञा! किंतु देव को ध्यान रहे कि हमारे गोष्ठ बहुत दिनों तक उपेक्षित रहे तो....''

अक्रूर ने मानो उदासीनता दिखाते हुए कहा, ''यमुना-तट पर सावधान हमारी सेना की टुकड़ी को आज ही हमने आदेश दे दिया है कि गोपों के यहां से लौटकर गोकुल जाने तक गोष्ठों की रक्षा की ओर से सतर्क रहें। आपको यहां किसी प्रकार का कष्ट हो तो हमारे अनुचर से निवेदन कर सकते हैं....'' और अक्रूर ने उनकी ओर अवहेलना-भरी दृष्टि डालकर अपने निकट ही बैठे विशालकाय मागध योद्धा से कहा, ''प्रलंब! महारानी ने मुझे कहां दर्शन देने की अनुकंपा की है?''

''मेरे साथ आइए।'' प्रलंब नामक विशालकाय महामल्ल जैसे गुर्राकर उठ खड़ा हुआ।

और अक्रूर एक बार भी नंद की ओर देखे बिना उसके पीछे-पीछे वहां से चले गए।

मथुरा में अक्रूर के आदेश से गोपों को पूरे सात दिनों तक यमुना-तट के शिविर में ही रुकना पड़ा। इस बीच बार-बार ऐसी सूचना मिलती रही कि 'आज महाराज के समक्ष चलना होगा' किंतु कभी पता लगता कि 'महाराज ने महारानी अस्ति को ही इस विवाद को निबटाने का अधिकार दे दिया है। महारानी स्वयं जब इच्छा होगी उनको बुलवा लेंगी।' तो कभी कोई और बाधा आ खड़ी होती।

गोपों को तथा उनकी रानी की भांति माननीया देवी यशोदा को इस बात पर घोर क्षोभ था। उन्होंने तो शपथ ले ली कि फिर कभी मथुरा आएंगी ही नहीं। किंतु पति के आग्रह पर और उनके ऊपर अत्यधिक विश्वास होने के कारण यशोदा ने अपने अभिमान को दबाए रखा। उनको एक ही चिंता थी—इतना समय यहां व्यर्थ ही तो बीत रहा था! यदि आर्यपुत्र आज्ञा दे देते तो वह

देवी रोहिणी को भी गोपबाला के रूप में ही अपने साथ लेकर, किसी न किसी बहाने तो महाराज वसुदेव से उनको मिलवा ही सकती थीं। किंतु नंद ने उनको ऐसा दुस्साहस करने से वर्जित कर दिया।

फिर हँसकर बोले, ''तुम्हारी अग्रजा के पति-विछोह की चिंता उनके हितैषी कुलपुरुषों को भी तो होगी, देवी!''

यशोदा कुछ रोष प्रकट करने को ही थीं कि रोहिणी ने आकर उनका हाथ थाम लिया और उनको लेकर शिविर के पीछे चली गईं।

नंद स्वयं चकित-से होकर यह व्यापार देखते रहे। आर्या रोहिणी उनको अनुज के समान मान और आदर देती रहती थीं। संभवत: आज यशोदा के समक्ष उनके विषय में नंद ने जो 'पति-वियोग' का नाम ले लिया, उससे आर्या को ठेस लगी होगी। किंतु तब भी ऐसी कोई बात कह देने पर पहले तो देवी रोहिणी कभी रुष्ट नहीं होती थीं। बस, उनके कपोलों पर अद्‌भुत-सी लज्जा की लाली-भर नाच उठती थी। एक बार तो वह हँसकर कह बैठीं, ''मेरी सीधी-सादी अनुजा ने तुमको बड़ी छूट दे दी है न। अपने मित्र से तुम मुझको मथुरा ही बुलवा लेने को कह दो। कह देना कि अब आपकी मनस्विनी पत्नी हम व्रजवासियों के लिए बोझ बनती जा रही है!''

यशोदा अकुलाकर उनकी ओर ताकने लगी थीं, किंतु यशोदा की भांति नंद सहमे नहीं। बोले, ''अब मैं तो यही कह रहा था, देवी, कि मेरे मित्र को मान लो कि अवकाश नहीं मिलता, तो देवी ही स्वयं जाकर पुत्रजन्म का संवाद देकर उन्हें कृतार्थ करें।''

रोहिणी ने अपनी सौंदर्याभा से समूचे परिवेश को जगमग करते हुए कहा था, ''तो फिर अपने मित्र को सपने देखने दो। रोहिणी तो अपनी ओर से नहीं जाएगी। तब जाएगी, जब महाराज बुलावा लेकर तुमको ही भेजेंगे....''

और रोहिणी हँसती हुई हट जाती थीं....

उनका अनुपम धैर्य देखकर यशोदा की आंखें भर आतीं थीं। कहतीं, ''मैं तो इनको देखकर ही धन्य हो जाती हूं, आर्यपुत्र। न जाने किस धातु की बनी हैं कि अपने पति महाराज वसुदेव पर ऐसा संकट आया देखकर भी पृथ्वी की भांति अडिग रहती हैं। और इतना आत्मविश्वास कि इतने पर भी हँस लेती हैं....''

नंद स्वयं गद्‌गद होकर कहते, ''यह सब तो महाराज वसुदेव की प्रिया के लिए ही शोभनीय है, प्रिये। यह हँसी ही तो पराक्रम की प्रेरणा होती है.... मित्र वसुदेव का तो महाकाल भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। अंत तक उनकी ही विजय होगी, देख लेना....एक दिन हमारी पूजनीया आर्या रोहिणी वृष्णिकुल पर महारानी की भांति राज करेंगी।''

आज सहसा उन्हीं रोहिणी को यशोदा का हाथ थामकर अकुलाई-सी नेपथ्य में जाती देखकर नंद को शंका-सी होने लगी। कहीं कोई रहस्य अवश्य है! क्या?

और कुछ ही देर में जो सुनने में आया, वह तो सर्वथा अविश्वसनीय ही लगता था उस परिवेश में! यशोदा ने आकर चुपके से बताया कि आज मंत्रिवर अक्रूर ने हम सारी गोप-पत्नियों को अपनी प्रिया देवी सुकामा की ओर से आमंत्रित किया है। हमको आज की रात उनके भवन पर ही रहना होगा।''

यशोदा की आंखों में मीठी-सी चमक कौंध रही थी। नंद ने उन्हें साग्रह भुजाओं में लेकर कहा, ''देवी रोहिणी भी जाएंगी न?''

''हां, आज मंत्रिवर अक्रूर ने हमारी अग्रजा के मिलनपर्व का आयोजन किया है। आज महाराज वसुदेव भी हम गोपबालाओं का रात-भर चलने वाला नृत्योत्सव देखने को आएंगे। स्वयं देवी सुकामा का आग्रह मानकर राजा कंस ने उनको इसकी अनुमति दे दी है। किंतु वहां देवी रोहिणी को गोपबाला के रूप में ही ले जाना होगा। आर्यपुत्र हमारे लिए वही पुष्परथ तैयार करवा दें जिसमें हमारे सर्वश्रेष्ठ वृषभ जुते हैं।''

यशोदा का उछाह थामे नहीं थमता था। किंतु उनको आहत किए बिना नंद ने धीरे से कहा, ''किंतु, देवी! इस विषय में मुझको अंधकार में रखकर आयुष्मान् अक्रूर ऐसा कुछ कैसे कर रहे हैं....आश्चर्य है....''

''यह संवाद तो हमें अभी-अभी उनकी अतिसुंदर परिचारिका ने दिया है। उसने कहा कि आर्य नंद को संवाद देने के लिए भी दूत आ चुका है—द्वार पर प्रतीक्षा ही करता होगा।'' यशोदा ने हँसकर अपनी उज्ज्वल दंतावली से शिविर को प्रकाशित करते हुए कहा, ''तो क्या नंद महर की पत्नी की आज्ञा के बिना हमारे अंत:पुर की किसी युवती को कहीं जाने की आज्ञा दी जा सकती है? मेरा तो आर्यपुत्र कोई मोल ही नहीं मानते।''

यशोदा की हँसी बता रही थी कि कहीं कोई सुखद संवाद तो निश्चय ही है। किंतु इतना महत्त्वपूर्ण संवाद तो....

''जय हो, आर्य! मंत्रिवर अक्रूर का दूत दर्शन करना चाहता है।'' गोप बृहत ने उसी समय शिविर के द्वार से कहा।

दूत ने नंद को सूखा-सा आदेश सुना दिया, ''महाराज का आदेश है कि आज मंत्रिवर के परिवार को गोपबालाओं के नृत्योत्सव से प्रसन्न करने के पश्चात् प्रातवेला में ही गोपों का दल वहीं से व्रज की ओर प्रस्थान कर दे। इस आज्ञा के पालन में कोई विलंब नहीं होना चाहिए।''

नंद को संवाद देकर दूत तुरंत ही चला गया।

नंद भीतर आकर शिविर में क्षुब्ध-से बैठे ही थे कि यशोदा उल्लास से थिरकती-सी उनके निकट आ गईं। अपनी मृदु हँसी से पति का अभिषेक-सा करते हुए उन्होंने कहा, ''आर्यपुत्र! आपकी ही कृपा से हमारी अग्रजा को पति का दर्शन मिल रहा है। देवी रोहिणी ने देव को अपना प्रसाद कहा है! आप उनकी ओर से महान् हो गए और....''

''और?'' नंद ने पूछा, ''तुम्हारी ओर से?''

''मेरी ओर से तो आप एकमात्र ही हैं, आर्यपुत्र—प्रियतम!'' कहकर यशोदा ने सुख की लहरें छलकाकर पति को सिर से पांव तक सराबोर कर दिया।

मंत्रिवर अक्रूर ने वास्तव में नंद का अनुरोध मानकर ही, बहुत सोचने के बाद ऐसी व्यवस्था करवा दी थी।

उस समारोह के परिवेश में अवसर निकालकर अक्रूर ने नंद से कहा, ''आर्य, क्षमा करें, बार-बार आपकी अवमानना का बहाना बनाकर ही अपना हित साधना पड़ता है!''

नंद ने हँसकर कहा, ''मंत्रिवर, तुम्हारी ऐसी अवमानना तो किसी को महामान्य भी बना देती है! विश्वास नहीं हो तो किसी दिन व्रज में आने पर अपनी भ्रातृजाया यशोदा से इसका प्रमाण ले लेना। मैं तो यह देखकर चकित हूं कि इतनी-सी अल्प वय में तुम जैसा युवा नीतिज्ञ कितनी विशाल और जटिल व्यवस्था को इस प्रकार अपने संकेतों पर नचा रहा है!''

अक्रूर ने चारों ओर देखकर धीरे से कहा, ''अभी तो स्वयं व्यवस्था के संकेत पर नाचने के बहाने ही यह सब संभव करना होता है। आप नहीं जानते, हमने तो अपना कर्तव्य मानकर महारानी अस्ति का मनोरंजन करने के निमित्त भवन की रंगशाला में गोपबालाओं का यह विलक्षण नृत्य-समारोह आयोजित किया है।'' अक्रूर हँस पड़े।

नंद ने विस्मय के साथ पूछा, ''तो महारानी का भी आगमन होगा यहां?''

''कुछ निश्चय नहीं, आर्य। महारानी की इच्छा कब क्या होती है, सो तो संभवत: वे स्वयं भी नहीं जानतीं। आ भी सकती हैं। किंतु मैंने तो देख ही लिया कि जहां स्वयं भ्रातृजाया यशोदा जैसी नर्तकी हो, वहां महारानी का आना कठिन ही है—वह अपने-आपको ही लोक की परमसुंदरी मानती हैं और यह कदापि नहीं चाहतीं कि कहीं उनसे श्रेष्ठ रूपवती उनकी आभा को प्रतिहत करे।''

नंद विकल होकर बोले, ''कहीं हमारी यशोदा का कोई अनिष्ट तो नहीं

होगा, आयुष्मान्।''

''नहीं! मेरे जीवित रहते तो नहीं। अभी तो हम यादव अपने अतिथि के मान-सम्मान की रक्षा करने के लिए बहुत हैं....आप आसन ग्रहण करें....आर्या यशोदा तो अब प्रातःकाल आपको रथ पर ही मिलेंगी।'' कहकर अक्रूर मुसकराते हुए तत्काल उस ओर चले गए, जिधर प्रलंब लाल-लाल, कुटिल आंखों से उनकी ओर देखता खड़ा था।

प्रलंब के साथ ही अक्रूर तो चले गए, किंतु उनके अनुज वहीं रहे। महारानी के स्वागत के लिए इस नृत्य-समारोह के आयोजन का भार आज उन पर ही था।

उस रात नंद को विचित्र-सी आशंका निरंतर व्यापे रही, किंतु वैसा कोई व्यवधान नहीं पड़ा। सारी रात गोपबालाएं उल्लास से थिरकती रहीं और मंत्री अक्रूर के राजप्रासाद जैसे भव्य आवास में समारोह का उल्लास छाया रहा।

दूसरे दिन भोर में ही नंद को वसुदेव से फिर मिलने का अवसर मिला था। वसुदेव ने रथ पर पत्नी रोहिणी की गोद में सोए पड़े अपने स्वर्णिम कांति वाले पुत्र को थपकी-सी दी, फिर उसको नंद की बांहों में सौंपकर बिना कुछ कहे चले गए।

गोपों की गोकुल-यात्रा आरंभ होने को थी, तब वसुदेव को अचानक ही इतना अवसर मिल गया कि वह नंद को विदा करने आ पहुंचे। किंतु वह सावधान रहे। जिस रथ पर नंद अपनी पत्नी यशोदा के साथ बैठे थे, कृष्ण एवं बलभद्र को उस पर नहीं बैठाया गया था। नंद ने पहले से निश्चित युक्ति के अनुसार उन दोनों बालकों के लिए दो छोटी-छोटी सुंदर-सी शिविकाएं बनवा ली थीं। और उनको ढोने वाले छोटी वय के गोप बालक ही चुने गए थे। उन्हीं पर दोनों बालकों को सुला दिया गया था और दस-दस, बारह-बारह वर्ष के चार-चार बालक उन शिविकाओं को कंधों पर उठाए सशस्त्र गोप युवकों के बीच हँसते-खेलते इस प्रकार चल रहे थे, मानो खेलने के लिए यों ही शिविकाएं ढो रहे हों। गोपों के विशाल समूह को लांघकर कोई सीधे उन शिविकाओं तक पहुंचने की सोच भी नहीं सकता था।

गोपों तथा गोपिकाओं ने मथुरा से अपने लिए अनेक सामग्रियां भी मोल ली थीं। राजकर में पर्याप्त धन तथा विपुल मात्रा में गोरस से संबद्ध पदार्थ देने के कारण राजा की ओर से उन्हें कितने ही उपहार भी मिले थे। ऐसे तो सभी चकित थे कि इस बार राजधानी में उनके साथ और वर्षों की अपेक्षा बहुत अशिष्टता-भरा व्यवहार किया गया था। उन पर पहले की भांति विश्वास न करके अब की बार उनसे गोष्ठों तथा गोधन के विषय में कितने ही कटु और

व्यंग्यात्मक प्रश्न करने के बाद ही उनका कर स्वीकार किया गया था। गोपों को बार-बार मंत्रियों के यहां जाकर उनको संतुष्ट करना पड़ा, किंतु अंत में राजा की ओर से उनको उपहार और पुरस्कार देकर मानो उनके मन से मलिनता दूर करने का प्रयास किया गया था।

जो भी हो, मंत्रिप्रवर अक्रूर के आवास पर गोपबालाओं के नृत्य-समारोह का आयोजन तो बड़ा ही भव्य रहा। उस अवसर पर महारानी अस्ति आने वाली तो थीं, किंतु अंत तक किसी विशेष कारण से वह स्वयं नहीं आ सकीं, फिर भी उनकी ओर से सभी गोपबालाओं के लिए सुंदर-सुंदर परिधान तथा आभूषणों के साथ ही ढेर सारे बहुमूल्य उपहार दिए गए तो सचमुच गोपों का मन प्रसन्न हो गया था। निश्छल हृदय वाले गोप तथा गोपियों का समुदाय अपने राजा और महारानी का गुण-गान करता रहा। आते समय भी वे पुरी के बीच होकर आए और मार्ग में महाराज कंस तथा महारानी अस्ति का जयजयकार करते हुए चल रहे थे।

यह सब ठीक उसी प्रकार हो रहा था, जैसा अक्रूर ने निश्चित किया था! अपने चरों तथा चरियों से गोपबालाओं द्वारा अपनी प्रशंसा में गाए गए गीतों के बारे में सुनकर महारानी अस्ति वास्तव में प्रसन्न थी। और महारानी की प्रसन्नता का अर्थ था, उनको हर प्रकार के भय से मुक्ति के साथ ही और भी अनेक मूल्यवान उपहार तथा गोकुल में हर प्रकार की सुविधा और साधनों का विस्तार। अक्रूर ने महारानी की ओर से ऐसी आज्ञा मिलने पर उसका भरपूर उपयोग गोपकुल के हित के लिए किया था और महारानी अस्ति की तृप्ति और संतुष्टि की मर्यादा के अनुसार ही उन सबको एक से एक उपयोगी तथा मूल्यवान उपहार—परिधान-अलंकार—देकर उनको मथुरा से विदा किया था।

अपने पुष्परथ पर यशोदा के निकट बैठे नंद मन ही मन वसुदेव की ओर से विदाई के समय कही गई उनकी गूढ़ बातों पर विचार कर रहे थे। निश्चय ही वसुदेव उन पर हर प्रकार से विश्वास करते हैं। उन्हें सदा से ही नंद की बुद्धि तथा विवेक और सामर्थ्य पर भरोसा रहा है। वसुदेव ने कंस के राजा बनने के वर्षों पहले से अपनी ओर से वृंदावन के निकट के यमुना-तटवर्ती समस्त गोष्ठों का भार नंद को ही सौंप रखा था। वृष्णिकुल का सबसे बड़ा आधार तो ये गोष्ठ ही थे—उनकी सारी संपदा और धन-धान्य के मूल स्रोत। और तो और, अपनी लक्ष्मी सरीखी प्रियतमा देवी रोहिणी को भी वसुदेव ने संकटकाल में नंद के यहां ही भेजा था। इससे बढ़कर विश्वास की बात और क्या हो सकती है?

फिर अपने पुत्र के विषय में आर्य वसुदेव आज इतने आग्रह के साथ

उसकी रक्षा की ऐसी-ऐसी युक्तियां नंद को किस कारण समझा रहे थे? सच तो यह है कि इस प्रसंग में भी नंद स्वयं वसुदेव की अपेक्षा कहीं अधिक जानते हैं। वसुदेव को तो कारागृह में होने के कारण संतान के हर सुख से वंचित ही रहना पड़ा है। और तो और, वे तो अपने कुल के बालकों के पालन-पोषण के विषय में भी इतने विस्तार से नहीं जानते होंगे। नंद को इस विषय में व्यावहारिक अनुभव होता ही रहता है।

अपने व्रज में रहने वाले समस्त गोपकुलों पर नंद का ही तो शासन है! और वैसा राजकाज न होने पर भी नंद पिता की भांति समूचे गोपकुल का पालन करते हैं। व्रज में किसी के यहां भी बालक जन्म लेता हो, नंद उसकी चिंता पिता की ही भांति करते हैं।

उनके पालन-पोषण और उनकी रक्षा का जो उपाय किया जाता है, स्वयं नंद ही तो उसका आयोजन करते हैं। फिर आर्य वसुदेव ने इतनी छोटी-छोटी बातें भी क्या मात्र कंस के भय से कातर होने के कारण ही कही थीं?

असंभव तो नहीं है, आर्य वसुदेव और देवकी को कारागृह में रहते समय बार-बार अपनी नवजात संतानों का कंस द्वारा विनाश होते देखना पड़ा, कोई भी पिता अपनी जीवित रह जाने वाली एकमात्र संतान के लिए भयातुर रहेगा ही!

फिर भी नंद को संतोष नहीं हुआ। उनके मन में निरंतर वसुदेव की वही बातें नाचती रहीं—'मित्र....तुम मेरे रोहिणीकुमार की जिस प्रकार भी हो, रक्षा करना....आजकल जगत में न जाने कितनी व्याधियां व्याप रही हैं जो बालकों को त्रास दे रही हैं, तुम सावधान रहो....तुम्हारा पुत्र छोटा है और हमारा रोहिणीनंदन उससे ज्येष्ठ है, तो भी है तो अभी अबोध ही। तुम इन दोनों पर समान दृष्टि रखना और अपना ही मानकर उनकी रक्षा करना। मित्र, मैं जानता हूं कि संयोग-वियोग आदि सब प्रारब्ध के ही अधीन हैं, तो भी निरंतर बना रहने वाला भय मेरे विवेक और बुद्धि को हर चुका है। किंतु बालकों में तो विवेक होता ही नहीं! वे तो किसी भी खेलकूद में मोहग्रस्त होकर रम जाते हैं, बात-बात पर चिढ़ जाते हैं....खीझते-रोते हैं। किंतु तुमको उनका ध्यान रखना होगा....वन में तो सांप-बिच्छू और तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े होते ही हैं, कितने ही विषैले जंतु होते हैं....अरे, हां....कितने ही विकराल पक्षी भी मांसलोभी होते हैं....सुनता हूं कि वे अवसर पाते ही बालकों को झपटकर उठा ले जाते हैं! तुम इन घोरकर्मा पक्षियों से भी सतर्क रहना! मित्र नंद! तुम तो हर प्रकार से योग्य हो और विघ्न-बाधा के सभी रूपों से परिचित हो, तो भी अब विशेष रूप से सावधान रहना....हां, मेरा विचार है कि तुम अपने गोष्ठ वृंदावन में नहीं रखना....अब कंस का केशी नामक वह दानवाकार अश्व भी उसी वन

में आकर रहने लगा है। वह अश्व होते हुए भी नृशंस हत्यारा है। विचित्र बात है कि वह जंगली जंतुओं की भांति मांसभक्षी हो गया है। उससे दूर ही रहने में इन बालकों का कल्याण है। मेरा तो कहना यही है कि तुमको गोष्ठों के अपने अथवा बाहर से आ जाने वाले विकराल गौओं-वृषभों तथा बछड़ों से भी इन शिशुओं की रक्षा करनी चाहिए....अब रात बीत ही चली है....तुम तत्काल ही वेग से चलने वाले वाहनों से यहां से प्रस्थान कर दो....लो, ये दाहिने-बाएं उड़ने वाले पक्षी भी अब जैसे तत्काल मथुरा से प्रस्थान करने का ही संकेत कर रहे हैं....''

और आर्य वसुदेव एक बार फिर दोनों बालकों के मस्तक चूमकर तुरंत ही भवन के पीछे वाले अंधेरे प्रकोष्ठ में समा गए थे....

नंद ने अचानक ही करवट बदली तो उनके कंधे पर सिर रखकर टिकी सुशोभना यशोदा बोल पड़ीं, ''आर्यपुत्र, आप तो मथुरा से इतनी दूर निकल आने पर भी न जाने किन चिंताओं में लीन हैं....ऐसा क्या हो गया?''

''देवी, मुझे आर्य वसुदेव की बातें याद आ रही हैं....निश्चय ही वे अपनी संतानों की हत्या से आज भी बहुत ही विह्वल थे और बार-बार कातरता-भरी बात करने लगते थे। अपनी विवेकबुद्धि के क्षीण हो जाने की बात भी कर रहे थे, किंतु उनकी बातें मात्र इस कारण नहीं थीं....मुझे लगता है कि वह कुछ और ही कहना चाहते थे, जो कह रहे थे, उससे अलग....''

''क्या कहना चाहते थे, आर्य?'' यशोदा की सुंदर आंखें कुछ फैल-सी गईं। बोलीं, ''कुछ रहस्यमय कहते थे?''

''रहस्यमय? हां, ऐसा ही लगता है।'' नंद ने पल-भर सोचकर कहा, ''हां, प्रिये, तुमने ठीक शब्द दे दिया मेरे विचारों को। आर्य वसुदेव निश्चय ही कुछ 'रहस्यमय' ही कह रहे थे....किंतु स्पष्ट कह नहीं सके।''

अब तक जिन बातों की उलझन में स्वयं नंद पड़े थे, वह पूरी की पूरी वार्ता उन्होंने सोच-सोचकर यशोदा के समक्ष दोहरा दी। बोले, ''तुम जरा सोचो, क्या वह केवल मुझे शिक्षा देने के लिए यह सब कह सकते थे?''

यशोदा की ममता-भरी आंखों में भय की छाया-सी उतर आई। वह अपने को बरबस नियंत्रित करके उस ओर देखने लगीं, जिधर बालकों का दल शिविकाएं कंधों पर उठाए, हँसता हुआ वेग से दोनों बालकों को लिए चल रहा था। शस्त्रों से सुसज्जित गोप योद्धाओं का दल उनको चारों ओर से घेरकर सावधान चलता दिखा। यशोदा के दुग्धसिक्त वक्षस्थल का कंपन देखकर नंद ने समझ लिया कि यशोदा का मातृहृदय शिशुओं के लिए विकल है। बोले, ''तुम उनकी चिंता मत करो, देवी! उनकी कुशलता के लिए ही यह प्रबंध

किया गया है!''

यशोदा ने कहा, ''मेरा मन तो पहले से ही विकल होता रहा है। इस बार मथुरा की यात्रा से बचकर सकुशल व्रज में पहुंच जाएं तो मैं देवराज भगवान इंद्र को बलि अर्पित करूंगी।''

नंद ने पत्नी को आश्वासन देकर उनको स्थिर करने की चेष्टा की। कुछ देर बाद वह शांत हो गईं, तब नंद ने सहसा कहा, ''लो, तुम्हारी कामना पूरी हुई, प्रिये! हम तो अपने क्षेत्र में ही पहुंच गए अब!''

उनका दल यमुना के किनारे-किनारे चलता, शीतल समीर के झोंकों से अपनी थकान मिटाता हुआ सचमुच अब गोवर्द्धन पर्वत की तलहटी में बसे अपने विशाल व्रज के क्षेत्र में आ पहुंचा था। गौओं का यह व्रज इस समय शीतल-सुरभित समीर के स्पर्श से प्रफुल्लित लग रहा था।

यशोदा अपने व्रज की ओर मुग्ध भाव से देख रही थीं। उनके मन का संताप जाता रहा। प्रफुल्लित नेत्रों से उन्होंने पति की ओर हर्ष-भरी मुसकान के साथ देखा, फिर व्रज की शोभा निरखने-सी लगीं।

यमुनातट से ही सटे व्रज में दूर-दूर तक मनोरम हरियाली छाई थी। लता-वल्लरियों से आच्छादित ऊंचे-ऊंचे छतनार वृक्षों की छवि अनुपम जान पड़ती थी। उन भारी-भरकम वृक्षों के मोटे तनों पर जगह-जगह विशालकाय वृषभों द्वारा सींगों के रगड़ने के निशान दिख रहे थे। उनसे अपने व्रज के गोधन की गरिमा-सी टपकती प्रतीत होती थी। घास-पात और लतागुल्मों की हरीतिमा से आवृत वृक्षों पर पके हुए फलों का लाल रंग कितना मोहक लग रहा था! समूचे वन में पक्षियों का कलरव गूंज रहा था।

कुछ और आगे बढ़ते ही दूर-दूर तक पसरा समतल प्रदेश आया। यह हरियाला समतल भू-भाग गौओं के चरने के लिए प्रशस्त था। गाय-बछड़े पानी-पीने के लिए यमुना के जल तक अथवा तालाब-बावली आदि जलाशयों तक सहज ही पहुंच सकें—इसके लिए विशेष रूप से समतल मार्ग बना दिए गए थे। और अपने विशाल भरे हुए थनों से कहीं-कहीं दूध झरती, रंभाती हुई पुष्ट गायों के रेवड़ वहां आ चुके थे। घास चरती उजली-धौली गायें कितनी सुंदर लग रही थीं!

''कल को हमारा सांवला-सलोना कृष्ण भी तो चरवाहों के साथ ही लकुट-कमरिया लिए हुए गाय चराने आया करेगा....'' यशोदा आनंदमग्न होकर हँसने लगीं।

नंद भी कृष्ण की उस छवि की कल्पना से मन ही मन मुग्ध होकर पत्नी

की बांह थामे हँसने लगे।

रथ और आगे पहुंचा।

अब ग्राम आ गया था। सुंदर-सुंदर गोपांगनाओं से भरा वह गांव कितना रमणीय लग रहा था। गांव के चारों ओर कंटीले पौधों की बाड़ लगी थी। बाहरी सीमाओं की रक्षा के लिए वन में गिर जाने वाले बड़े-बड़े पेड़ों को लाकर उनको अवरुद्ध कर दिया गया था। उसके साथ ही गोपों ने अपने-अपने शकटों (छकड़ों) को मंडलाकार लगा दिया था। उनसे गांव की शोभा और भी बढ़ गई थी।

बछड़ों को बांधने के लिए जगह-जगह सैकड़ों खूंटे गड़े थे। उनमें रस्सियां भी लगी थीं। कहीं-कहीं गोबर का ढेर पड़ा था, जिसे पाथकर कंडे बनाने के लिए गोपांगनाओं का आना आरंभ हो गया था। दूर-दूर तक कंडों के ढेर बिछाकर सूखने के लिए छोड़ दिए गए थे। गोवाटों[1] के द्वारों पर काठ के ही कुंडे लगे थे। रातों में सुरक्षा के लिए इन कुंडों को लगाकर अपने गोधन को वन की ओर जाने से रोका जाता था। साथ ही किसी हिंस्र जीव-जंतु का गोवाटों में प्रवेश न होने पाए, इसके लिए भी इन कुंडों की सावधानी महत्त्वपूर्ण थी। गौओं के विश्राम तथा सुरक्षित रहकर भ्रमण करने के लिए अनेक गोचर स्थानों तथा गोशालाओं से सारा व्रजक्षेत्र भरा हुआ था।

उनके निकट ही गोपों के अखाड़े बने थे। जहां सवेरे ही सवेरे गोप युवक उन्मुक्त भाव से आकर अपने पुष्ट शरीर को और भी पुष्ट करने के लिए तरह-तरह के व्यायाम करने लगे थे।

फिर विभिन्न आकार-प्रकार की कुटियों और गृहों की झलक मिलने लगी। उनको तिनकों तथा घासफूस के छाजनों से छाया गया था। हर कुटीर के सामने लंबे-चौड़े आंगन थे। नील-पीत अंबर पहने गोपांगनाओं का समूह आंगन में नित्य की भांति अपने-अपने काम में लगा था। कहीं-कहीं विशाल कुंभों जैसे माटों में दही का मंथन करती व्रजबालाएं मंथन से उठते घर-घर नाद के साथ लयताल से झूम-सी रही थीं। उनकी सुंदर देहयष्टि इस समय कितनी मोहक जान पड़ती थी!

आसपास ही नालियां भी बनी थीं, जिनमें दधिमांड[2] बहुत बड़ी मात्रा में बहा दिया जाता था। इसीलिए वहां धरती गीली-सी दिख रही थी। दधिमांड फेंककर तब दही का मंथन करके उससे नवनीत निकाला जाता था। पानी वाला भाग व्यर्थ होने के कारण फेंक ही दिया जाता था। सवेरे ही सवेरे गोपबालाएं

---

1. गोवाट– गायों के रहने के बाड़े।
2. दधिमांड– दही के ऊपर तैरता पानी।

दही मथने में लगी थीं। उनके हाथों के कंगन निरंतर खनखना रहे थे, जिनकी मीठी-सी झनकार चारों ओर दूर-दूर तक फैली थी।

कहीं-कहीं मक्खन को आग पर खौलाकर उससे घी निकाला जा रहा था। पूरा परिवेश उसकी सुरभि से गमक रहा था।

नंद का रथ आगे बढ़ा तो यमुना की ओर जाने वाले पथ पर कितनी ही गोपकन्याएं नील-पीत वस्त्र पहने, कानों में वन के वासंती फूलों के कनफूल धारण करके, हँसती-छलकती हुई, सिर पर कलश लिए आ-जा रही थीं। यमुना के पनघट से नित्य ही गोपांगनाओं द्वारा कलश भरकर लाने का यह क्रम अपने-आपमें दर्शनीय होता था। सुंदरी गोपांगनाओं के उन्नत वक्षस्थल चोली और आंचलों से ढके होने पर भी अपनी मोहकता से मन को मदमत्त कर देते थे। ग्राम्य सौंदर्य की अनुपम छटा से व्रजस्थली की शोभा अनूठी हो रही थी। उन कमनीया तरुणियों से सारा व्रजग्राम घिरा-सा लगता था।

गोपों एवं गोपांगनाओं के कलरव तथा मधुर हँसी से गूंजता समूचा व्रज नंद का रथ देखते ही मानो प्रसन्न होकर उनका स्वागत करने के लिए उमड़ पड़ा। गोपियां बहुत दिनों से बिछड़ी ब्रज की महारानी-सी ममतामयी यशोदा को हृदय से लगा-लगाकर उनका स्वागत कर रही थीं। वधूटियां नंद की प्रिया के चरण छूकर उनका आशीष प्राप्त करके हँसती हुई उनके लिए जल आदि लाने के लिए भागती-सी, इधर-उधर आती-जाती रहीं। वृद्धाएं गद्‌गद कंठ से यशोदा तथा रोहिणी और उनके बालकों को तरह-तरह से आशीष दे रही थीं।

वृद्ध गोपजनों ने आगे बढ़कर अपने प्रमुख का आदर से स्वागत किया और उनके लिए आसन प्रस्तुत किया। नंद वहीं बैठकर अपनी अनुपस्थिति की अवधि में व्रज की कुशलता जानने के लिए तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। उनको यह जानकर संतोष ही मिला कि इस बीच यहां व्रज में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ। हां, वन के भीतर रहने वाले सिंह-व्याघ्र आदि अनेक मांसभक्षी जंतुओं की ओर से कभी-कभी चिंता होती थी। एकाध बार कोई भयंकर पशु निकलकर व्रज की ओर आता दीख पड़ा तो ग्राम के रक्षकों ने पहले ही दुंदभि तथा ढप आदि से डरावना कोलाहल करके उनको फिर वन में ही खदेड़ दिया था। उन हिंस्र पशुओं से गोधन की रक्षा के लिए गोपों ने रात-रात-भर पहरा देते रहने का निश्चय कर लिया है। और बारी-बारी से वे रातों में जगकर बनैले जीव-जंतुओं को डराते रहते हैं। वैसा कोई चिंतनीय उपद्रव इस बीच नहीं हुआ था। कभी-कभी कुछ सैनिक भी आकर व्रज में विचरण कर जाते थे।

कुछ ही दूर और बढ़ने पर उन्हें वह विशाल और सुंदर कुटीर मिला,

जिसमें देवी रोहिणी रहती थीं। यशोदा ने वहीं रुककर अपने पुत्र को दूध पिलाते समय थपकी दे-देकर सुला दिया। फिर उसे रोहिणी के आवास में ही सुख से नींद लेने के लिए लिटाकर वह अपने भवन की ओर चली गईं।

दस

प्राप्ति के शयनागार से कंस उस दिन तृप्त और प्रसन्न होकर निकला था। वह मणिजटित अलंकार— केयूर-अंगद तथा कुंडल-किरीट आदि धारण करने के बाद राजसभा की ओर जाने की सोच ही रहा था कि उसके विश्वस्त चर वितुंड ने आकर प्रणाम किया। कंस उसको सवेरे-सवेरे देखकर कुछ विस्मित हुआ। उसको आशा नहीं थी कि वितुंड इतनी जल्दी कोई सूचना लेकर आ जाएगा, तो भी उसकी आंखें चमक उठीं। उसने यहां के चरों से जो गुप्त संवाद प्राप्त किया था, उसका निश्चित पता लगाने के लिए ही उसने विंतुड को व्रज जाने का आदेश दिया था।

कंस को आरंभ से ही संदेह हो गया था कि वास्तव में वसुदेव का पक्ष लेने वाले कुटिल यादवों ने देवकी के आठवें गर्भ के संबंध में कोई चाल अवश्य खेली थी। उसके द्वारा कारागार पर नियुक्त प्रसव-कुशल स्त्रियों ने उसको सूचित किया था कि देवकी के लक्षणों से स्पष्ट ही परिलक्षित होता था कि आठवीं बार भी उसके गर्भ में पुत्र ही है।

फिर देवकी के निकट ही रहने वाली चरी त्रिशला ने तो कहा ही कि उसके सामने ही देवकी ने पुत्र को जन्म दिया था, किंतु वह जब बाहर निकली तो न जाने क्या हो गया कि सहसा ही वह निद्रा के अधीन अचेत-सी हो गई थी। यद्यपि उसको आश्चर्य होता है कि वह वर्षों से इस कार्य को करती आ रही है और न जाने कितनी यादव युवतियों का प्रसव करवाती रही है; कितनी ही बार उसे आधी-आधी रात तक जगना पड़ा होगा, किंतु आज तक कभी वह इस प्रकार इतनी गहरी नींद नहीं सोई। फिर उसे तो महाराज कंस की आज्ञा के अनुसार देवकी के आठवें पुत्र का जन्म होते ही तत्काल आकर सूचना देनी थी, फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि वह सो जाती!

वह बार-बार शपथ लेकर एक ही बात कहती रही। किंतु कंस के प्रिय मंत्री अक्रूर ने उसकी हँसी उड़ाते हुए कहा था, "अब यह केवल महाराज को प्रसन्न करके अपनी भूल पर परदा डालना चाहती होगी, इसी कारण पुत्र होने की भ्रामक बात कर रही है! महाराज यदि आदेश देकर गंभीरता से खोजबीन करवाएं तो सत्य सामने आ ही जाएगा। यह आधी रात को जगी तो रही थी,

किंतु देवकी के गर्भ से पुत्री जन्मी थी, अत: उसकी सूचना लेकर आने की कोई विशेष महत्ता नहीं समझकर यह अपने प्रेमी प्रतिदाह के पास आनंद मनाने चली गई थी। यदि महाराज की आज्ञा हो तो मैं स्वयं इसके प्रेमी प्रतिदाह को बुलवाकर इसके विषय में पूरी सूचना प्राप्त कर सकता हूं।''

सुनते ही त्रिशला थर-थर कांपती हुई कंस के चरणों पर गिर पड़ी और प्राण-रक्षा की याचना करती हुई बोली, ''महाराज के नेत्रों से कुछ भी छिपा नहीं रह सकता। दासी आधी रात को प्रतिदाह के पास गई तो अवश्य थी, किंतु केवल यही बताने के लिए कि इस बार भी पुत्र का जन्म हुआ है। क्या सूचना देने के लिए इतनी रात गए महाराज को जगाकर कष्ट देने की आवश्यकता है? किंतु प्रतिदाह उस समय न जाने किस समस्या पर अन्य सैनिकों से विचार-विमर्श कर रहा था। मैं वहीं उसकी कोठरी में बैठकर प्रतीक्षा करने लगी। बस, फिर क्या हुआ, सो मैं नहीं जानती....किंतु रात को मेरे सामने ही आर्या देवकी ने पुत्र को जन्म दिया था, कन्या को नहीं, यह तो मैं शपथ लेकर....''

कंस ने क्रोध से उसको लात मारकर बाहर निकाल दिया और अक्रूर की अवहेलना-सी करता हुआ लौटकर फिर अपने कक्ष में ही चला गया था।

वितुंड महाराज को इस प्रकार सशंक दृष्टि से अपनी ओर घूरते पाकर मन ही मन भय से कांप उठा। न जाने राजा को क्या त्रुटि दीख गई कि....

''क्या सूचना है, वितुंड?'' कंस ने अचानक ही पूछ लिया।

''सत्य है, महाराज।''

''क्या सत्य है?'' कंस ने तीक्ष्ण स्वर में पूछा।

वितुंड ने उद्विग्न होकर कहा, ''वही....वह बालक, महाराज....वह तो गोपों का बालक नहीं लगता, निश्चय ही उसको छलपूर्वक मथुरापुरी से वहां पहुंचा दिया गया होगा। और अब तो वह एक से एक पराक्रम कर रहा है....इतनी-सी वय में....जब शिशु था, तभी उसने एक दिन तो भरे हुए शकट को पांव से मारकर उलटा कर दिया था, प्रभु और....''

''मूर्ख....'' कंस ने गरजकर कहा, ''यह तो मैं बहुत सुन चुका कि हमसे छल किया गया है और यह भी कि उसने अनेक पराक्रम किए हैं! तूने प्रमाण क्या खोजा? मैंने तुझको उसके पराक्रम की गाथा सुनाने के लिए नहीं कहा था, मुझे तो उन विद्रोहियों के विरुद्ध प्रमाण चाहिए, जिन्होंने षड्यंत्र करके उसे मथुरा से....''

वितुंड अचकचाया-सा देखता ही रह गया।

''तुझे कैसे पता लगा कि वह गोप बालक नहीं हो सकता? किसी ने बताया कि उसको यहां से कौन लेकर किस प्रकार गोकुल गया था....क्या यह

सब सचमुच उसी रात किया गया....किंतु त्रिशला तो कहती थी कि....और अक्रूर की यह बात भी सत्य प्रमाणित हो गई कि वह दासीपुत्री त्रिशला सारी रात प्रतिदाह के निकट ही रही, फिर तो त्रिशला झूठ बोलती हो—यही हो सकता है....तो फिर सत्य क्या है....'' कंस ने प्रलाप करते-करते सहसा ही वितुंड को आदेश सुना दिया, ''यदि तीन दिन के भीतर तू उसके विषय में पूरा सत्य नहीं खोज पाया तो फिर तुझे यमुना में ही डूबकर प्राण देना होगा, जा!''

विकल होकर वितुंड तत्काल चला गया।

कंस कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा। राजसभा में जाने का उत्साह मर-सा गया था। वह फिर प्राप्ति के ही भव्य कक्ष में लौटकर अपनी उस उद्दाम वासना से खेलने वाली विलक्षण यौवनवती मागधी प्रिया के अंक में अपना चेहरा छिपाकर शांति पाने की सोच ही रहा था कि अकस्मात् वीथी में उसकी पट्टमहिषी अस्ति आती दीख पड़ी। कंस की आंखें उस अनिंद्य सुंदरी की नागिन की-सी लहराती देह पर अटकी रह गईं। वह मन ही मन क्षुब्ध, अपलक उसी ओर निहारता रह गया।

अस्ति न जाने क्या सोचती-सोचती आ रही थी। मार्ग में सहसा अवरोध पाकर वह अटकी और चकित-सी उस ओर देखने लगी। कंस को देखकर वह स्तब्ध रह गई। कंस ने मुसकराकर कहा, ''सौंदर्य की साकार प्रतिमा-सी देवी अस्ति ने अपने इस दास को किस अपराध पर निष्कासन दे रखा है?''

अस्ति ने विहँसकर कहा, ''मैं तो सोचती थी, महाराज का दर्शन आज भी नहीं पाऊंगी। किंतु मेरा सौभाग्य कि महाराज अब तक सभा में नहीं गए। मेरे भाग्य में समय से ही दर्शन लिखा था....''

कंस की दृष्टि निकट ही खड़ी अस्ति की प्रिय दासी सुरंगिणी की ओर उठी तो वह सकुचाई-सी सिर झुकाकर, प्रणाम करके, तत्काल वहां से चल पड़ी। किंतु अस्ति ने सहसा ही पुकारकर उसे रोका और आज्ञा दी कि तू इसी समय जाकर प्रलंब को मेरा आदेश दे कि वह अभी तो जाए और आज ही संध्या के समय आकर मुझे अवश्य मिल ले। इस समय मुझ पर महाराज की अनुकंपा-भरी दृष्टि पड़ी है सो....''

कंस ने अनुरक्ति के साथ पूछा, ''देवी क्या किसी विशेष कार्य में व्यस्त थीं?''

''महाराज की सेवा से अधिक आवश्यक तो हमारे लिए संसार में कुछ भी नहीं है। आप पधारें, आर्यपुत्र।'' कहती-कहती अस्ति के कपोलों पर अद्‌भुत-सी लालिमा थिरक उठी। उसने अपनी काली-काली आंखों से पति की ओर देखा और मानो पलमात्र में उसको जीत लिया। कंस के लिए अस्ति

वास्तव में इन दिनों दुर्लभ-सी हो रही थी।

कंस की समझ में नहीं आता था कि अस्ति किस धातु की बनी है। उसकी सपत्नी प्राप्ति भले ही उसकी सगी भगिनी ही थी, पर कंस पर उसका एकाधिकार मानकर स्वयं अस्ति अपनी ही उलझनों में खोई रहती है, जबकि अस्ति वास्तव में प्राप्ति की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर भी थी और केलिक्रीड़ा में भी अधिक पटु थी। कंस को वह पहले तो मिलती ही नहीं और जब मिलती भी है तो प्राय: उसको अपनी बहन प्राप्ति की ओर ही जाने को उकसाकर वह स्वयं न जाने क्यों कहीं और चली जाती है। प्राप्ति महाराज कंस का भरपूर सत्कार करती, लेकिन पति से अपनी अग्रजा के बारे में सुनकर अकसर हँसती-हँसती कहती, 'उनका रूप जितना ही मोहक है, वह उतनी ही कठोर हैं। उनको पिघलाने के लिए महाराज को बहुत कुछ करना होगा?'

क्या करना होगा? किस तरह से पिघलेंगी महारानी अस्ति? यह पूछने पर रानी प्राप्ति हँसकर कहती, 'सो तो कोई पुरुष ही बता सकता है, महाराज। आप नहीं जानेंगे तो फिर महारानी के विषय में और कोई कैसे जान सकता है....और वह भी मुझ जैसी साधारण स्त्री!' वह खिलखिला उठती।

समय बीतता जा रहा था और अस्ति जैसे समय के साथ-साथ कंस के लिए और दुर्लभ होती जा रही थी। संभवत: इसी कारण वह उतनी ही अधिक कमनीय भी लगने लगी थी। ऐसा नहीं कि प्राप्ति कुछ कम प्रतीत होती हो। वास्तविकता तो यह है कि कंस को प्राप्ति ने ऐसा पालतू जीव बना लिया था कि कितनी ही बार उसको छोड़कर कंस राजसभा तक जाने से भी हिचक जाता था।

प्राप्ति को इसके लिए स्वयं अस्ति की ओर से उकसावा मिलता रहता है— यह तथ्य महाराज कंस नहीं जानते!

मगध की ओर से आया योद्धा विरुद्धक इस समय मथुरा की सेना का प्रमुख सेनापति था। मथुरा के यादव सैनिकों को उसका आचार-व्यवहार अच्छा नहीं लगता था, किंतु उनके वश में था ही क्या? सब जानते थे कि मगध की ओर से आए योद्धाओं पर महाराज कंस का भी उतना अधिकार नहीं था। वे तो बस, महारानी अस्ति के संकेत पर चलते थे। कंस ने एक बार प्राप्ति से कहा भी था, ''रानी अस्ति ने तो मेरा आधा भार उठा लिया है, नहीं तो मुझे तुम जैसी अपरूपा सुंदरी को उन्मुक्त होकर भोगने का अवसर ही कहां मिल पाता! किंतु तुम्हारी अग्रजा महारानी अस्ति को क्या कभी काम-देवता की ओर से ऐसा आदेश नहीं मिलता कि 'तुम्हें भी अपने महाबली पति कंस के पौरुष से जीवन

का सुख पाने का अधिकार है'....''

प्राप्ति क्या उत्तर देती? उसको तो इतना ही पता था कि महारानी अस्ति यहां जो करने आई हैं, वही कर रही हैं। मथुरा के यादवगण को भी मगध के अधीन लाने के बाद ही तो समग्र उत्तरापथ पर महाराज जरासंध की दिग्विजय की कामना पूरी होगी। महारानी अस्ति इन दिनों एकाग्र मन से मगध की दिग्विजय की भूमिका तैयार कर रही हैं; और यहीं मगध की सबसे बड़ी सेवा है! अस्ति की मादक काया कभी प्यासी होती है तो भी मगध की विजय की कामना से ही अपने लिए तृप्ति खोजती है! उसका आयोजन करने वाले कोई कम तो नहीं हैं कि महारानी को राजा कंस का अवलंब लेने की ऐसी बाध्यता होती....

किंतु यह बात प्राप्ति ने कभी कंस से कही नहीं। वह जानती ही है कि अस्ति ने किस-किस प्रकार से मथुरा को वश में करने के लिए अपने तन का भी भरपूर उपयोग किया है। कहीं प्राप्ति को यह सब करना पड़ता तो वह संभवत: विचलित होकर मगध लौट जाती। ऐसे तो मगध के संस्कार उसको प्राय: लुब्ध कर लेते, किंतु न जाने कंस में ऐसा क्या था कि प्राप्ति मन ही मन पति को प्यार करने लगी थी। एकाध बार तो उसका मन होता कि पति से कह दे—वह स्वयं अपने राजकाज के प्रति सतर्क रहा करे और अपने को मगध का अधीनस्थ सामंत मात्र न बनने दे। किंतु इसका अर्थ तो यही होता कि वह अपने पिता और अग्रजा अस्ति दोनों से ही विश्वासघात कर रही है....

कंस को मन से चाहती थी प्राप्ति, किंतु अपने-आपको भी तो वह कम नहीं चाहती। महारानी अस्ति को यदि इस बात की भनक भी मिल जाती कि प्राप्ति उससे छल करती है तो....प्राप्ति कल्पना कर पाती है कि उसको किस दारुण नरक में फेंक दिया जाता। अस्ति की शक्ति में अब तो मथुरा का एक-एक योद्धा तक बंध चुका है। अस्ति चाहे तो उसे स्वयं महाराज तक को किसी भी गर्त तक पहुंचाते देर नहीं लगेगी। अस्ति साकार महत्त्वाकांक्षा है और यह महत्त्वाकांक्षा का बीज उसके मन में कभी स्वयं पिता....मगधपति ने ही रोपा था! वे दोनों कंस की महारानी बनाकर यहां भेजी ही मगध की सत्ता के विस्तार के लिए गई हैं। अब इससे डिगने का अर्थ था, अपने को गर्हित मृत्यु का ग्रास बना देना, जो प्राप्ति करना नहीं चाहती थी। प्राप्ति को जीवन का ऐसा मादक रस मिल गया था कि उसके लोभ में वह कितना भी बड़ा बलिदान करने को तैयार थी।

फिर अस्ति जो कुछ कर रही है, उससे और तो कोई इतनी बड़ी हानि होने की नहीं है। मगधपति के अधीन तो ऐसे भी होना ही है यादवों को। कंस

तो प्राप्ति का रहेगा ही, चाहे वह मगध का सामंत हो जाए, चाहे मथुरा का एकछत्र महाराज रहे। इसी कारण प्राप्ति ने कभी अस्ति के कार्यों में बाधा नहीं डाली और स्वयं भी उसका आदेश मानती रही। अस्ति ने कभी उससे पति का प्यार तो छीनने की चेष्टा की नहीं। उलटे वह तो जब-तब प्राप्ति को यही याद दिलाती रहती, ''महाराज को एक पल के लिए भी एकाकी बैठकर इधर-उधर की बातों में न उलझने दो। महाराज को यदि समय से पहले ही आभास मिल गया कि हमने यहां आकर किस प्रकार अपना जाल बिछा दिया है तो कौन जाने, वह विग्रह पर ही उतर आने की सोचने लगें। ऐसे में हम तो नहीं चाहेंगे कि हमारे पति पर महाराज जरासंध का कोप टूटे। हम तो मगधराज की प्रिय दुहिताएं हैं न! हमने अपने पिता के हित के लिए यदि यादवों को विवश कर दिया तो हमें मगधपति से मुंहमांगा उपहार मिलेगा। तब हम दोनों उनसे अपने पति का कल्याण और उनके प्रति विशेष सम्मान का आग्रह करके महाराज कंस को अपने प्रति आसक्त कर लेंगे....

''मगधपति को पराभूत करने वाले योद्धा ने आज तक धरती पर जन्म ही नहीं लिया। फिर हम अपने प्रियतम महाराज कंस के समक्ष हमारे महाबली पिता से टकराने की स्थिति ही क्यों आने दें? कैसे भी हो, तुम तो महाराज कंस को अपने रूप-यौवन के जाल में बांधकर उनका मनोरंजन कर रही हो तो उन पर और साथ-साथ स्वयं हम दोनों पर उपकार ही कर रही हो। महाराज को तुम अपने रूप का अमृत पिलाती रहो और स्वयं भी तृप्ति पाती रहो। समय आने पर तुमको मेरी ओर से भी मुंहमांगा पुरस्कार अवश्य मिलेगा।'' महारानी अस्ति खिलकर हँसने लगी थी।

उस समय प्राप्ति को लगा कि अस्ति सचमुच उससे कहीं अधिक रूपवती है और यदि उसने महाराज कंस को अपनी ओर से प्राप्ति को सौंप रखा है तो यह उसका अपनी अनुजा के प्रति नेह ही है। नहीं तो वह जब चाहती, कंस को अपनाकर प्राप्ति को राजभवन की दासी भी बना सकती थी!

किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्राप्ति संभवतः अपनी अग्रजा से भयभीत रहती थी—बाल्यकाल से ही उसके मन पर अस्ति सदा छाई रही है; इसी कारण अस्ति उसे आज भी हर क्षेत्र में अपने से कहीं बढ़-चढ़कर जान पड़ती है। वह स्वयं कितनी सुंदर है और किस सीमा तक पुरुषों को अपने वश में करके बांधे रह सकती है, इसका साक्ष्य तो स्वयं मथुरापति कंस ही दे सकते हैं। लेकिन अवश-सी होकर अस्ति के संकेतों पर नाचने को विवश प्राप्ति को इस वास्तविकता का आभास ही नहीं है। वह अपने में ही खोई, कितनी ही बार मन ही मन कुंठित-आशंकित-सी, उदास, सोचती रह जाती है....

उस दिन कंस के मन में न जाने क्या आया कि उसने महारानी अस्ति की बात नहीं मानी। आखिर कंस पुरुष था और मगधराज ने स्वयं ही अपनी सुंदरी कन्याओं के लिए उसका वरण किया था! कंस ने तो उनसे दान नहीं मांगा था। यद्यपि चेदिराज दमघोष से उसने आग्रह करने की सोच ली थी कि वह मगधराज से अपनी कन्याओं का विवाह कंस से करने का प्रस्ताव उसकी ओर से रखकर उस पर अनुग्रह करें। किंतु हुआ तो कुछ और ही था! कंस को आज भी याद है....

कितना विचित्र संयोग था कि जब वह चेदिराज दमघोष से बात करने के लिए पहुंचा तो राजा दमघोष उसी की प्रतीक्षा करते हुए थके-से बैठे थे। कंस उनको उद्विग्न देखकर उदास हो गया था। ऐसे में अपनी ओर से इतनी बड़ी और लगभग असंभव-प्राय बात कहकर वह अपना अपमान नहीं करवाना चाहता था। कंस स्वयं ही विचलित हो रहा था। रात-भर उसने इस विषय में ही सोचते हुए पलक झपकाई तक नहीं थी, किंतु चेदिराज की मन:स्थिति भांपकर उसको लगा कि वह कह नहीं पाएगा। और एक बार जब मन हार ही गया और उसको निश्चय-सा हो गया था। वह राजा दमघोष से ऐसी बात नहीं कह पा रहा है तो यह भी निश्चित-सा हो गया कि वह जो सपना देख रहा था, वह कभी साकार नहीं हो सकता। एकांत पाने के लिए कंस को उठकर भाग जाने का मन होने लगा था।

किंतु स्वयं राजा दमघोष उस समय उसका ऐसा आदर-सत्कार कर रहे थे मानो कल और आज के बीच वह कुछ और हो गया हो। ऐसा नहीं कि चेदिराज ने पहले कभी उसका आदर-सत्कार न किया हो। कंस यादवगण के महानायक उग्रसेन का पुत्र था और चेदिराज यादवों के जामाता थे—वृष्णिकुल के राजा वसु शूरसेन की कांतिमती पुत्री वसुदेव की भगिनी श्रुतश्रवा का विवाह उनके साथ किया गया था। इससे यादवों को भी दक्षिण में अपनी शक्ति का एक और केंद्र मिल गया था। इस ओर पहले से ही यादवकुल के ही कई राजा राज्य कर रहे थे, किंतु समय के साथ यादवगण के मूल कुल से उनके संबंध अब लगभग भंग ही हो चुके थे। वे माहिष्मती, करवीरपुर, क्रौंचपुरी आदि राजधानियों में रहकर अब एकछत्र राजा के रूप में राज करते थे। उनको यादवगण के साथ मिलने की कोई आकांक्षा नहीं थी। पद्मावत जनपद और वनवासी जनपद के रूप में प्रसिद्ध राज्य अपने-अपने क्षेत्र में बहुमूल्य रत्नों के व्यापार आदि के लिए भी विख्यात थे। इसी प्रकार आनर्त राज्य का सुराष्ट्र जनपद भी विख्यात था और रैवतक पर्वत के निकट ही अपनी राजधानी गिरिपुरी में रहकर जो राजा राज्य करते थे, वे भी तो यादव थे! उनके ये राज्य

यादवकुल के पूर्वजों द्वारा ही बसाए गए थे। चेदि की सीमा को छूता हुआ नर्मदा-तट का विशाल जनपद भी तो यादवकुल का ही है। विंध्यपर्वत की श्रेणियों के बीच बसे उस जनपद की राजधानी लोकविख्यात नगरी 'माहिष्मती' है। इसके अतिरिक्त देवताओं की पुरी की-सी शोभा वाली नगरी 'पुरिका' भी नर्मदा के तट पर उनके अधीन ही है। ऐसे में दक्षिण के प्रमुख पथ पर स्थित चेदि राज्य से संबंध बनाना यादवों के लिए उत्तम ही था।

किंतु मगधपति जरासंध की निरंतर बढ़ती महाशक्ति के सामने प्रतिहत दक्षिण-पश्चिम के अधिकांश राजा जरासंध की अधीनता मानने लगे थे। जो भी हो, उस दिन जरासंध की रूपवती दुहिताओं से मिलने के बाद, यादवों के विरोधी जरासंध के साथ चेदिराज की मैत्री आज कंस को उतनी खराब नहीं लग रही थी। उसका सबसे बड़ा कारण मात्र यही था कि राजा जरासंध के उस विशेष प्रस्ताव ने कंस के मन में एक नई आकांक्षा जगा दी थी!

अब दक्षिण के अनेक यादव राजाओं के बारे में सोचकर कंस को लग रहा था कि वास्तव में गण की अपेक्षा एकतंत्र राज-व्यवस्था कहीं अधिक शक्ति और सामर्थ्य दे सकती है। उसने मन ही मन सोचा था कि मथुरा लौटकर वह अपने पिता से और अन्य कुलों के प्रमुखों से बात करेगा। जरासंध का प्रस्ताव उसको मोहित कर रहा था। कंस स्वयं बलशाली योद्धा था और उसकी महत्त्वाकांक्षा जरासंध द्वारा उद्दीप्त करने पर धधक-सी उठी थी। वह स्वप्न देखने लगा कि वह मथुरा का एकछत्र राजा बनकर स्वयं दिग्विजय करने निकला है और एक के बाद एक राज्यों को पराभूत करता हुआ अनेक राजाओं से अपने चरणों की पूजा करवा रहा है। चेदि में उस मंत्रणा-गोष्ठी की बातें भी याद आती हैं....आंखों के सामने स्पष्ट चित्र-सा दिखता है....

वह भव्य कक्ष! कुछ ही दूरी पर बैठी राजसी अलंकारों से सुसज्जित वही सुंदरियां परस्पर कलरव कर रही थीं....

"....यह उन्नत मस्तक वास्तव में किरीट धारण करने योग्य है....और ये बाहुदंड...." उस सुंदरी नवयौवना ने कहा था।

और उसके निकट ही खड़ी सुंदर नयनों वाली उस कामिनी ने पलकें झपझपाकर कहा था, "कामिनियों को अपने वक्ष पर बांधने के लिए, क्यों दीदी?" कहती-कहती वह सहसा ही खिलखिलाकर हँसी थी।

कंस ने अपने को बड़ी कठिनाई से नियंत्रित कर लिया था। वह अपलक उन दोनों रूपवती युवतियों की ओर निहारता रह गया था। क्या वे जानती हैं कि उनकी बातें कंस के कानों तक पहुंच रही होंगी? निश्चय ही! कंस को लगा कि यह सब वे दोनों कंस को मुग्ध करने के लिए ही कह रही होंगी।

किंतु मगध की राजदुहिताओं के मुख से ऐसी उच्छृंखलता-भरी बातें सुनकर कंस को अचरज भी हो रहा था!

उसी समय स्वयं मगधपति जरासंध कक्ष में आ गए थे। मगधपति ने ठीक वही बातें अपने शब्दों में कही थीं। सुनकर कंस बड़ी देर तक इसी ऊहापोह में पड़ा रहा— क्या मगध की उन कामिनियों ने अपने पिता से पहले ही उसके विषय में चर्चा की थी? क्या उनके पिता ने ही उनसे कहा होगा कि कंस को वह मथुरा के राजा के रूप में देखने को उत्सुक हैं?

संयोग का कंस के साथ ऐसा सहयोग तो कभी न हुआ था! वह तो चेदिराज से जो कुछ कहने की सोचकर गया था उसे बिना कहे ही वहां से चले जाने को आतुर हो गया था, किंतु चेदिराज ने सहसा ही कहा था, ''यदुनंदन, तुम कितने भाग्यशाली हो कि जिन मागध राजदुहिताओं को पाने के लिए आज लोक के कितने ही राजा और राजपुत्र तथा महान् योद्धा भी उत्सुक रहते हैं, उनके लिए स्वयं मगधपति ने तुम्हारा वरण कर लिया है!''

अविश्वास से कंस की आंखें मानो अधर में टंगी-सी रह गई थीं। वह एकटक चेदिराज दमघोष की ओर देखता रहा। फिर अचकचाकर बोला, ''आप हमसे वय में कितने बड़े हैं, आर्य....तो भी आप न जाने क्या सोचकर मेरा ऐसा उपहास कर रहे हैं।''

चेदिराज ने सहसा विवर्ण होकर कहा, ''क्या कहते हो, राजपुत्र? मगध की राजदुहिताओं के विषय में इस प्रकार हँसी करने का दुस्साहस कौन कर सकता है! मगधपति स्वयं ही तुमसे बात करेंगे।''

''मगधपति?'' कंस अवाक् रह गया।

दमघोष ने कहा, ''हां, महाराज जरासंध मुझसे कह चुके हैं! उनकी आज्ञा से ही आज मैं अपने राजप्रासाद में तुमको और मगध की दोनों राजदुहिताओं को मिलने का अवसर उपलब्ध करा रहा हूं....''

कंस पल-भर रोमांचित-सा होकर उनकी ओर देखता रहा, फिर बोला, ''ऐसा क्यों, आर्य?''

''राजदुहिताओं की यही इच्छा है, राजपुत्र। वे तुमसे मिल लेंगी, उसके बाद ही मगधपति जरासंध अपना निर्णय सुनाएंगे।''

कंस ने आतुर होकर कहा, ''महाराज, आप मुझसे ज्येष्ठ हैं और हमारे संबंधी भी हैं। आप ही इस विषय में मेरे वरिष्ठ का पद ग्रहण करके जो भी उचित लगे, निश्चय करें।''

राजा दमघोष हँसकर बोले, ''हमको तो कुछ भी निश्चय नहीं करना है। और जो निश्चय होना है, वह तो एक प्रकार से हो ही गया है। मगधपति के

मन में जो विचार आ जाए, वही 'निश्चय' है। फिर मगध की राजकन्याओं के विषय में कोई और क्या निश्चय कर सकता है?''

कंस ने उद्वेलित होकर कहा, ''यदि सचमुच सब कुछ निश्चित हो ही चुका है तो फिर यह परीक्षा कैसी, आर्य?''

''परीक्षा तो नहीं, भद्र....किंतु मगध की राजदुहिताएं किसी कारण तुमसे मिलने का आग्रह कर बैठीं। उनकी बात टाली तो नहीं जा सकती न!''

कंस ने चौंककर पूछा, ''तो क्या मात्र राजदुहिताओं की इच्छा से ही आर्य यह व्यवस्था कर रहे हैं? कहीं मगधराज को इसमें कोई आपत्ति तो नहीं होगी।''

''मैंने कहा तो कि यह सब मगधपति की इच्छा से ही किया जा रहा है, वत्स! उनकी ही आज्ञा है कि तुमको एक बार राजकन्याओं से मिलने का अवसर दिया जाए। उसके बाद महाराज जरासंध तुमसे स्वयं बात करेंगे।''

कंस पल-भर सोचता रहा, फिर बोला, ''आर्य, आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूं। धृष्टता क्षमा करें।''

''आदेश दो, राजपुत्र!''

''आदेश कैसा, आर्य....मैं तो कनिष्ठ हूं। मेरा एक आग्रह मात्र है, यदि आपकी आज्ञा हो तो....''

दमघोष ने हँसकर कहा, ''एक ही बात है, राजपुत्र! अब तो तुम्हारा आग्रह हम लोगों के लिए आदेश ही होगा। कहो....''

मन ही मन कंस को लगा कि 'अब तो' का आशय निश्चय ही अत्यंत गूढ़ होगा। किंतु उस समय तर्क नहीं करके बोला, ''महाराज की ज्येष्ठ कन्या तो संभवतः वही है जो कल वार्ता के समय कुरुओं के विषय में कुछ विचित्र ही बात कर रही थी?''

''सावधान, राजपुत्र! महाराजपुत्री अस्ति महाराज जरासंध की सबसे प्रिय संतान हैं! वह राजनीति में कुशल हैं और स्वयं मगधराज उनकी नीति का आदर करते हैं। ज्येष्ठ राजकन्या की बात को 'विचित्र' अथवा 'अनर्गल' कहना दंडनीय अपराध है!''

कंस हिचकिचाकर बोला, ''नहीं, नहीं, मेरा ऐसा कोई आशय नहीं था, आर्य। मैं तो केवल यह कह रहा था कि सुना था....ज्येष्ठ राजकन्या अस्ति तो चेदि के अंतःपुर में ही आने वाली थीं!''

चेदिराज आहत लगे, फिर अपने को संयत करके मलिन-सी हँसी हँसते हुए बोले, ''वह तो अतीत की बात हो गई, राजपुत्र!'' पल-भर अटककर उन्होंने कहा, ''स्वयं राजकन्या अस्ति ने पिता की सहमति से तुम्हारा वरण

किया है, वत्स! तुम निश्चिंत रहो। दोनों वधुओं को पाकर तुम परम सुखी अनुभव करोगे।'' और वह उठ खड़े हुए थे।

यह मानो वार्ता समाप्त होने का संकेत था। कंस भी उठ खड़ा हुआ। वह मन ही मन डगमगा-सा रहा था—'दोनों वधुओं को पाकर....' दोनों?

द्वार पर प्रतीक्षा करती सुंदर युवती राजा दमघोष के संकेत पर कंस को अतिथिशाला का मार्ग दिखाती हुई आगे-आगे चलती रही। कंस कब वहां से अपने कक्ष में पहुंच गया था, उसे पता नहीं। वह अब तक मन ही मन राजा दमघोष के उसी वाक्य में उलझा था—'दोनों वधुओं को पाकर....' यह कैसा चमत्कार है?

''कुछ और आज्ञा है, प्रभु?'' निकट ही नतशीश खड़ी सुंदरी ने मधुर कंठ से पूछा तो कंस की चेतना लौटी। उसने एकाएक अपने कंठ से मूल्यवान रत्नहार उतारकर उसकी ओर फेंक दिया। बोला, ''सुख अनुभव करो, सुंदरी।''

दासी ने हार को मस्तक से लगाया और अपनी समूची देह को लहराकर आभार जताने के बाद प्रणाम करके चली गई।

कंस पर तो जैसे मदिरा का आवेश छा गया। वह बैठकर दिवास्वप्नों में खो गया था।

कंस ने चेदि से आने के बाद अपने पिता को वहां का सारा समाचार सुना दिया। मगधराज की ओर से कंस का वरण अपनी दोनों दुहिताओं के लिए किया गया था, यह सूचना तो यादवगण में हड़कंप मचाने वाली थी। यादवसभा में इस पर गहन मंत्रणा हुई। उस समय किसी ने खुलकर विरोध नहीं किया। सबको मानो भय लग रहा था कि यह विवाह-संबंध यादवों के लिए शुभ नहीं होगा, किंतु उसका विरोध करना भी मानो समय से पहले ही अशुभ को आमंत्रित करना था।

कंस के साथ ही साथ चेदिराज दमघोष का दूत भी उसकी ओर से पत्र और संवाद लेकर आया था। उन्होंने यादवों के हितैषी के रूप में जरासंध के निश्चय से उन्हें अवगत कराया था और अपनी ओर से यादवगण को बधाई दी थी....

ग्यारह

कुछ दिनों से कंस को अनेक ऐसी सूचनाएं मिलने लगी थीं कि वह चकित-सा होकर सोचता ही रह जाता था। एक दिन उसे अचानक ही भनक मिली कि

महारानी अस्ति ने व्रज से आए गोपों को अनेक बहुमूल्य उपहार दिलवाए थे। वह समझ नहीं पाया कि गोपों के प्रति महारानी अस्ति में ऐसा अनुराग किस कारण उमग आया होगा! प्राप्ति की दासी मालिनी ने यह सूचना महाराज तक पहुंचाई थी। कंस जिस समय दासी मालिनी से बात कर रहा था, उस समय स्वयं प्राप्ति भी वहीं थी। उससे इस तरह की बातों से अरुचि-सी होती थी। पिछले कुछ समय से महाराज न जाने किस कारण अचानक ही गोपों की ओर इतना अधिक ध्यान देने लगे थे। प्राप्ति को तो यह भी अच्छा नहीं लग था कि महाराज स्वयं उसकी ही दासी से महारानी अस्ति के बारे में इस तरह की पूछताछ करें। दासी मालिनी ने तो महारानी द्वारा गोपों को उपहार देने की बात रानी प्राप्ति से ऐसे ही कर दी थी। उसको कल्पना तक नहीं थी कि रानी प्राप्ति इस बात को कोई विशेष महत्त्व देकर महाराज से कह देंगी और फिर महाराज उससे ऐसे-ऐसे प्रश्न करेंगे। वह अब मन ही मन डर रही थी कि कहीं महारानी ऐसी अप्रासंगिक बात करने के अपराध में उसको दंड न दें। किंतु उसको यह सहारा था कि उसने तो रानी प्राप्ति को सुखी करने के लिए यह संवाद सहज ही दिया था। महाराज से तो यह बात स्वयं राजरानी प्राप्ति ने ही कही थी। फिर वह ठहरी दासी, अतः महाराज के प्रश्नों का उत्तर तो देना ही था....

लेकिन कंस ने इस बात को ऐसे ही नहीं जाने दिया। वह इस विषय में कुरेद-कुरेदकर न जाने क्या जानना चाहता था। यहां तक कि इस संबंध में कंस मंत्री अक्रूर के साथ भी कोई दो प्रहर तक विस्तार से बात करता रहा।

अक्रूर को लग तो गया कि किसी बात से कंस को शंका हो गई है, लेकिन किस बात से? और शंका किस विषय में? यह स्वयं अक्रूर भी नहीं समझ पाए।

तो भी उनको लगा कि उस रात गोपांगनाओं का नृत्य-समारोह करने की जो व्यवस्था की गई थी, हो न हो, कंस को उसी से संदेह हो रहा होगा। लेकिन संदेह किस बात पर?

अक्रूर ने अपनी ओर से तो हर प्रकार महाराज कंस के मुख से ही यह रहस्य निकलवाने की चेष्टा कर ली, तो भी महाराज कंस तो अंततः महाराज ही थे! उनसे ऐसा प्रश्न तो नहीं किया जा सकता था कि महाराज को चिंता किस बात पर हो रही है? पहली बार अक्रूर को लगा कि विशेष उत्साह में आकर उस रात महाराज वसुदेव से देवी रोहिणी की भेंट कराने के लिए वह आयोजन न किया गया होता तो अच्छा रहता। कंस को कहीं ऐसा ही कुछ संदेह तो नहीं हो रहा है? किंतु इसका उत्तर दे तो कौन दे? कैसे पता लग सकता है कि कंस

के मन में क्या है?

तो भी अक्रूर ने तत्काल इस विषय में अपने चरों द्वारा वसुदेव तथा वृष्णिकुल के योद्धाओं को सतर्क कर दिया। उन्होंने चेतावनी दी थी कि किसी स्थिति में गोकुल के गोपों के बारे में विशेष चर्चा न होने पाए। और यदि कंस की ओर से कोई प्रश्न किया ही जाए तो उसका उत्तर देते समय ऐसा ही जताया जाए कि गोपों अथवा नृत्योत्सव के विषय में हमें कोई विशेष जानकारी नहीं—मंत्री अक्रूर ने हमें तो सूचना तक नहीं दी थी....

लेकिन इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। जिस प्रकार कंस के मन में अचानक आशंका उत्पन्न हुई थी, अथवा उसे गोपों के विषय में बात करने की जो सनक अकस्मात आ गई थी, वह उसी प्रकार अचानक ही बिला भी गई थी।

समय बीतता रहा। फिर वैसी कोई बात नहीं उठी।

अक्रूर ने एक दिन विचित्र-सा समाचार सुना कि कंस के प्रिय अनुचर प्रतिदाह की पत्नी सुंदरी अपने किसी संबंधी के यहां गोकुल गई थी। और वहां स्वयं गोप-प्रमुख नंद के भवन पर सहसा विचित्र ढंग से उसका देहांत हो गया।

''पर सुंदरी के गोकुल जाने का क्या प्रयोजन था? और नंद के यहां कैसे पहुंच गई थी वह?''

बहुत सोचने पर भी उसकी यात्रा का कोई प्रयोजन समझ में नहीं आ रहा था। अंत तक अक्रूर ने अनुभव किया कि वह गोपों का अथवा व्रज का नाम आते ही प्रायः आतुर हो जाते हैं। पिछले वर्ष गोपों के मथुरा आने पर गुप्त रूप से जो कुछ किया गया था, वास्तव में इस व्यवहार के पीछे वही रहस्य है। उन्होंने सोच लिया कि अब सावधान रहेंगे। न जाने किस कारण किसी बात की चर्चा होती हो—वे इसी प्रकार चौंकते रहे तो अपने मन का चोर ही सारे भेद खोल देगा।

लेकिन शीघ्र ही पता लग गया कि जो हो रहा था, वह न तो शंका मात्र है, न निरर्थक ही। कंस को गोपों पर सचमुच गहरा संदेह हो ही गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि गोपबालाओं के नृत्य-समारोह के अवसर पर अक्रूर द्वारा वसुदेव का रोहिणी से मिलन कराने वाला रहस्य किसी तरह से कंस तक पहुंच गया हो! फिर वही बात मन में कसक उठी।

एक दिन कंस ने अक्रूर को एकांत में बुलाकर कहा, ''आपने तो अपने कुल को धन्य कर दिया! आप जैसा नीतिज्ञ और उदार पुत्र पाकर यदुनंदन श्वफल्क और काशीराज की पुत्री देवी गांदिनी वास्तव में धन्य हैं! आप तो जानते ही हैं कि इस समूचे यादवकुल में मात्र आप पर ही मेरा अटल विश्वास

है। आपने ही यदि हमारे साथ छल करने की सोच ली तो हमारा राजपाट सब नष्ट हो जाएगा।''

अक्रूर आज कंस से अपनी स्तुति और फिर दीन वचन सुनकर मन में कांप उठे। कहीं कंस को सचमुच कुछ पता तो नहीं लग गया जो वह आज ऐसी बातें कर रहा है? बोले, ''महाराज! आपके इस विशाल राज्य का आधार तो आपका अपना पराक्रम और राजधर्म है! हम तो आपके निष्ठावान सेवकमात्र हैं। हम आपसे छल करके अपने लिए ही गर्त काहे को तैयार करने लगे? आपने मेरे विषय में आज यह कैसी बात कही....मैं तो विकल होकर अब राजकाज से ही अपने को अलग कर देने की सोच रहा हूं....''

''नहीं, नहीं! श्वफल्कनंदन, आप जैसे सुयोग्य मंत्री से ही तो हमारा राज्य इतना सुदृढ़ है। सच तो यही है कि आपने ही अपने कुल की शक्ति का सदुपयोग करके लोक में हमारी कीर्ति का विस्तार किया है। महारानी अस्ति को भी आप पर ही विश्वास है—केवल आप पर। वह तो कहती हैं कि 'अक्रूर जैसा एक मंत्री ही मथुरा में हमारी सारी शक्ति और सामर्थ्य का मूल आधार है। आप अक्रूर के लिए वह सब कुछ दीजिए जो ऐसे विश्वसनीय मंत्री को मिलना चाहिए।' ''

''आपकी और महारानी की कृपा से मेरे पास सब कुछ तो है! किसी भी पदार्थ का अभाव नहीं!''

अक्रूर ने भांप लिया कि कंस अवश्य आज कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। चतुराई से बोले, ''यह जो भी है, सब आपका ही तो दिया हुआ है, महाराज। मुझे तो बस, आपका यह उदार विश्वास मिलता रहे तो मैं हर प्रकार से समर्थ हूं।''

दूसरे ही पल, महारानी अस्ति की भी स्तुति आवश्यक समझकर अक्रूर ने कहा, ''और जहां महारानी अस्ति की-सी उदार राजमहिषी हों, उस राज्य की प्रजा को तो ऐसे ही सारे सुख उपलब्ध रहते हैं। मैं तो उस दिन महारानी द्वारा गोपबालाओं को दिए गए उपहारों की सोचता हूं तो गर्वोन्नत होकर विचार करता हूं—महारानी ने उन दीन-हीन गोपों पर जो अनुकंपा की थी, उसी के कारण केवल एक ही वर्ष बाद हमारे गोष्ठों से चार-गुना गोधन उपलब्ध होने लगा है! महाराज को तो महारानी से ज्ञात हुआ ही होगा कि गोपों ने इस वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा दोगुनी धनराशि अर्जित करके यहां राजकर के रूप में भेजी है....''

अवसर मिला तो अक्रूर ने बड़ी कुशलता के साथ अपनी ओर से ही गोपों की बात उठाकर आज अपनी शंका का समाधान कर लेने की ठान ली

थी। यद्यपि वह मन ही मन सशंक भी थे कि कहीं इसी बात से चिढ़कर कंस ने उनका इतने विस्तार से स्तुतिगान न किया हो। क्रूरतम दंड देने के पहले कंस प्राय: अपराधी की ऐसी ही स्तुति करके अपने दंड की नृशंसता को और भी दुस्सह बना देता था। उसके 'सत्कार' का अर्थ 'मृत्यु' ही हो तो आश्चर्य नहीं।

गोपों की चर्चा सुनकर पल-भर के लिए कंस चुप हो रहा, तो अक्रूर मन ही मन तन-से उठे। तो अवश्य वह इसी विषय में कुछ कहना चाहता होगा!

कुछ देर की चुप्पी के बाद कंस उत्तप्त कंठ से बोला, "अक्रूर, आज मैंने तुमको इसीलिए बुलवाया है! हमने सुना है कि हमारे राज्य में, हमारे ही गोष्ठों के बल पर जीवन-निर्वाह करने वाले इन तुच्छ गोपों ने अब हमसे घोर कपट-व्यवहार करना आरंभ कर दिया है।"

"क्या कहते हैं, महाराज?" अक्रूर ने चकित होकर कहा, "गोप और महाराज से छल-कपट! असंभव!"

कंस उनकी ओर गहरी दृष्टि से देखता रहा।

अक्रूर ने तत्काल सतर्क होकर कहा, "किंतु महाराज ऐसा कह रहे हैं तो कहीं न कहीं....अवश्य कुछ ऐसा रहस्यमय होगा, जो हम अज्ञानी व्यक्तियों की पकड़ में नहीं आया हो।"

कंस का अहं तृप्त-सा हुआ। बोला, "छल की माया तो छल से ही जानी जा सकती है, मंत्रिवर! और आपने छलविद्या की सदा अवहेलना ही की है।"

"महाराज...."

"मेरे चरों ने सूचना दी है कि आजकल गोकुल में गोपों के यहां नित्य ही कोई न कोई चमत्कार होता रहता है....तुमने सुना तो होगा कि हमारे प्रिय अनुचर प्रतिदाह की पत्नी सुंदरी यहां से गोकुल गई थी...."

अक्रूर ने कहा, "प्रतिदाह वही योद्धा तो जिसको स्वयं महाराज ने कुछ ही समय पहले कारावास से हटाकर यमुनाकूल की रक्षा के लिए नियुक्त किया है!"

"हां, उसी प्रतिदाह की पत्नी सुंदरी....वास्तव में नाम के अनुरूप ही अतिसुंदरी भी थी वह! और उसको लोक-लोक में भ्रमण करने का बड़ा ही उत्साह रहता था...."

"सुंदरी....वही तो महाराज, जिसके विषय में कहा जाता है कि वह मायाविनी है और शिशुओं को मुग्ध करने में समर्थ 'पूतना' ही है!" अक्रूर ने तत्काल अपनी भिज्ञता जताई। पूतना सुंदरी की अकालमृत्यु की सूचना आज ही उनको भी मिली थी और अब तक वह विस्तार से उसके विषय में सुनने का

अवसर नहीं पा सके थे।

यह संवाद स्वयं कंस के चर विभांड ने आकर दिया था।

प्रतिदाह अपनी पत्नी के साथ उसकी अनुजा के विवाह-समारोह में भाग लेने के बहाने व्रज की ओर गया था। संयोग से उस रात स्वयं विभांड व्रज में ही टिका था, जिस दिन पूतना की मृत्यु वाला कांड हुआ था! विभांड ने स्वयं भी अचरज के साथ बताया था कि उस दिन व्रजवासी किसी समारोह में मग्न थे।

नंद के भवन के सामने ही बने एक आयतन के प्रांगण में देवों के लिए यज्ञ हो रहा था। कहीं गोपबालाएं गीत-नृत्य में मग्न थीं तो कहीं सुगंधित भोजन बनाया जा रहा था। चारों ओर यज्ञधूम उठ रहा था। परिवेश में सुरभि लहरा रही थी। उसी समय एक सुंदरी वधू न जाने किस दिशा से आकर सहसा समारोह के बीच युवतियों की भीड़ में जा खड़ी हुई। ऐसे उत्सव-अनुष्ठान के अवसर पर किसी का आना-जाना नितांत सहज लगता था। अतः किसी ने उससे कोई बात नहीं पूछी। सबने उसका स्वागत ही किया। युवतियों में से एक चंचल-सी गोपिका उसका हाथ थामकर अपने साथ ही खींचती हुई वहां ले गई, जहां गोपबालाएं मस्त होकर नृत्य-गीत करने में तल्लीन थीं।

और कुछ ही पल में वह अनूठी सुंदरी भी गोपबालाओं के साथ उन्मुक्त होकर नाचने लगी। उसकी मादक छटा देखते ही बनती थी।

वह अत्यंत रूपवती रमणी सुंदर वस्त्राभूषणों से सजी-धजी गोपललनाओं के बीच लक्ष्मी की-सी शोभा पा रही थी—मल्लिका के सुरभित पुष्पों से आबद्ध केशबंध। कर्णकुंडलों के हिलने से उसके मोहक मुखमंडल पर बार-बार रत्नों की अनोखी कौंध-सी दमक उठती थी। अलकों से कुछ-कुछ आच्छादित उसका वदन और भी मोहक लगने लगता था। विशाल नितंबों तथा उन्नत कुचकलशों के कारण उसकी कटि लचक-लचक जाती थी। हाथों में कमल का एक विकसित पुष्प लिए वह मदमाती-सी मनोहर नृत्य करती रही।

कुछ ही देर में सभी गोपरमणियां उसके सम्मोहन में बंधी-सी थिरकती रहीं। उस समय उल्लास के उस समारोह में तल्लीन होकर हर कोई अपने को भूल-सा बैठा था।

नृत्य का वेग बढ़ता-बढ़ता ऐसी अवस्था तक पहुंच गया कि नर्तकियां अपने-आपको एकदम से तदाकार कर बैठीं। उनको अब न तो अपनी सुधि रह गई थी, न अपने साथ की अन्य नर्तकियों की ही। और न तो दर्शकों को ही उस मोहक परिवेश से अलग कुछ याद रह गया।

अनुकूल अवसर जानकर वह कमनीया रमणी कुछ डगमगाती-सी इस

प्रकार नंद के भवन में चली मानो वह स्वयं यशोदा से मिलने को उत्सुक हो। वह सीधे यशोदा के शयनकक्ष में पहुंच गई। वहीं पालने पर उनका पुत्र सो रहा था। पूतना सुंदरी उस सांवले-सलोने सुंदर शिशु को स्तब्ध-सी देखती रही फिर अचानक ही उसने उसे उठाकर अपनी बांहों में ले लिया और हिला-हिलाकर लोरियां गाने लगी, मानो उसको सुलाने की चेष्टा कर रही हो। ठीक उसी समय सहसा यशोदा अपने बेटे को देखने के लिए आ पहुंचीं। वह तो यह देखकर स्तंभित ही रह गईं कि कोई अपरिचिता वधू उनके बेटे को गोद में लिए खड़ी है। किंतु उस युवती की अनूठी छवि ने मानो पल-भर के लिए यशोदा को भी मुग्ध कर लिया। वास्तव में उसकी सुंदरता की आभा से चकित यशोदा उसको रोक नहीं सकीं।

वह युवती भी झिझकी नहीं, वरन् यशोदा की ओर प्रफुल्लित आंखों से देखकर ऐसी मोहिनी हँसी हँस दी कि विभोर यशोदा स्वयं उसके साथ हँस दीं।

उनको कल्पना तक नहीं हो सकती थी कि उनके नन्हे-से लाल को इस समय मोहिनी के वेश में स्वयं मृत्यु की वाहिनी पूतना ने अपनी विकराल बांहों में ले रखा है। यशोदा के देखते ही देखते सुंदरी ने सहसा मातृत्व की ममता-भरी दृष्टि से शिशु को निहारा फिर किंचित लज्जा से हँसती-हँसती अचानक ही अपने मादक-से दिखते, दूध से भरे हुए उन्नत स्तन को खोलकर उसने कृष्ण के होठों से लगा दिया।

यशोदा का हृदय अत्यंत उदार था और कृष्ण जैसा सलोना पुत्र पाने के बाद से तो और ही उदात्त भावना से उमड़ता रहता था। उनके मन में आया कि संभवतः यह युवती किसी कारण अपने उदर से जन्मे किसी लाल को मातृत्व की ममता से तृप्त करने का संतोष नहीं पा सकी हो, अतः कृष्ण की मोहिनी मूर्ति देखकर उसका जी उमड़ आया हो। वह मुग्ध दृष्टि से देखती रहीं। किंतु उनको आश्चर्य हुआ। ऐसे पलों में स्त्री के मुखमंडल पर जो तृप्ति और ममता की छवि होनी चाहिए, उसकी जगह इस रमणी के चेहरे पर कैसी विचित्र-सी भयानकता उभर आई थी! यशोदा विकल होकर स्तब्ध-सी ताकती ही रह गईं।

लेकिन दूसरे ही पल यशोदा को लगा जैसे वह युवती किसी घोर वेदना से पीड़ित हो रही हो। वह रह-रहकर कृष्ण का मुंह हटाने का प्रयास करती हुई घबराई-सी बोलने लगी, "बस, अब....अब छोड़ दे....अरे....हाय....छोड़, छोड़.... आह...." वह अकस्मात जोर-जोर से चीखने लगी और पूरी ताकत से कृष्ण को अपने स्तर से दूर करने की चेष्टा करती हुई कक्ष में इधर-उधर नाचती-सी रही। फिर हाय-हाय करती हुई वह कक्ष से निकलकर बाहर की ओर भागी। पीछे-पीछे यशोदा अपने बेटे की रक्षा के लिए दौड़ रही थीं....

अपने चर विभांड को अचानक ही रोककर कंस ने उसको सीधी बात बताने को कहा।

विभांड ने सहमकर कहा, ''पूतना कुछ ही दूर जाने के बाद गिर पड़ी थी, महाराज! मैं स्वयं उस समारोह में अपनी पत्नी सहित नंद गोप का अतिथि था। मेरे साथ परिवार की और स्त्रियां भी थीं! मेरी दासियां भी थीं। मेरे साथ की स्त्रियां पूतना को सहायता देने की सोचकर उधर जाने को थीं, किंतु मैंने उनको रोक लिया, क्योंकि पूतना जिस प्रकार गिरी थी और जिस प्रकार अचानक ही उसका प्राणांतक पीड़ा से निकलता चीत्कार सहसा ही टूट गया था, उससे मुझे उसके जीवित होने की कोई आशा नहीं रह गई थी और यही हुआ भी....''

कंस ने और कुछ सुनने को आवश्यकता नहीं समझी। उसने तत्काल संकेत मात्र से विभांड को विदा कर दिया था....

बारह

तो भी स्वयं विभांड को विकलता-सी बनी रही। वह कुछ दिन तक मथुरा में ही रहा, लेकिन पूतना के पति प्रतिदाह से उसकी भेंट नहीं हो सकी।

अंत तक उसने फिर व्रज की ओर लौटने की सोच ली। तब एक रात सहसा ही उसको महारानी अस्ति की ओर से बुलावा आ गया।

विभांड को मगध से ही महारानी के प्रति गहरा लगाव था। वह यही चाहता था कि उसे महारानी अस्ति की ही सेवा करने का अवसर मिले तो वह अपना सारा जीवन आनंद के बीच काट सकेगा। उन दिनों मगध की महाराजपुत्री अस्ति उसको चाहती भी थीं। विभांड मगध में उनके प्रिय अनुचरों में से एक था, किंतु अस्ति द्वारा उसकी योग्यता की सराहना की गई तो महाराज कंस ने उसको विश्वस्त मानकर अपना चर बना लिया था।

महारानी अस्ति ने कहा था, ''तुम महाराज के निकट रहकर मेरे ही तो रहोगे न। मन लगाकर महाराज को प्रसन्न करो।''

किंतु महाराज की प्रसन्नता का कोई ओर-छोर नहीं मिलता था। वह किस समय किस बात से प्रसन्न हो जाएंगे और किस समय उसी बात पर किसी को सिंह के समने फेंकवा देंगे, इसका कोई पता नहीं था। महाराज की प्रसन्नता का सबसे सहज उपाय....

विभांड को यही लगता था कि महाराज की दृष्टि सीमा से दूर रहना ही उनकी प्रसन्नता बनाए रखने का उत्तम साधन है। और वह यही करता था। इसी

कारण जब कंस ने उसको गोकुल में नियुक्त कर दिया तो वहां जाने के बाद से वह स्वयं को सुखी अनुभव करता था। महाराज ने आज्ञा दी थी कि वहां रहकर वह विशेषकर व्रज पर दृष्टि रखे। महाराज को नंद पर किसी कारण संदेह था। कैसा संदेह? वह स्पष्ट तो कुछ नहीं कहते थे, किंतु महाराज की बातों से विभांड को जो लगता था, वह यही कि नंद और उनके व्रज में होने वाले हर कृत्य की जानकारी विभांड कंस को देता रहे, यही काम्य है। और विभांड को यह काम सरल लगता था। वह सहज ही गोपों का विश्वासपात्र बन गया था और अपनी स्त्रियों के साथ प्राय: उन लोगों के यहां जाता और उनका सत्कार पाता था। वह था तो मगध-वासी, फिर भी उसका व्यवहार ऐसा था कि उस पर किसी को संदेह नहीं होता था कि वह कंस की ओर से उनके भेद लेने के लिए ही नियुक्त किया गया था!

सुंदरी की रहस्यमय मृत्यु के विषय में सब कुछ सुनकर अक्रूर ने दिखावटी आवेग के साथ कंस को वचन दिया कि वह तत्काल इस विषय में खोज कराएंगे और महाराज को सूचित करेंगे। यदि प्रतिदाह की सुंदर पत्नी के साथ गोकुल में कोई छल किया गया होगा तो अपराधियों को कठोर से कठोर दंड दिया जाएगा।

कंस ने उन्हें जाने की अनुमति तो दे दी, किंतु उसकी कुंचित आंखों में जो दृष्टि थी, उससे अक्रूर को प्रतीति हो गई कि कंस को उन पर भी शंका है!

वह विचार-मग्न-से चले आए।

वह विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि वसुदेव के उस छोटे-से पुत्र ने इस प्रकार स्तनपान करते-करते ही उस पूतना सुंदरी का वध कर डाला होगा! यह कैसे संभव हो सकता है!

उस दिन जब मगधसम्राट् जरासंध की ओर से फिर से अपनी दोनों पुत्रियों अस्ति और प्राप्ति के लिए विपुल मात्रा में रत्नाभूषण आदि उपहार में आए तो उनके साथ ही तीस दास तथा राजा कंस के लिए सौ युवती दासियां भी उनके मनोरंजन के लिए अनुपम उपहार के रूप में आई थीं। उनमें से आधी तो यवन युवतियां थीं। यह यवन सुंदरियां मगधपति की सेवा में उनके नए मित्र सिंधु के उस पार के यवनराज की ओर से भेजी गई थीं।

महारानी अस्ति ने उस दिन स्वयं अनुपम शृंगार करके महाराज कंस को प्रसन्न करने के लिए अपने साथ ही मगध से आने वाली उन अतुलनीय 'उपहार सामग्रियों' को प्रस्तुत किया था। कंस ने उस संपदा को देखकर

निश्चय ही हर्ष प्रकट किया, किंतु उसको सबसे अधिक हर्ष तो महारानी अस्ति जैसी दुर्लभ सुंदरी को आज उस विश्वमोहिनी रूप में देखकर हो रहा था। बोला, ''हमारे लिए तो मगधपति ने मेरी याचना पर जो अन्यतम उपहार दिया है, उसी से मैं अपने जीवन को कृतार्थ अनुभव करता हूं। उससे अधिक तो मात्र एक ही सुंदरी और है जिसकी कामना रह जाती थी—अपनी उस अनुजा प्राप्ति को भी मेरे हृदय की रानी मेरे लिए अपने साथ ले ही आई थीं!''

आज महारानी अस्ति विशेष रूप से प्रसन्न प्रतीत होती थीं। उन्होंने तत्काल अपने बलशाली पति की भुजाओं में अपने को समर्पित करते हुए कहा, ''महाराज तो हमारी मानरक्षा के लिए ऐसा कहा ही करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम दोनों ने अपने महान् पिता के आशीर्वाद से ही महाराज जैसा लोकविख्यात पति प्राप्त करके अपने को धन्य किया है....प्राप्ति तो कहती ही रहती है कि यदि उस समय हमारे पूज्य तात ने करुषराज अथवा चेदिराज के अंत:पुर में ही हमको भी भेजने का निश्चय कर लिया होता तो क्या हमको मथुरा के इस भव्य प्रासाद में महारानी की गरिमा प्राप्त हो सकती थी कभी!''

कंस ने तो अपने को पहले ही अस्ति के चरणों में अनुरक्त कर रखा था। आज उसी दुर्लभ रमणीरत्न को सहसा अपनी बांहों में पाने के बाद तो वह सब कुछ भूल बैठा। बोला, ''महारानी को ऐसा कहकर मेरा मान तो बढ़ाना ही चाहिए, किंतु उस समय तो मैंने चेदिराज की बात से ही अपने को इस योग्य माना था कि मैं भी मगध की दुर्लभ रमणीरत्नों को पाने की कामना कर सकता हूं। मैंने तो उससे पहले कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मैं आर्यावर्त का सबसे भाग्यशाली युवक हूं जो महाराज जरासंध की कृपा से इस महानगरी का अधिपति बनूंगा और साथ ही मेरा भाग्य उपहार में सर्वश्रेष्ठ सुंदरियों को भी लाकर मेरी बांहों में समर्पित कर देगा। और अब तो मगधपति के प्रताप से कंस इस समूची पृथ्वी का पालन करने में समर्थ है।''

कामवती प्रिया को सामने पाने के बाद कंस अपने को तीनों लोकों की विजय करने में समर्थ अनुभव करने लगता था!

अस्ति ने कहा, ''महाबली मगधराज ने तो ऐसा ही दिग्विजयी जामाता पाने के लिए हम दोनों को अपने निकट सदा सुरक्षित रखा था। हमारी भी यही कामना रहती है कि हमारे महाराज अपने बल का प्रयोग करके समग्र पृथ्वी पर विजय प्राप्त करें।''

कंस ने पल-भर सोचा, फिर उत्साह के साथ बोला, ''यही होगा, महारानी। मेरे मित्रों की शक्ति का आधार तो हमारे पूज्य मगधराज की छाया ही है। हम इन तुच्छ यादवों को जरा शांत कर दें, तब देखना! हम किसी भी

पल मगधपति की इच्छा के अनुसार, निश्चय ही दिग्विजय के लिए अभियान करेंगे।''

अस्ति सहसा खिलखिलाकर हँसी तो उसकी उजली दंतावली दमक-दमक उठी। उसके रसीले लाल-लाल होठों के साथ उस जगमग हँसी की छटा मन को मोहित कर लेने वाली थी। किंतु उसकी हँसी कंस को उतनी उजली नहीं लगी। कंस को लगा, आज भी अस्ति की हँसी में उसकी वीरता की अवहेलना ही छिपी है। वह आंखें बचाकर दूसरी ओर देखने लगा।

अस्ति बोली, ''महाराज मथुरापति के जीवन की सबसे बड़ी अवधि तो लगता है, अपने कुल के विरोधी यादवों का दमन करने में ही बीत जाएगी—कम से कम उस समय मगधपति ने ऐसा नहीं सोचा होगा, नहीं तो....''

'नहीं तो उन्होंने अपनी पुत्रियों के लिए निश्चय ही कोई और समर्थ वर चुना होता जो उनकी इस विजय की कामना को तृप्त कर पाता!'

अस्ति की अधूरी बात कंस के मन में अपने-आप ही पूरी होकर उसको विदग्ध करने लगी।

इन दिनों कंस को अपनी महारानी से कितनी ही बार ऐसी ही व्यंग्योक्तियां सुनने को मिलती थीं। उसके लिए इससे बढ़कर अपमान की बात क्या हो सकती थी? उसकी इच्छा होती थी कि आज ही वह सबसे पहले मथुरा के अपने इस द्रोही यादवों को रौंद-कुचलकर ध्वस्त कर दे, जो उसका अन्न खाकर भी उसका विरोध करने के लिए ही जीवित रहते हैं।

किंतु उनको एक साथ ऐसे ही समाप्त कर देना इतना आसान तो नहीं है। अगर वह ऐसा कर पाता तो वर्षों पहले ही कर देता—जब उसने देवकी के विवाह के दिन ही वसुदेव तथा देवकी को कारागृह में डाल दिया था। उसी दिन यादवों के प्रमुखों की गुप्त सभा के विषय में उसके चरों ने गंभीर सूचनाएं दी थीं। कंस तन उठा था। इन वृष्णिवंशी यादवों से ही कंस को विशेष भय रहता था। उसने तो बहुत सोचकर इसी कारण अपने पितृव्य राजा देवक की पुत्रियों से वसुदेव का विवाह करके उन्हें अपने पक्ष में करने का निश्चय कर लिया था, किंतु काल की गति का आभास नहीं मिलता। स्वयं कंस को आज तक निश्चित रूप से पता नहीं—उस दिन न जाने किसने उसे ऐसी भयावनी चेतावनी दी थी कि तेरी इस भगिनी देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र ही तेरे विकट विरोधी बनकर तेरा वध करने का प्रयास कर सकते हैं। इन वृष्णियों का क्या विश्वास? उनके मन में तो आज तक, तुम्हारी इतनी शक्ति देखते हुए भी, तुमको राजा के रूप में स्वीकार करने की भावना नहीं दिखती!

और यह सत्य ही था। यादवों के आठ कुलों ने जब अपनी प्राचीन परंपरा

के अनुसार, यादवों का गणसंघ बनाकर अपना शासन-केंद्र मथुरा की समृद्ध धरती को ही निश्चित किया था, तब यह क्षेत्र—शूरसेन-मंडल—वृष्णियों के अधीन ही था। फिर भी उन्होंने अवसर आने पर भोजवंश के पराक्रमी योद्धा उग्रसेन को यादवगण के प्रमुख के पद पर आसीन होने दिया था। जब उस रूप में सभी यादव-प्रमुख वर्षों से कंस के पिता का शासन स्वीकार करते रहे हैं, तो फिर आज वे कंस को अपना शासक क्यों नहीं मानते? कंस को अपना यह प्रश्न सुलझने वाला नहीं लगता था। उसको तो यह विश्वास था कि अपनी ढलती वय में उसके पिता उग्रसेन ने यादवगण की शक्ति का ह्रास ही किया था। यह तो उस जैसा महाबली ही था कि मगध के महायशस्वी सम्राट् पराक्रमी जरासंध ने उसको अपना जामाता चुना। उनकी ओर से यादवगण की शक्ति का वास्तविक विस्तार करने वाला कंस ही तो था! ये मूढ़ उसका शासन स्वीकार कर लें तो....एक दिन मथुरा के यादव दिग्विजय करके महाशक्ति बन जाएंगे। मगधराज तो यही चाहते हैं। और उन्होंने यही सोचकर कि कंस आने वाले युग का महाप्रतापी राजा होगा, अनेकानेक महाराजाओं को उपेक्षित करके, अपनी लोकविख्यात सुंदरी एवं हर प्रकार की कलाओं तथा युद्ध एवं राजधर्म में भी निपुण दोनों पुत्रियों का विवाह कंस के साथ करके आने वाले युग के महान् विजेता का आदर ही किया है! किंतु इन तुच्छ वृष्णिवंशी यादवों की धृष्टता तो देखो कि आज तक उन्होंने पूरी श्रद्धा, आस्था और विश्वास के साथ अपने बलशाली राजा का अभिनंदन नहीं किया है।

''....मैं उनको समूल नष्ट कर दूंगा....महाविनाश!''

अस्ति ने सहसा पति को प्रलाप-सा करते देखा तो हँस दी। बोली, ''शांत हों, महाराज! इस प्रकार कल्पना-युद्ध करके महाराज अपनी ही हानि कर रहे हैं। यदि महाराज को किसी शत्रु का विनाश करना ही हो, तो भी अपने मन को पीड़ित करने की क्या आवश्यकता? पीड़ा तो मात्र शत्रु को मिले, तभी शोभा देती है, महाराज।''

अस्ति की बड़ी-बड़ी आंखों की हँसी अब भी कंस का उपहास कर रही थी....किंतु कंस महारानी अस्ति का कर ही क्या सकता है? वह चुप होकर दूसरी ओर ताकने लगा।

संयोग से उसी समय प्राप्ति की दासी रति ने आकर उन्हें प्रणाम करते हुए सूचना दी, ''देवी, आपकी आज्ञा के अनुसार, राजरानी ने अंधक कुल के महिदंड यादव को आदेश दिया था कि वह आज ही महारानी के समक्ष प्रस्तुत हो! वह इस समय महारानी का दर्शन पाने की व्यग्र प्रतीक्षा कर रहा है....आदेश!''

कंस ने चकित होकर कहा, ''महिदंड यादव....उसको महारानी ने किस कारण बुलाया है? वह तो हमारे शत्रु अंधकों का चर है!''

अस्ति ने पति का चित्त चुराने वाली हँसी-हँसकर कहा, ''इसी कारण तो मुझे उसको देखने का आग्रह-विशेष था, देव! सुनती हूं कि वह पिछले दिनों नंद के व्रज में होकर आया है। उससे कुछ सूचनाएं प्राप्त करनी हैं।''

कंस ने विस्मय से भरकर अस्ति की ओर देखा और संशय के साथ बोला, ''तो महारानी को उससे क्या यह आशा है कि कोई सूचना सत्य मिलेगी?''

''असत्य ही मिले!'' कहकर अस्ति ने फिर से हँसी छलका दी। बोली, ''मैं सत्य से असत्य और असत्य से सत्य को अलग-अलग कर लेने की कला जानती हूं, देव! मेरा अनुरोध है कि महाराज कुछ देर विश्राम करें। तब तक दासी उस यादव महिदंड से कुछ 'सत्य' जानकर आती है!''

कंस की तो इस समय एक ही कामना थी कि अस्ति के साथ मुक्त हास-विलास करके अपने थके हुए मन को किंचित सांत्वना दे, किंतु महारानी की इच्छा के विपरीत उनको कौन पा सकता है? अत: उसने चुपचाप जाने की अनुमति दे दी।

अस्ति द्वार की ओर चली तो बोला, ''मेरा मन आग्रह सहित महारानी की प्रतीक्षा करता रहेगा।''

तेरह

महिदंड वास्तव में किसी की ओर से चर के रूप में व्रज नहीं गया था। उसकी पत्नी सुरभि अपनी भ्रातृजाया से मिलने के लिए कोई एक मास पूर्व वहां गई थी। अब उसी को लेने के लिए महिदंड को गोकुल जाना पड़ा था। किंतु महारानी अस्ति की चरियों ने यहां लौटने के बाद उसकी पत्नी से सुना था कि इन्हीं दिनों नंद के पुत्रों ने एक विलक्षण कार्य और कर डाला था।

महिदंड से अस्ति ने पूछा कि वह गोकुल में क्या-क्या सुनकर आया है, तो उसने जरा चकित होकर कहा, ''महारानी की जय हो! दास तो मात्र एक रात को वहां रहा और मुझे तो वहां कुछ देखने-सुनने की कामना भी नहीं थी। बस, मेरी इच्छा तो यही थी कि अपनी पत्नी सुरभि को लेकर तत्काल ही लौट आऊंगा, किंतु वहां पहुंचकर सुना कि वह अपनी भ्रातृजाया के साथ नंद गोप के ग्राम में गई है। पता लगा कि वहां उसी दिन नंद की पत्नी यशोदा ने नवनीत का माट फोड़ देने के कारण रुष्ट होकर अपने नन्हे-से पुत्र को पत्थर के भारी

उलूखल से बांध दिया और किवाड़ बंद करके कहीं चली गई थीं।

''न जाने किसी ने द्वार खोल दिया था....कि न जाने क्या हुआ कि नंद का पुत्र कृष्ण उलूखल को घसीटता हुआ निकलकर बाहर भाग गया। और आंगन पार करके वह गोचरभूमि की ओर निकल गया। फिर कुछ ही देर में उस ओर से भयंकर हाहाकार और घरघराहट की आवाज सुनाई पड़ी। सब घबराकर भागे-भागे पहुंचे तो देखा— यमलार्जुन के नाम से प्रसिद्ध अर्जुन के दो पुराने, सुदृढ़ विशाल वृक्ष धराशायी हो गए हैं और उलूखल से बंधा कृष्ण, उन दोनों विशाल वृक्षों के तनों के बीच फंसा खड़ा है।

देखते ही समझ में आ गया कि कृष्ण उस भारी-भरकम उलूखल को घसीटता हुआ उसी ओर से भाग रहा था, परंतु वह दोनों विशालकाय पुराने वृक्षों के बीच फंस गया। तब संभवत: उसने ही जोर लगाकर निकलने का प्रयास किया होगा, जिससे दोनों विशाल वृक्ष हरहराकर गिर पड़े। संयोग ही था कि वह नन्हा-सा बालक दोनों युग्मक वृक्षों के तनों के बीच था और बाल-बाल बच गया था।''

अस्ति ने हँसकर कहा, ''फिर तो वहां यही कहा जा रहा होगा कि वह बालक इतना पराक्रमी है कि उसने अपनी शक्ति से उन दोनों विशाल अर्जुन वृक्षों को जड़ से उखाड़कर गिरा दिया है, न?''

महिदंड ने कुछ हिचककर कहा, ''महादेवी, अब कुछ कहा नहीं जा सकता कि वास्तव में हुआ क्या होगा। किंतु वहां तो दो-तीन गोप किशोर ऐसे भी थे जो उस समय पास ही अपनी गायों को चरा रहे थे। उन भारी-भरकम युग्मक वृक्षों को बिना किसी आंधी-बौखा के अचानक ही हरहराकर गिरते देखा तो वे भयवश उसी ओर ताकते रह गए। उनको लगता था कि अचानक ही बिना किसी कारण के दोनों इतने विशाल वृक्षों का हरहराकर गिरना अवश्य प्रेतों की लीला होगी, सो वे निकट नहीं आए। फिर जब वृक्ष धराशायी हो गए तो उन दोनों ने नन्हे कृष्ण को दोनों विशाल अर्जुन वृक्षों के बीच उलूखल से बंधे, फंसा देखा और उसको बचाकर निकालने के लिए दौड़ पड़े। किंतु उसी समय अचानक उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा....

''वे गोप किशोर कहते थे कि उन्होंने सहसा तेज से दहकते दो व्यक्तियों को उन धराशायी वृक्षों के भीतर से प्रकट होकर निकलते देखा। उनका रूप ऐसा था कि उन पर आंख जमती ही नहीं थी। गोप बालक जहां के तहां जड़ की भांति खड़े रह गए। उनको पास जाने का साहस नहीं हुआ। कुछ देर बाद कृष्ण का रोना सुनकर आंखें खोलीं तो चकित हो गए! वहां तो कहीं कुछ भी चमत्कारिक नहीं था। हां, कृष्ण अवश्य फंसा हुआ उनकी ओर

हाथ हिला-हिलाकर रो रहा था। दमकते हुए रूप वाले वे दोनों मानव तो न जाने कहां....हवा में ही लुप्त हो गए थे। उन दोनों को किशोरों ने कृष्ण के सामने हाथ जोड़कर कुछ कहते भी सुना तो था, किंतु उन दोनों की एक भी बात उनकी समझ में नहीं आई थी....

''अब कृष्ण अकेला ही खड़ा रहो रहा था! तो भी उन किशोरों का इतना साहस नहीं हुआ कि जाकर कृष्ण को उस बंधन से मुक्त कर देते। उन्होंने जोर-जोर से कोलाहल मचाकर व्रज से अपने-अपने माता-पिता को बुलाना शुरू कर दिया। तब तक ग्राम से अनेक गोप-गोपियां भी निकल निकलकर भागते हुए उसी ओर आने लगे थे। वास्तव में उन वृक्षों के गिरने से हरहराहट की भयावनी आवाज सुनकर वे सभी विचलित और घबराए हुए थे। उन लोगों ने जब कृष्ण को उस प्रकार उलूखल से बंधा, और गिरे हुए वृक्षों के बीच फंसा देखा तो चिल्लाते हुए नंद और यशोदा को पुकारने लगे।

''कुछ ही देर में स्वयं नंद आ पहुंचे। उस समय तक लोग कृष्ण को किसी प्रकार वृक्षों के बीच से निकाल लाए थे। नंद ने जल्दी से बंधन खोलकर कृष्ण को हृदय से लगा लिया और आंसू बहाने लगे। तभी यशोदा भी आ गईं, किंतु उस विकट दृश्य को देखते ही वह तो अचेत होकर गिर पड़ीं। तब उनके ही निवास में रहने वाली स्त्रियों की प्रमुख उनकी अग्रजा रोहिणी अपने पुत्र को गोद से नीचे उतारकर उनको संभालने लगी। उस समय कृष्ण अपने अग्रज बलदेव को देखकर हँसता हुआ, तोतली बोली में बड़े उछाह से कुछ कह रहा था। दोनों बालक खिलखिलाकर हँस रहे थे।

''नंद पहले तो रुष्ट होकर यशोदा की भर्त्सना कर रहे थे कि पुत्र को उतने भारी उलूखल से बांधकर अकेला ही छोड़ दिया था। किंतु जब उन्होंने पत्नी को अचेत देखा तो पुत्र को ले जाकर उनकी गोद में ही डाल दिया। उसका स्पर्श पाते ही यशोदा की चेतना लौट आई। उन्होंने पुत्र को छाती में भर लिया और रोने लगीं।

''फिर तो सारे व्रज में यही चर्चा होने लगी थी कि कृष्ण साधारण बालक नहीं है। वह कुछ ही महीनों का था तो उसने एक विशाल शकट को पांवों से मार-मारकर उलट दिया था। आसपास पड़े माट आदि बरतन चकनाचूर होकर बिखर गए थे। उसी ने आज फिर चमत्कार किया कि इतने पुराने सुदृढ़ जुड़वां अर्जुन वृक्षों को अपनी शक्ति से ढहा दिया। कहते हैं, तीन-चार वर्ष पहले स्तनों में विष लगाकर उसकी हत्या करने पूतना नामक 'राक्षसी' भी आई थी! कृष्ण ने उसके स्तन से दूध चूसते-चूसते ही हत्यारिन पूतना के प्राण भी चूस लिए थे....

''यह भी तो व्रज में पूरे विश्वास के साथ प्रचलित हो गया है कि कृष्ण को अपने विष से लिप्त स्तनों को पिलाकर उनकी हत्या करने के लिए आई वह सुंदरी वधूटी वास्तव में गोपबाला थी ही नहीं, वह साक्षात् पूतना नामक विकट ग्रह ही था, जो नवजात शिशुओं का वध करने वाली व्याधि के रूप में विख्यात है। उसी पूतना ने कृष्ण की हत्या करने के लिए स्वयं उस दिन अतिसुंदरी रमणी का रूप धारण कर लिया था, किंतु कृष्ण ने उसका दूध पीते-पीते उसके प्राण भी चूस लिए थे....''

पल-भर अटककर महिदंड ने महारानी अस्ति की ओर देखते हुए विस्मय के साथ अपना विचार प्रकट कर दिया, ''महारानी, उन गोपों और गोप-बालाओं की इस बात को झुठलाने का कोई उपाय भी तो नहीं....समझ में नहीं आता कि उस रात समारोह के समय आने वाली वह परमसुंदरी युवती आखिर कौन थी और उसका नंद से, यशोदा से, अथवा उस नवजात कृष्ण से क्या वैर रहा होगा कि वह उसकी हत्या करने को आई थी। उसने स्तनों में भयानक कालकूट विष का लेप तो कर रखा था! प्रारब्ध की गति ही कहिए कि वह कृष्ण का तो वध कर नहीं सकी, हां, लगता है, वह स्वयं उसी कालकूट विष के प्रभाव से स्वयं परलोक सिधार गई होगी।''

प्राप्ति ने अपनी अग्रजा की ओर सशंक दृष्टि से देखा। धीरे से बोली, ''वह कैसा विचित्र बालक है, महारानी! आप क्या सोचती हैं? वह क्या सचमुच कोई देवता है जो अचानक ही धरती पर जन्म लेकर कोई विलक्षण कर्म करने आया है....इतनी-सी वय में एक से एक चमत्कार करके वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन तो कर ही रहा है!''

अस्ति स्वयं विस्मित-सी होकर महिदंड से मिले 'सत्य' को 'असत्य' मानकर अपना ही सत्य निचोड़ने का प्रयास कर रही थी, किंतु उसकी समझ में कुछ आ नहीं रहा था। तो भी वह प्राप्ति की भांति विचलित होकर सहसा ऐसा कोई चमत्कार स्वीकार करने को अब तक तत्पर नहीं थी। महिदंड ने यमलार्जुन वृक्षों के कांड के विषय में उसे जो कुछ भी बताया है, वह सारी सूचना उसे संक्षेप में तो कल रात अंजलिका से मिल ही चुकी थी। और वह रात-भर उसी पर विचार करती-करती सो गई थी। उसको अब उतना आश्चर्य नहीं हो रहा था। तो भी कहीं कोई गूढ़ रहस्य अवश्य था!

फिर भी उसने अपनी गरिमा और गांभीर्य के अनुरूप, अपने को प्राप्ति की तरह एकाएक समर्पित नहीं कर दिया। उसने हँसती आंखों से प्राप्ति की ओर देखकर कहा, ''अभी इतना पर्याप्त प्रमाण तो नहीं मिला है, देवी कि तुम नंद गोप के बेटे को पूजन के योग्य 'देवता' घोषित कर रही हो! ज्ञान से हीन

बावले-बेकल गोपों के लिए तो यह बहुत ही बड़े चमत्कार हो सकते हैं। वे ग्रामीण, असंस्कृत गोप तो न जाने कितनी कथाएं जोड़कर कहते-सुनते होंगे।''

महारानी की बात से ही महिदंड को सहसा कुछ याद आ गया। बोला, ''महारानी का विचार सटीक ही है। गोपों के बीच उन दोनों जुड़वां अर्जुन वृक्षों के गिरने के बाद कई और विचित्र गाथाएं सुनने को मिलती हैं। पिछले दिनों गोपों के यहां कई साधु-संन्यासी आकर टिके थे। वास्तव में गोपों के प्रमुख नंद वहां के सबसे विख्यात अतिथि-प्रेमी तो हैं ही। उनके यहां प्रायः ऋषि-मुनि आकर ठहरते ही रहते हैं। मैंने सुना कि यमलार्जुन वृक्षों के गिरने के बाद भी कोई महात्मा आए थे। उन्होंने वृक्षों के विषय में एक विचित्र-सी कथा भी गोपों को सुनाई थी। कथा वास्तव में बड़ी रोचक है, तो भी वह इतनी सुखद तो नहीं होगी....'' महिदंड सकुचाकर अटका, ''....कि महारानी का समय....''

''नहीं, नहीं! तुम सुनाओ तो, क्या कथा है? वास्तव में मैंने तुमको तो इसी आख्यान के विषय में विस्तार से सुनने के लिए बुलवाया है।''

महारानी अस्ति के संकेत पर दोनों महारानियों के लिए दो चषकों में गांधार की उत्तम मदिरा लाकर प्रस्तुत की गई। महिदंड के लिए भी देवी की आज्ञा से सुरभित माध्वीक दी गई।

पीकर परितृप्त महिदंड ने बताना आरंभ किया—

नंद के यहां आए महात्मा ने कहीं दूर के ग्राम में ही इन वृक्षों के पतन का आश्चर्यजनक समाचार सुन लिया था। उन्होंने नंद के उस पुत्र के विषय में और भी कई रोचक दंतकथाएं सुन ली थीं। वर्षों पूर्व सुंदर युवती द्वारा बरबस कृष्ण को स्तनपान कराने की कुचेष्टा का समाचार भी उन दिनों यमुना के तट पर बसे अन्य व्रजों और गोष्ठों में नित्य चर्चा का विषय बना हुआ था। वहीं-कहीं से सुनकर आए होंगे। किंतु यहां आने के बाद उन्होंने नंद और उनकी पत्नियों से फिर पूरे विस्तार से सारी गाथा सुनी। फिर तो उन्होंने नंद को यशस्वी और भाग्यवान बताते हुए कहा, ''तुम्हारा यह पुत्र निश्चय ही भगवान विष्णु का अंश है, आर्य नंद!''

इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा, ''हमने तो बहुत पहले ही तपोवन में अपने गुरुदेव से गोकुल के इन यमलार्जुन वृक्षों के अस्तित्व के विषय में सुना था। आज तो मेरा सौभाग्य ही है कि ऐसे अवसर पर स्वयं आकर यह दिव्य दृश्य देखने का अवसर मिला। तुमको मैं आज व्रज में यमलार्जुन नाम से विख्यात इन दोनों वृक्षों के पुराजन्म की कथा सुनाता हूं। वास्तव में ये दोनों वृक्ष हैं ही नहीं, ये तो देवताओं के कोषाध्यक्ष यक्षराज कुबेर के पुत्र नलकूबर तथा मणिग्रीव हैं....इनको पृथ्वी पर वृक्ष का रूप धारण करके देवर्षि नारद का शाप

भुगतना पड़ा रहा था!''

यह विचित्र घटना थी!

गोपों तथा गोपललनाओं के लिए तो यह विलक्षण कथा बड़ी ही रोचक थी।

नंद के आग्रह पर महात्मा ने बताया कि एक बार देवर्षि नारद भ्रमण करते-करते दूर देवभूमि हिमालय पर स्थित अलकापुरी पहुंच गए जो यक्षराज कुबेर की राजधानी है। वहां यक्षराज के दोनों पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव अपने साथ बहुत-सी रमणियों को लेकर कैलास के रमणीक उपवन में विहार कर रहे थे।

महात्मा ने पल-भर रुककर बताया–

नलकूबर और मणिग्रीव स्वयं यक्षराज कुबेर के परम प्रिय पुत्र थे। उनका गहन स्नेह पाते थे दोनों। फिर कुबेर के परम सखा भगवान रुद्र ने भी उन दोनों को अपना अनुचर बना लिया था। उनकी कृपा पाकर दोनों ही यक्षराजपुत्र अत्यंत दंभी हो गए थे। उनको अपने समान कोई लगता ही नहीं था। मंदाकिनी के तट पर यक्षों के उस रमणीय उपवन में वे दोनों वारुणी पीकर मदोन्मत्त हो रहे थे। नशे से उनकी आंखें घूर्णित हो रही थीं। मंदाकिनी का निर्मल जल विशाल कमलों से अत्यंत शोभा पा रहा था। उनके साथ उन्मादिनी अप्सराएं तथा मायविनी यक्षी रमणियां उन्मुक्त होकर नाचती-गाती आनंद मना रही थीं। मदमाते यक्षपुत्र अंत में मंदाकिनी में उतर गए और अपने साथ उन उन्मादिनी युवतियों को भी जल में खींचकर विहार करने लगे। वे भांति-भांति की क्रीड़ा करते हुए जलविहार करने लगे।

उसी समय सहसा देवर्षि नारद वहां पहुंच गए। किंतु उन मदमत्त यक्षों की उन्मुक्त क्रीड़ा चलती ही रही।

देवर्षि को देखते ही अप्सराओं तथा यक्ष बालाओं ने भी तत्काल जल से निकलकर अपनी-अपनी निर्वस्त्र देह परिधानों से ढक लीं और उनको प्रणाम करके लज्जा से सिर झुकाए खड़ी हो गईं, किंतु उन मदोन्मत्त यक्षों नलकूबर तथा मणिग्रीव ने ऐसी कोई चेष्टा नहीं की।

नारद ने समझ लिया कि वे दोनों मदिरा पीकर मतवाले हो रहे हैं। उन्होंने उन दोनों का कल्याण करने की कामना से ही उनको शाप दे दिया–''लोकपाल कुबेर के पुत्र होने पर भी तुम दोनों को अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं रह गया है। तुम जड़ की भांति विमूढ़ हो, अतः तुम मृत्युलोक में जाकर आज से जड़ वृक्षों के रूप में ही निवास करो!''

नलकूबर और मणिग्रीव शाप सुनते ही सहसा अपनी चेतना में लौटे तो

देवर्षि नारद के चरण पकड़कर आर्त स्वर में शापमुक्त करने का आग्रह करने लगे। द्रवित होकर देवर्षि नारद ने दोनों को आश्वस्त किया था कि तुम दोनों अपनी शाप की अवधि में जड़ वृक्ष होते हुए भी अपनी चेतना नहीं खोओगे। फिर द्वापर युग में भगवान विष्णु की कृपा से तुम्हारा उद्धार हो जाएगा!

''वास्तव में ये दोनों यमलार्जुन वही यक्षपुत्र हैं जो आज कृष्ण की कृपा से अपनी शाप की अवधि पूरी करके वृक्षयोनि से मुक्त हो गए हैं।''

तभी से गोपों में यह विश्वास घर कर गया है कि यह नंद का पुत्र वास्तव में विष्णु का अवतार ही होगा, नहीं तो ऐसे पराक्रम कौन कर सकता है....''

विस्तार से पूरी गाथा सुनकर अस्ति को हँसी आने लगी।

महिदंड को विदा करने के बाद भी वह प्राप्ति की विचलित मुद्रा देखकर बोली, ''तुमको ज्ञान नहीं, अनुजे, कि यह सब अपनी ओर से शक्तिशाली बनने का प्रचारमात्र है जो समय-समय पर लोग अपना हित या कार्य साधने के लिए करते ही रहते हैं। यह सब धूर्तों का प्रपंच है! और कुछ नहीं। तुम तो यह सब भूलकर अपने कार्य में मन लगाओ। इन प्रपंचों का सामना करने के लिए मैं तो हूं ही। तुमको तो बस, सबसे बड़ा कार्य यही करना है कि मथुरापति कंस को अपने रूप के पाश में ऐसा बांधे रहो कि उनको यह सब सोचने का अवकाश ही न मिले। इसी में महाराज का भी हित है और हमारे पूज्य पिता महाराज जरासंध का भी! हमको तो ज्ञात ही है कि इस मथुरा की विचलित होती राजलक्ष्मी को अपने वश में करके ही हम इस क्षेत्र पर मगध की ध्वजा फहरा सकते हैं! हम तो यही करने के लिए प्रतिश्रुत हैं न कि यादवकुल पर हमारे महाराज कंस का आधिपत्य सदा के लिए सुदृढ़ हो जाए। फिर तो मगध के दिग्विजय की यह बाधा दूर ही नहीं हो जाएगी, वरन सहायक ही हो जाएगी। ऐसे में इस बार जब भी मगधपति का अभियान होगा तो यह बाधा उनको बीच ही में अवरुद्ध नहीं करेगी, वरन् उनका साथ देकर यहां भी उनकी विजय का घोष करने में सहायक होगी।''

कंस का हठ उस दिन अस्ति को बांधने में सफल हो ही गया। तो भी उसने कंस के सान्निध्य का लाभ ही उठाया। उसने कंस से वचन ले लिया कि जब तक महारानी स्वयं नहीं कहेंगी, तब तक कंस अपनी ओर से उत्तेजित होकर यादवों अथवा गोपों को भड़काने वाला कोई कार्य नहीं करेगा!

वास्तव में अब अस्ति को अचानक ही प्रतीत हुआ था कि कंस के विरुद्ध मथुरा में जो भी हो रहा है, उसके पीछे निश्चय ही कोई अत्यंत नीति-निपुण बुद्धि है। यह सब ऐसे ही नहीं हो रहा है। कंस को किसी न किसी

प्रकार से वश में रखने के लिए स्वयं अस्ति के सहयोग से भी तो यहां मगधपति के विषय में अनेक ऐसे ही प्रचार आदि किए जाते रहे हैं! ऐसा लगता है कि यादवों के नीति में पारंगत वृद्धों ने भी उन्हीं उपायों का अनुकरण करके कई ऐसी विचित्र बातों का प्रचार करवाना आरंभ कर दिया है जो कंस के मन में भीरुता उपजाकर सदा उसको विचलित करती रहें। नंद के पुत्र के विषय में वसुदेव का पुत्र होने का प्रचार फिर ऐसी-ऐसी चमत्कार-भरी बातों का और उसको दिव्य शक्ति के रूप में स्थापित करने का प्रयास भी कंस को विचलित करने के लिए ही तो नहीं हो रहा है!

अस्ति कितनी ही तरह से, कितने ही कोणों से उन सारी बातों को—मथुरा में अथवा व्रजभूमि में घटित होने वाली घटनाओं को देखती, फिर उनको एक-दूसरी से जोड़ने का प्रयास करती। अथवा अलग-अलग उनका मूल्यांकन करके, दोनों तरह की बातों की जड़ में जाकर उनके भीतर से 'सत्य' का वास्तविक अंश निकालने की चेष्टा करती रहती। लेकिन सच बात तो यह है कि अब वह स्वयं अपने को भी कितनी ही बार दिग्भ्रमित-सी अनुभव करने लगती थी!

चौदह

कुछ दिन पहले गर्गाचार्य व्रज का भ्रमण करके लौटे थे। वह यदुकुल के पुरोहित थे और वसुदेव के आग्रह पर ही व्रजभूमि की यात्रा पर गए थे। उन्होंने वहां जाकर नंद से कहा था कि वे वसुदेव के कहने पर नंद के पुत्रों के शेष संस्कार कराने के लिए आए हैं। और किसी प्रकार कृष्ण एवं बलभद्र के संस्कार-अनुष्ठान आदि संपन्न करके लौटे थे।

पुरोहित गर्गाचार्य के विषय में कंस को वैसा कोई संदेह नहीं था। वह तो महर्षि थे! उनका वसुदेव के यहां आना-जाना लगा ही रहता था। उन दिनों देवकी को कंस के पितृव्य अर्थात् उग्रसेन के अनुज राजा देवक अपने यहां ले गए थे। पुत्री को बहुत दिनों तक कंस के कारागृह की यातनाएं भुगतनी पड़ी थीं, सो उनका विचार था कि कुछ दिन अपनी स्नेहमयी माता के पास रहने से देवकी का मन शांत होगा।

गर्गाचार्य अवसर पाकर वहीं आए थे। उनसे मिलने पर देवकी ने रो-रोकर अपने पुत्र के विषय में ममता-भरी आकुलता के साथ कितने ही प्रश्न किए।

पुरोहित गर्गाचार्य से उनका कोई भेद छिपा नहीं था। वह यह रहस्य भी

जानते थे कि किस प्रकार कंस के कारागृह में जन्मे देवकी के आठवें पुत्र को रातोरात मथुरा से यमुना पार करके नंद के यहां पहुंचा दिया गया था।

उन्होंने देवकी को कृष्ण के विषय में विस्तार से बहुत कुछ बताया और उनको आश्वस्त किया कि वृष्णिकुल को धन्य करने वाला उनका पुत्र सकुशल नंद और यशोदा के प्रेम से ओत-प्रोत, वात्सल्य-सुख पाता हुआ किस प्रकार सुरक्षित पल रहा था।

देवकी बार-बार उसके विषय में कितनी ही अटपटी बातें पूछ-पूछकर तृप्त होती रहीं। पुरोहित गर्गाचार्य ऐसे तो परम ज्ञानी थे किंतु अपने पुत्र के वात्सल्य से भरी देवकी की बातें सुन-सुनकर उनका हृदय भी करुणा से भर आया था। उन्होंने देवकी को नंद और यशोदा से सुनी कृष्ण की बाल-लीलाओं के आख्यान सुनाकर उनको पूरी तरह सांत्वना दी। फिर वहां से चले आए।

वसुदेव को उन्होंने एकांत में बताया कि उनका पुत्र वास्तव में विलक्षण गुणों और अद्‌भुत शक्ति से भरपूर है। उसको सामान्य बालक मानकर उसके विषय में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। फिर उसका अग्रज रोहिणीनंदन बलभद्र तो इसी वय में अतुलित बल-विक्रम से भरपूर लगता है। वे दोनों निश्चय ही महान् कार्य करने के लिए उत्पन्न हुए हैं....इस अनाचारी कंस का उनसे अपने प्राणों के लिए भयभीत रहना वास्तव में उचित ही है। उसे भी अब तो पूरा विश्वास-सा हो गया है कि उसका वध करने वाला कहीं और जन्म ले चुका है। न जाने किस ऋषि ने कंस को सावधान किया है कि देवकी का सातवां गर्भ भी वास्तव में नष्ट नहीं हुआ था। वह भी जन्म लेकर आज कहीं पुष्ट हो रहा है....वे दोनों ही वृष्णिवंशी कंस की जीवन-यात्रा को खंडित करने वाले होंगे।

"वर्षों पूर्व जब कंस वृष्णिकुल को अपने पक्ष में करने का प्रयास कर रहा था, उसी समय उसको आतंकित के लिए आकाशवाणी का बहाना लेकर उसको देवकी के गर्भ से उसका वध करने वाले पुत्र के जन्म का भय दिखाया गया था....वही तथ्य मानो आज साकार हो रहा है! कंस को अब पूरा विश्वास हो गया है कि देवकी का आठवां पुत्र निश्चय ही उसका वध करने के लिए ही जन्मा है! और कहीं गुप्त रूप से पुष्ट हो रहा है। अब कंस की ओर से और भी सतर्क रहना होगा, क्योंकि उसकी यह धारणा प्रबल होती जा रही है कि आपने उससे छल किया है और किसी न किसी प्रकार अपने दो पुत्रों को गोकुल भेजकर जीवित बचाने में सफल हो गए हैं। कंस को तो अब इतनी बौखलाहट होने लगी है कि वह खुलकर कुछ भी कर डालने पर तुल गया है। उसको आज तक यह विश्वास नहीं हो पाया है कि आपने देवकी के आठवें

प्रसव के बाद जिस कन्या को उसे सौंपा था, वह वास्तव में देवकी के आठवें गर्भ का ही परिणाम थी! अत: मेरा तो यही कहना है कि आप लोग एक बार फिर कंस की ओर से घोर प्रताड़ना भुगतने के लिए तैयार हो जाएं....अथवा अपनी रक्षा का प्रबंध कर लें।''

गर्गाचार्य की चेतावनी ठीक ही प्रमाणित होने को थी। स्वयं वसुदेव को अब यह चिंता ग्रसने लगी थी कि यदि कंस को पूरा विश्वास हो गया कि नंद का वह विलक्षण पुत्र वास्तव में देवकी के आठवें गर्भ से जन्म लेने वाला वसुदेव-पुत्र है तो वह उन दोनों को किसी भी प्रकार मरवा डालने का हर उपाय करेगा। वसुदेव को अपनी चिंता उतनी नहीं थी! कंस उनका अथवा देवकी का दोनों के प्राण तो ले नहीं पाएगा, क्योंकि इतना साहस कर पाना उसके लिए कठिन ही है। फिर उसको तो यह चिंता भी होगी कि यदि नंद के यहां वास्तव में वसुदेव का पुत्र है, तो उसके मथुरा आने के लिए वसुदेव और देवकी को जीवित रहना आवश्यक होगा....ऐसे भी भले ही अब तक कुरुकुल की ओर से कंस को वैसी विकट चेतावनी न मिली हो, किंतु कंस इतना तो जानता ही होगा कि अपनी राजदुहिता रोहिणी तथा उसकी चारों अनुजाओं के पति वसुदेव की हत्या को कुरुकुल किसी भी प्रकार सहन नहीं करेगा। और यदि ऐसा कोई प्रयास किया गया तो मथुरा को कुरुकुल की दुर्दांत शत्रुता का सामना करना होगा!

कंस तो चाहे मूढ़ता कर ही बैठता, किंतु उसकी रानी अस्ति कभी ऐसा सहन नहीं करेगी कि इस प्रकार की किसी गर्हित चेष्टा से मथुरा के यादवों को वश में कर लेने के पहले ही मगधराज को व्यर्थ ही कुरुकुल जैसे बलशाली शत्रुओं का सामना करना पड़े।

अब तक तो जरासंध यह बचाता ही रहा है कि किसी प्रकार कुरुकुल के भीष्म और वाह्लीक अथवा भूरिश्रवा जैसे पराक्रमी योद्धाओं से युद्ध करना पड़े। कुरुराज पांडु तो अब हस्तिनापुर में रहते नहीं, अपनी दोनों पत्नियों— कुंती तथा माद्री के साथ हिमालय की उपत्यका में ही बस-से गए हैं। किंतु दिग्विजय के समय उन्होंने कुरुओं की सेना लेकर मगध पर आक्रमण करके उत्तर मगध के राजा दीर्घ का वध कर दिया था और मगध को लांघकर विदेह तक को पदाक्रांत कर डाला था। वे कुरुवंशी अब भी किसी से दबने वाले तो नहीं हैं।

मगधपति तो कुरुओं को बचाते हुए पहले इस क्षेत्र को नीतिपूर्वक ही अपने वश में करना चाहता है। जिस प्रकार कंस को अपना जामाता बनाकर उसने यादवों को लगभग वशीभूत कर लिया था! कुछ वैसी ही नीति से वह

कुरुओं को भी परास्त करेगा अथवा इस बार अभियान करके आसपास के राजाओं को पराजित कर लेने के बाद, उस समय कुरुओं को ललकारेगा, जब वह क्षत्रिय कुल नितांत अकेला पड़ जाएगा। तब तक तो अस्ति कंस को कोई विस्फोटक दुश्चेष्टा नहीं देगी।

तो भी कंस कम हठी नहीं है, अत: इसी अनुमान पर भरोसा करके बैठे रहना घातक हो सकता है। वसुदेव मन ही मन निश्चय कर रहे थे....वृष्णियों की इस बार गुप्त मंत्रणा-सभा में उन्हें चेतावनी देनी ही होगी।

किंतु उन्हें इसका अवसर नहीं मिला। कंस ने सहसा उसी रात देवकी और वसुदेव को पुन: कारागृह में डालने का आदेश दे दिया था।

अस्ति को भी अब गोकुल में होने वाली एक-एक घटना के विषय में सतर्क रहना पड़ता था। उसे चरों से हर बात का पता लगता ही रहता था। इस बीच उसे और भी अनेक छोटी-बड़ी घटनाओं की सूचना मिली थी। एक दिन प्राप्ति ने ही उससे कहा था, ''महाराज को आज बड़ी चिंता हो रही थी। कहते थे कि नंद के उस पुत्र ने पिछले दिनों एक विशाल दैत्यकार वृषभ को अकेले ही मार गिराया है। कहा जाता है कि वह दानवाकार वृषभ अचानक ही डकराता हुआ उनकी गायों के रेवड़ में पैठ गया और गायों तथा बछड़ों को यातना दे-देकर मार रहा था।''

अस्ति हँस दी। बोली, ''हमारे महाराज को तो संभवत: कोई रोग हो गया है, प्राप्ति भ्रम की तो कोई औषधि होती नहीं। अब एक वृषभ को मार देने भर से वह बालक उन्हें ऐसा भयानक लगने लगा है कि महाराज को चिंता के मारे नींद नहीं आती!''

प्राप्ति ने कहा, ''कहीं कोई गूढ़ रहस्य तो होगा ही, देवी! नहीं तो हमारे बलशाली महाराज ऐसे भीरु तो नहीं हैं कि....''

अस्ति ने कहा, ''महाराज को तो यही विश्वास हो चला है, प्राप्ति, कि वह बालक वास्तव में, वसुदेव और देवकी का ही आठवां पुत्र है....उसके संबंध में किन्हीं ऋषियों ने या तो षड्यंत्र किया है, या वे स्वयं अपना महत्त्व जताने के लिए हमारे महाराज को यह कह-कहकर विचलित करते रहते हैं कि वह बालक वास्तव में महाराज के लिए घातक है।''

''ओह!'' प्राप्ति ने अत्यंत गर्हित बात सुन ली हो मानो। उसने जल्दी से देवताओं को मन ही मन प्रणाम करके कहा, ''महाराज दीर्घजीवी हों! भगवान पशुपति उनकी रक्षा करें।''

अस्ति ने उसको आश्वासन देते हुए कहा, ''हमारे पिता मगधपति

जरासंध तो भगवान् पशुपति को नरबलि देकर प्रसन्न करने का उद्योग कर रहे हैं। उनके जामाता की रक्षा भगवान पशुपति नहीं करेंगे तो कौन करेगा!''

महारानी अस्ति ने चलते-चलते प्राप्ति को कुछ तीक्ष्ण स्वर में शिक्षा दी, ''किंतु देवता भी उसी की रक्षा करते हैं, मेरी सुंदरी महारानी, जो अपनी रक्षा स्वयं करना चाहते हों। तुमको सावधान रहना होगा कि जब तक देवता महाराज की रक्षा करने न आ जाएं, तब तक महाराज इस काल्पनिक आशंका से ही व्यग्र होकर अपनी हत्या आप ही न कर लें! तुम उनको, हो सके, तो एक पल के लिए भी इन गर्हित तथ्यों पर विचार करने का अवसर ही मत दिया करो....यदि तुम स्वयं ही उनसे ऐसी-ऐसी बातें करोगी तो फिर उनकी रक्षा कौन करेगा? तुम्हारे वश में अब महाराज को बांधे रखना न रह गया हो तो फिर मैं ही कोई और प्रबंध करूं?''

प्राप्ति अपनी हठीली अग्रजा अस्ति की विकट महत्त्वाकांक्षा से परिचित थी-- वह कहती ही नहीं, कर भी सकती है! प्राप्ति को अपने रूप-यौवन की असमर्थता के विषय में संकेत सुनकर लज्जा-सी आई। बोली, ''अब से मैं महाराज को एक पल के लिए भी ऐसी बातें नहीं करने दूंगी, किंतु तुम स्वयं तो कभी उनको एकाध बार सुलभ होकर साहस बंधाने का प्रयास ही नहीं करतीं। जानती हो, तुम्हारे लिए महाराज के मन में कितना आग्रह है!''

''मैं जानती हूं, प्राप्ति, और यह भी जानती हूं कि कब क्या करना होगा!'' कठिन हँसी हँसकर अस्ति अपनी अनुजा को अस्त-व्यस्त छोड़कर चली आई थी।

लेकिन उसका मन भी अब उन्हीं बातों से उलझा रहा।

अब तो उसको भी लगने लगा था कि वह प्रबल चेष्टा करती है फिर भी कहीं न कहीं कुछ ऐसा छूट जाता है कि बार-बार महाराज की व्यग्र कर देने वाली ऐसी सूचनाएं उन तक पहुंचती ही रहती हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि यह सब राजप्रासाद के ही किसी षड्यंत्र का भाग हो?

उसी रात एक बार फिर प्राप्ति से मिलकर महारानी अस्ति ने सहसा पूछा, ''महाराज को यहां आकर कौन-कौन-से चर सूचनाएं देते है?''

प्राप्ति ने उसकी आशंका के अनुरूप ही उत्तर दिया, ''यहां तो कभी-कभी अपने मागध योद्धा उद्धत की पत्नी ही आती है। कोई पुरुष चर तो अब यहां आता नहीं। हां, एक बार रात्रिवेला में स्वयं मंत्री अक्रूर ने आकर महाराज से कुछ देर वार्ता की थी!''

''कब आए थे अक्रूर? किस विषय में वार्ता हुई थी?''

''तीन दिन पूर्व। महाराज ने अक्रूर के आने की सूचना पाते ही उन्हें

तत्काल मेरे शयनागार से जुड़े कक्ष में ही बुलाकर बात की थी। किंतु वह तो मात्र किसी दूत के बारे में बात कर रहे थे। मैं उस समय मदिरा पीकर माती-माती सोने को हो रही थी। कुछ अधिक सुन नहीं सकी।''

अस्ति ने हँसकर कहा, ''मेरी सुंदरी महारानी! तुम्हें तो केवल महाराज को मदमत्त करने को कहा था मैंने। स्वयं तुमको तो हर पल सचेत रहना होगा न!''

प्राप्ति ने लजाकर कहा, ''वह तो सोने की वेला थी....और स्वयं महाराज उस समय आतुर थे....उनको रोक तो नहीं पाती न मैं।''

अस्ति हँसकर रह गई। सच ही तो है—महाराज कंस का उद्दाम पौरष किसी भी रमणी को विह्वल कर देता है! स्वयं अस्ति जब कभी कंस की आतुरता से बंध जाती है तो वही कहां मुक्त होकर अपने मन की कह-सुन पाती है? उस समय तो मदन के वेग में कंस का कहना-भर सुनना-सुनना होता है और....

सहसा चेत में आकर महारानी अस्ति बोलीं, ''और वह उद्धत की पत्नी.... क्या नाम है उसका?''

''वेणी।''

''हां, वेणी! उससे किस प्रकार का संवाद मिलता रहता है महाराज को? कभी कुछ सुना हो तो बताओ।''

प्राप्ति ने सोचकर कहा, ''एक ही महत्त्वपूर्ण बाद याद आती है। उस दिन वेणी कह रही थी इन दिनों व्रज की उस भूमि को त्यागकर गोपों ने वृंदावन में जाकर अपना नया गोष्ठ स्थापित किया है। कहती थी कि नंद का पुत्र....वही कृष्ण इन दिनों प्राय: वृंदावन के विशाल भांडीर वट के निकट ही बैठा हुआ अपने गोप संगियों पर अपना शासन ऐसे चलाता रहता है मानो उनका राजा ही हो! जो भी वह कहता है, सारे गोप उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। वह किशोर कृष्ण वृंदावन में प्राय: वंशी पर राग टेरता हुआ गोपबालाओं के साथ विहार भी किया करता है....''

''और....?''

''और तो कुछ याद नहीं!'' कहकर प्राप्ति ने आंखें झुका लीं मानो अस्ति के मन के अनुरूप कुछ न कह पाने के कारण लज्जित हो।

अस्ति के बार-बार प्रयास करने पर भी कुछ ऐसा रहस्य हाथ नहीं लगा, जिससे वह अनुमान लगा पाती कि कहीं वृंदावन में नंद गोप के यहां यादवों का कोई रहस्यमय आयोजन तो नहीं हो रहा है। अथवा इन दिनों स्वयं कंस की ओर से वहां फिर कोई विशेष अभियान तो नहीं चलाया जा रहा है।

एक दिन अस्ति को सहसा ही एक विस्मयजनक समाचार मिला—इसी वर्ष गोपों ने पहली बार प्राचीन, परंपरागत इंद्रपूजन समारोह मनाना छोड़कर अकस्मात् एक नया महोत्सव मनाना आरंभ कर दिया—गोवर्धन-पूजन!

पर्वत की पूजा!

अस्ति हँस दी।

साथ ही अस्ति को एक विचित्र घटना भी सुनने को मिली।

गोवर्द्धन-पूजन के लिए सारा गोप समुदाय छकड़ों पर अपार पूजन-सामग्री लादकर गोवर्द्धन पर्वत पर आ गया था। विधिवत् गोवर्धन पर्वत की पूजा होने लगी, तभी अचानक ही आकाश काले-काले मेघों से ढक गया। कुछ ही देर में काली-काली घटाएं उमड़-घुमड़कर बरस पड़ीं। कहा जाता है कि इतनी भयंकर वर्षा होने लगी कि चारों ओर जल ही जल हो गया था। व्रज डूबने लगा। मनुष्य और पशुओं में भगदड़ मच गई।

लेकिन उस दिन कृष्ण ने फिर एक विकट कार्य कर दिखाया। गोपों के वृद्धों ने तो उसको कोसना आरंभ कर दिया था कि 'देखो, इंद्र के अपमान का अब दंड मिल रहा है! युगों से हमारे पूर्वज इंद्र भगवान् की पूजा करते आए थे। उसको रोकने के कारण ही इंद्र कुपित होकर ऐसी प्रलयंकारी वर्षा कर रहे हैं! हमारा सारा गोधन नष्ट हो जाएगा....उधर प्रचंड वर्षा से यमुना नदी भी उमड़-उमड़कर हमें डुबाने को आ रही है। अब तो हमारी प्राणरक्षा कदापि नहीं हो सकती....हम तो कृष्ण जैसे अनुभवहीन किशोर की बालबुद्धि पर चलने के कारण मारे गए....'

किंतु किशोर कृष्ण ने बड़े धैर्य के साथ कहा, "जो इंद्र हमारे लिए कुछ नहीं करते और देवराज होकर भी ऐसे अधीर हैं कि पूजा न पाने पर हमारा विनाश तक करने को आ गए हैं, उनकी पूजा मात्र भय के कारण करना तो मूढ़ता ही है....पाप है! आओ, हम जिन पर्वतराज गोवर्द्धन की पूजा कर रहे हैं, उनसे ही शरण मांगते हैं। वही पर्वत देवता गोवर्द्धन अवश्य हमारी रक्षा करेंगे।

और सचमुच कृष्ण तथा रोहिणी के पुत्र बलभद्र ने सभी वृद्ध एवं असमर्थ गोपों तथा गोपियों को लाकर गोवर्द्धन की कंदराओं के बीच सुरक्षित खड़ा कर दिया। फिर वह युवा एवं बलिष्ठ गोपों के साथ तैर-तैरकर गायों तथा बछड़ों को भी गोवर्द्धन पर ही ले आया। पूजने के लिए आई विपुल सामग्री को बचाकर उसने सबसे प्रसाद की भांति उसी का आहार करने को कहा। कहते हैं कि पूरे सप्ताह-भर प्रलयंकारी वर्षा होती ही रही। किंतु कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत का ही सहारा लेकर सबको बचा लिया था! अंत में वर्षा थम

जाने पर गोप अपने गोष्ठों में लौट आए।

उस दिन से तो कृष्ण को सब स्वयं देवता ही मानने लगे हैं। अब कृष्ण की आज्ञा से ही वहां सब कुछ होता है!

फिर कालिय नाग का दमन! कितनी चमत्कार-भरी गाथा है वह!

उसे सुनकर तो महारानी अस्ति स्तब्ध रह गई।

यह तो एक और असंभव-सा कार्य कर डाला था कृष्ण ने। यमुना-तट के एक बहुत बड़े ह्रद के निकट अनार्य कालिय नाग का अपना राज्य था। कहा जाता है कि नागों का यह प्रमुख योद्धा कभी प्राचीन काल में गरुडों से पराजित होकर भागा तो आकर यहां यमुना-तट पर बस गया था। धीरे-धीरे नागों की यह इतनी बड़ी बस्ती हो गई थी कि अब वे निर्भय होकर यमुना के उस क्षेत्र पर किसी और मानव को आने ही नहीं देते थे। वह विशाल कुंड वृंदावन के निकट ही पड़ता था। वहां व्रज बसाकर रहने वाले गोपों को अब प्राय: कालिय नाग की ओर से यातना मिलने लगी थी। वह कितनी ही बार गोपों के गोधन छीनकर उनको मार देता और कभी गोपों को पकड़कर उन्हें घोर यातना दिया करता था। उसके कारण अब गोपों का यहां रह पाना कठिन होता जा रहा था।

अंत में कृष्ण ने नागों को ही उस क्षेत्र से हटाने का निश्चय कर लिया। एक दिन अकस्मात् नागलोक पर आक्रमण करके भीषण युद्ध के बाद कृष्ण ने स्वयं बड़े कौशल से कालिय-नाग को ही बंदी बना लिया। अपने प्रमुख को ही कृष्ण के वश में देखकर नागों का बल टूट गया। स्वयं कालिय नाग की पत्नियां और दूसरी नागबालाएं रोती हुई कृष्ण के पास आईं और उससे कालिय को मुक्त करने की प्रार्थना करने लगीं।

उन्होंने कितनी ही अमोघ औषधियां, सर्पों का विष दूर करने वाली अनेक बूटियां तथा रत्नमणि आदि उपहार में दीं और कृष्ण से विनती करती हुई अपने पति को मुक्त कर देने का आग्रह करती रहीं। वे किसी भी मूल्य पर अपने पति का जीवन बचाना चाहती थीं। अंत में स्वयं कालिय नाग ने कृष्ण को वचन दिया कि वह इस क्षेत्र को तत्काल छोड़कर सभी नागों के साथ मथुरा से दूर कहीं समुद्र की ओर चला जाएगा।

तब कृष्ण ने कालिय को मुक्त कर दिया। और सचमुच कालिय नाग उसी समय उस स्थान को छोड़कर अपनी नाग प्रजा तथा नागबालाओं को लेकर दूर समुद्र की ओर चला गया।

इस घटना से स्पष्ट प्रमाण मिलता था कि गोप लोग अब सामान्य गोप

नहीं रहे। प्राचीन काल से वहां रहने वाले नागों को युद्ध में पराजित करने वाला नवयुवा कृष्ण साधारण गोप नहीं हो सकता! निश्चय ही वह बलसंग्रह करके अब पूरा योद्धा बन गया है। और महाराज कंस को जैसा संदेह है, यदि वह सचमुच नंद का पुत्र न होकर वसुदेव का आठवां पुत्र है तो फिर अब उसे नियंत्रित करना ही होगा! नहीं तो किसी दिन वह इसी प्रकार बल-विक्रम करता हुआ एक दिन मथुरा की अधीनता से गोपों के स्वतंत्र होने की घोषणा भी तो कर सकता है!

मथुरा की महारानी अस्ति को लगा कि वह सब अकेले कृष्ण और गोपों का काम नहीं हो सकता। निश्चय ही उसे या तो उन यादवों का सहयोग मिलता होगा जो कंस के राजा बनने से हताश और भयभीत होकर मथुरा से पलायन करके कुरु, पंचाल, मत्स्य आदि राज्यों में जा बसे हैं। उनमें से अधिकतर वृष्णि यादव ही तो हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि वे गोपों के साथ मिलकर षड्यंत्र कर रहे हों? यह नंद भी तो वसुदेव के कुल का ही है। वह वसुदेव का घनिष्ठ मित्र कहा जाता है। वह जब भी कर आदि देने मथुरा आता है, वसुदेव से अवश्य मिलता है। कहीं नंद ही इस षड्यंत्र का सूत्रधार न हो!

उस दिन कंस से बात होते समय अस्ति ने पहली बार उससे सहमति जताई कि वसुदेव ने अवश्य कोई षड्यंत्र किया है! किंतु उसने इतने पर भी अचानक ही वसुदेव की हत्या कर देने के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया। बोली, ''अब तो उसकी हत्या कर देने से भी कोई लाभ होने वाला नहीं है। वसुदेव का वध कर देने पर तो अब ये सारे यादव कुल विग्रही होकर हमारे विरुद्ध खुलकर आ जाएंगे।''

अस्ति का परामर्श यही था कि पीछे जो होगा देखा जाएगा। यदि आवश्यक हुआ तो मात्र वसुदेव ही क्यों, उनके सभी समर्थकों का संहार किया जा सकता है। किंतु उसके पहले इन दोनों गोप युवाओं को समाप्त कर देना होगा, जो इस विद्रोह के सूत्रधार बनकर नित्य कुछ न कुछ करते ही रहते हैं।

पंद्रह

मथुरा आने के बाद से महाराज कंस की ओर से विशेष महत्त्व पाने के बाद प्रलंब यह समझने लगा था कि अब तो वही कंस का सबसे बड़ा योद्धा है और उसकी इच्छा की पूर्ति करना अब सभी का कर्तव्य है। अंजलिका का पति बाहुक स्वयं भी पराक्रमी मागध योद्धा था, किंतु उसको यहां उतना बड़ा पद नहीं मिल पाया था। प्रलंब स्वयं मागध सेनापति का संबंधी भी था, इस कारण

सेनापति ने उसको राजा कंस की आंखों में इतना ऊंचा उठा दिया था।

राजा की ओर से विशेष पद पाकर प्रलंब निरंतर मद में डूबा रहता था। यादव युवतियां तो उसको बहुत ही प्रिय थीं। किंतु एक दिन उसकी दृष्टि अंजलिका पर पड़ गई तो वह चौंक उठा। अंजलिका के प्रति प्रलंब मगध से ही आसक्त था, किंतु उसको जरासंध की आज्ञा से राजपुत्रियों के साथ मथुरा आना पड़ा था। फिर उसे अवसर ही नहीं मिला कि अंजलिका को पाने का प्रयत्न करता।

मथुरा में आकर पता लगा कि अंजलिका तो पहले से ही विवाहित है। उसका पति प्रलंब का मित्र ही था—बाहुक और प्रलंब कभी मगध के एक ही समाजवाट में मल्लयुद्ध की शिक्षा प्राप्त करते थे। दोनों के बीच गहरी मिताई थी और उनको एक साथ ही मगधपति की आज्ञा से गौरवशाली पद दिए गए थे। जरासंध ने उन दोनों को अपने ही राजभवन के प्रांगण में रहकर कार्य करने का अवसर प्रदान किया था। किंतु मथुरा से संबंध बढ़ने पर महाराज ने प्रलंब को अपनी पुत्रियों अस्ति और प्राप्ति के मथुरा आते समय उनके रथ की सुरक्षा के लिए भेजा दिया था। अंजलिका भी महारानी की परिचारिका के रूप में उनके साथ ही आ रही थी। उसने प्रलंब को देखा भी था, किंतु संयोगवश प्रलंब की दृष्टि मार्ग में उस पर नहीं पड़ी। फिर इस यात्रा की अवधि में प्रलंब स्वयं महारानी अस्ति का कृपापात्र बन गया था। और एक बार जो अस्ति का दास बन जाए, उसे किसी और की तरफ देखने का समय ही कहां मिलता था! अस्ति की ओर से ही प्रलंब को इतना अवकाश नहीं मिल पाता था कि अंजलिका की खोजबीन करता।

किंतु अस्ति के प्रासाद में वह निरंतर आती-जाती अंजलिका को देखता ही रहता था, सो धीरे-धीरे उसके प्रति उसकी सोई हुई आसक्ति जाग उठी थी। और एक दिन वह अंजलिका के पति बाहुक से भी मिला। उसने दोनों को बार-बार अपने निवास पर आमंत्रित किया, किंतु अंजलिका ने पति से स्पष्ट कह दिया था कि वह इस दानव जैसे प्रलंब के यहां कभी नहीं जाना चाहती। उसने बहुत पूछने पर पति को बता भी दिया कि प्रलंब की आंखों में उसके प्रति घोर आसक्ति है। और यही नहीं, वह मगध से ही उसको पाना चाहता है। मगध में तो उसको अवसर ही नहीं मिला, यहां उसने कामुकता की सीमा लांघकर एक दिन अंजलिका से स्पष्ट शब्दों में समागम का आग्रह किया था!

कीकटों की संस्कृति में पति-पत्नी की वैसी नैतिकता नहीं थी। अंजलिका इसी कारण कीकटों से बिदकती थी। प्रलंब तो कीकटों का प्रचंड रूप था! वह निरंतर अंजलिका को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करता रहता था।

उसकी ओर से अंजलिका के लिए एक से बढ़कर एक उपहार आने लगे थे। प्रलंब का पद यहां बहुत ऊंचा था और ऐसे भी वह कंस का परम विश्वासपात्र था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि स्वयं महारानी अस्ति अब भी प्रलंब का विशेष आदर करती थीं और उसकी वीरता की धाक मानती थीं! उनको तो पूरा भरोसा था कि महामल्ल प्रलंब के रहते कंस को धरती पर किसी की चिंता करने की आवश्यकता नहीं।

स्वयं अंजलिका को भी ज्ञात था कि प्रलंब अमित बलशाली है। अकेले ही बीसों सैनिकों पर भारी पड़ सकता है। महारानी अस्ति ने प्रलंब की निष्ठा और गहन सेवा का उसे पुरस्कार दिया और महाराज कंस से कहकर उसको विशेष अंगरक्षकों का अधिकृत नियुक्त करवा दिया था। किंतु योद्धा बाहुक को मात्र कंस के महामल्लों की सेना से संबद्ध अधिकार दिए गए थे। वही उन सब मल्लों का ध्यान रखता था और स्वयं भी मल्लविद्या का अभ्यास करता-कराता रहता था। किंतु प्रलंब की अपेक्षा उसको अधिक महत्त्व नहीं मिलता था। अंजलिका को यों तो महारानी अस्ति ने आश्वासन दे ही रखा था कि समय आने पर वह धनुर्धर मल्ल बाहुक को भी सेना में विशेष पद दिलवा देगी।

स्वयं पत्नी के मुंह से प्रलंब की धृष्टता के विषय में सुनकर बाहुक को क्रोध तो आया ही। उसने अंजलिका का अपमान किया था, इस कारण बाहुक ने अवसर आने पर प्रलंब को शिक्षा देने का निर्णय भी क़र लिया। किंतु प्रलंब को अचानक ही तो कोई दंड दिया नहीं जा सकता था—वह राजा कंस के सबसे प्रिय योद्धाओं में से था! बाहुक अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। उसने सोचा था कि कभी अवसर मिलने पर वह प्रलंब को द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारक़र राजा के सामने ही उसका वध कर देगा। इस प्रकार उसकी प्रिया अंजलिका के साथ जो अनाचार हो रहा है, उसका प्रतिशोध भी हो जाएगा और प्रलंब के स्थान पर उसकी नियुक्ति भी हो जाएगी। इसमें कोई संदेह नहीं था, क्योंकि अंजलिका को दिए गए वचन के अनुसार, महारानी अस्ति तो उसका साथ देंगी ही।

किंतु अवसर आने के पहले ही एक दिन प्रलंब और बाहुक उत्तमा गंधर्वी की पानशाला में एक साथ बैठकर मदिरापान कर रहे थे। उस समय कीकट प्रलंब ने मदमत्त होकर बाहुक से कहा, ''मैं तो तुम्हारी पत्नी सुंदरी अंजलिका के लिए प्राण भी दे सकता हूं! हम-तुम तो मित्र हैं, बाहुक। और तुम्हारी पत्नी आखिर है तो अप्सरा ही! सबको सुलभ होती है अप्सरा रमणी तो! तुम क्या मेरी इच्छा नहीं पूरी करोगे? इसके बदले में तुम चाहो तो मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं....''

''तो तुझे अपने प्राण ही देने होंगे, प्रलंब!'' कहता हुआ बाहुक सहसा ही उठकर वहां से चलने लगा। किंतु प्रलंब ने लपककर उसको पकड़ लिया। बोला, ''प्राण लेने को कहो तो मैं यह भी कर सकता हूं!'' और सहसा अपना खड्ग निकालकर उस पर वार कर दिया। उसका प्रहार इतना तीक्ष्ण और घातक था कि बाहुक गिरकर तड़पा और तत्काल उसके प्राण निकल गए।

वहां जो भी थे, वे सभी प्रलंब के अधीन थे और प्रलंब पर राजा कंस तथा स्वयं महारानी की कृपादृष्टि है, इसके विषय में भी जानते थे।

उनसे राजपुरुषों तथा मंत्रियों को यही सूचना मिली कि स्वयं बाहुक ने सहसा प्रलंब को ललकारकर उस पर आक्रमण कर दिया था। किंतु मदिरापान से उन्मत्त होने के कारण वह प्रलंब के साधारण-से प्रहार से भी बच नहीं सका और गिर गया। प्रलंब ने तो उसके हित की ही बात कही थी, किंतु मदिरा से धुत्त बाहुक को बिना कारण ही क्रोध आ गया और वह मरने-मारने पर उतारू हो गया। मदमत्त बाहुक में द्वंद्व करने की शक्ति नहीं थी! प्रलंब ने तो मात्र आत्मरक्षा के लिए खंग चलाया था। मदिरा से धुत्त बाहुक तो अपने-आप ही झूलकर मुंह के बल ठीक खंग पर आ गिरा था....''

किंतु अंजलिका को सब कुछ मालूम हो गया था। मदिरा बेचने वाले शौंडिक की पत्नी उत्तमा गंधर्वी ने उसे चुपचाप सब कुछ बता तो दिया था, किंतु अपनी जान बचाने की प्रार्थना भी की थी।

कई दिन तक सोचने के बाद अंजलिका ने इस पर विवाद उठाने का प्रयास नहीं किया। वह जानती थी कि इसका परिणाम शौंडिक की पत्नी बेचारी गंधर्वी उत्तमा को ही भुगतना पड़ेगा। और यह भी हो सकता है कि राजा के समक्ष साक्ष्य देने के लिए पहुंचने से पहले ही उत्तमा भी यमलोक पहुंचा दी जाए। अंजलिका की ओर से एकमात्र साक्षी तो वही थी। और तो सभी प्रलंब के अधीन रहने वाले सैनिक थे। कोई उसके विरुद्ध तो साक्ष्य देने से रहा। वह चुप रह गई।

किंतु पति के हत्यारे से प्रतिशोध की ज्वाला अंबलिका के मन में धधकती रही।

और अंत में उसे अवसर मिल ही गया—उस समय, जब वृंदावन के गोपों की ओर से पूरी तरह विद्रोह-सा हो गया था। कंस की ओर से जाने वाले कितने ही योद्धाओं और चरों का गोपों ने वध कर दिया था। कंस को तो समझ में ही नहीं आ रहा था कि हो क्या रहा है! सहसा ही गोपों को कहां से इतनी शक्ति मिल गई और कहां से उनको इतना धन मिल जाता है कि वे महाबली मथुरापति का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो रहे हैं?

अंजलिका ने इस बीच और भी कितनी ही बातें सुनी थीं। वह निरंतर महारानी अस्ति को सूचनाएं देती रहती थी। अस्ति उससे इस बात पर प्रसन्न थी कि अंजलिका ने उसे एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक सूचना दी थी, जो उसके बड़े-बड़े चर तक नहीं ला सके थे।

वह सूचना यह थी कि नंद के उन दोनों पुत्रों में से एक तो निश्चय ही नंद का पुत्र नहीं है! वह है स्वयं वसुदेव यादव का पुत्र! वास्तव में जिन दिनों नवविवाहिता देवकी और वसुदेव को बंदी बनाकर महाराज ने कारावास में डाला था, उन्हीं दिनों वसुदेव की ज्येष्ठा पत्नी रोहिणी को यादवों ने चुपचाप गोकुल में नंद के यहां पहुंचा दिया था।

यहां तो यह समाचार फैलाया जाता रहा कि रोहिणी को हस्तिनापुर के कुरुवंशी अपने साथ ले गए हैं। वास्तव में रोहिणी कुरुकुल के महान् योद्धा वाह्लीक की पुत्री थीं। वाह्लीक राजा शांतनु के भ्राता थे। उन्होंने शांतनु के लिए अपनी ओर से राजसिंहासन छोड़ दिया था। और स्वयं उनके साथ ही राज्य का पालन करते रहे। आर्य भीष्म उनका सम्मान अपने पिता महाराज शांतनु के समान ही करते हैं। उनकी पुत्री रोहिणी तथा और भी चार पुत्रियों का विवाह शूरसेनराज वसुदेव के साथ ही हुआ था। उनमें से अन्य चारों तो संयोग से इस समय हस्तिनापुर में ही थीं, किंतु अकेली रोहिणी यहां थी, जिसे वृष्णिकुल के यादवों ने वसुदेव के बंदी होते ही चुपचाप यहां से गोकुल, नंद के यहां पहुंचा दिया था।

रोहिणी भी गोपों के साथ संभवतः प्रतिवर्ष मथुरा आया करती है। गोपों का महत्तर नंद अपने साथ प्रायः अंतःपुर की स्त्रियों को भी लाता ही है। उन गोपबालाओं के बीच छिपकर रोहिणी भी आती ही रहती है। यहां नंद के साथ ही वह भी कितनी ही बार वसुदेव से मिलती रहती थी। जिस समय कृष्ण का जन्म हुआ था, उसके डेढ़-दो वर्ष पहले रोहिणी ने अपने पुत्र को जन्म दिया था। वही बालक आज गोपों के बीच अपनी अथाह शक्ति के लिए विख्यात युवक बलभद्र है, जिसे हल एवं मुसल नामक घातक शस्त्रों का कौशल सिद्ध है। इसी कारण उसे हलधर बलदेव भी कहा जाता है।

बहुत कुरेदने पर अंजलिका ने अस्ति को बताया था कि पिछली बार जब नंद अपने दल-बल के साथ वहां आया था तो अंजलिका ने चतुराई से एक गोपी को सखी बना लिया था। उसका नाम था लया! उसे यह पता नहीं था कि अंजलिका स्वयं महारानी की प्रिय सखी है। अंजलिका ने तो उसका विश्वास जीतने के लिए अभिनय करके उसे यही बताया था कि महाराज कंस के एक अनाचारी सेनापति ने उसे बरबस पकड़कर अपनी दासी बना लिया है।

उसकी सारी आशाएं भंग हो चुकी हैं। अब तो वह केवल इसलिए जी रही है कि किसी प्रकार उस अनाचारी का अंत हो जाता तो इस नरक से मुक्ति पाती। किंतु मगध का वह सेनापति बड़ा ही पराक्रमी है—उसको कौन मार सकता है!

अनाचार से दुःखी उस सुंदर युवती को देखकर द्रवित गोपी लया स्वयं ही उसकी सखी बन गई थी! उसने रोते-रोते बताया कि कंस के ही एक सैनिक ने उसका जीवन भी नष्ट कर दिया है। अब तो नंद के पुत्र कृष्ण ने अपनी यशोदा अंबा से कहकर मुझको अपने परिवार में ही रहने का प्रबंध कर दिया है। वह तो आत्महत्या कर लेती। किंतु यमुना की मंझधारा में बही जाती उस गोपिका को बचाकर स्वयं कृष्ण ही अपनी अंबा यशोदा के पास ले आया था।

फिर तो बात-बात में लया गोपिका ने अंजलिका को और कितनी ही बातें बता दी थीं। उसने आश्वासन भी दिया था कि यदि कभी तुम पर अत्याचार करने वाला वह पापी मागध कृष्ण अथवा हलधर के सामने पड़ गया तो वह एक पल को भी जीवित नहीं रहेगा। कंस के उस अनाचारी सैनिक का वध तो बलभद्र ने एक ही मुष्टिकाघात से कर डाला था। अपार बलशाली हैं वे दोनों। हलधर तो मल्लयुद्ध में विख्यात है ही। यशोदा का पुत्र कृष्ण भी पलक झपकते न जाने किस दावं से बड़े से बड़े मल्ल को भी पछाड़ देता है। वे दोनों कहीं एक साथ खड़े हो जाएं तो देवता भी उनसे हार मान लेंगे।

अंजलिका ने बताया था, ''वह गोपिका लया बार-बार एक को ही यशोदा का पुत्र कहती रहती थी, इसलिए मुझे पूछने का अवसर मिल गया कि बलदेव को तो तुम यशोदा का पुत्र नहीं कहतीं, वह क्या नंद की किसी दूसरी पत्नी का पुत्र है? तब उसने हँसकर कहा था, 'वह तो रोहिणी का पुत्र है न! हां, दोनों ऐसे रहते हैं मानो उनके माता-पिता एक ही हों। दोनों में परस्पर इतना नेह है कि पूछो मत। फिर नंद और यशोदा भी तो उन दोनों को समान रूप से ही चाहते हैं। दोनों के बीच किसी भी तरह का भेदभाव नहीं करते। बलदेव तो कृष्ण के लिए अपने प्राण तक देने को तत्पर रहता है। अग्रज होने के कारण वह अग्रज का-सा कर्म भी करता है। और अनुज कृष्ण उसका इतना सम्मान करता है कि यदि बलदेव संकेत भी कर दे तो कृष्ण अपने को निछावर कर देगा।' ''

महारानी अस्ति ने सब कुछ सुनने के बाद अंजलिका को आदेश दिया था कि किसी प्रकार लोभ दिखाकर वह गोपी लया को अपने साथ यहां ले आए। किंतु तब तक नंद का दल यहां से लौटकर वृंदावन जा चुका था। हां, आगे के लिए अंजलिका ने वचन दिया कि अब की बार आते ही वह लया को

किसी बहाने से लेकर अवश्य राजभवन में आ जाएगी। फिर उसे यहीं रोकने का उपाय महारानी स्वयं कर लेंगी।

महारानी ने उसी समय निश्चय कर लिया था कि गोपी को आते ही वह प्रलंब जैसे प्रचंड पौरुष के धनी को सौंप देंगी, फिर तो वह अपने सारे दु:ख भूल जाएगी। पति के अभाव में उसको जितनी भी पीड़ा उठानी पड़ी हो, प्रलंब को पाने के बाद उसकी सारी पीड़ा दूर हो जाएगी। फिर तो वह अपने को सबसे सफल औंर भाग्यशालिनी नारी कहेगी....

महारानी की इस बात को सुनकर धधक उठी अंजलिका। ऊपर से उसने लज्जा के साथ कहा था, ''जब स्वयं महारानी को प्रलंब के पौरूष पर इतना विश्वास है तो वह निश्चय ही भाग्यशाली है!''

अस्ति ने हँसती आंखों से उसकी ओर देखकर कहा, ''तू तो मर्म को जान लेती है, अंजलिका! किंतु तू मेरी सखी है, सो कहती हूं कि वास्तव में प्रलंब ऐसा ही प्रबल पुरुष है। एक बार जिस नारी ने प्रलंब के पौरुष को देख लिया, वह सदा के लिए उसकी कामना करने लगती है।''

भीतर ही भीतर जलती रही अंजलिका। जब महारानी अस्ति इतनी निर्लज्जता के साथ प्रलंब के पौरुष का बखान करती हैं तो फिर प्रलंब की कोई कैसे उपेक्षा कर सकता है? एक बार तो उसका मन हुआ कि प्रलंब की प्रेमिका बनकर ही उसकी हत्या कर दे, किंतु तब तो महारानी भी संभवत: कंस के प्रकोप से उसको नहीं बचा पाएंगी। यद्यपि यह उसकी कल्पना-मात्र थी। महारानी अस्ति तो कंस को अपने रूप-यौवन का दास बना चुकी थीं। वह प्रलंब तो क्या, समस्त मथुरा राज्य पर ही शासन करती थीं! कंस को उनकी बात काटने का कोई अधिकार नहीं था। महारानी अस्ति अकेली ही तो नहीं थीं। जब वह स्वयं कहीं व्यस्त रहती थीं तो उनका काम प्राप्ति करती रहती थी। दोनों अपनी कमनीयता के बल पर कामी महाराज कंस को बांधकर उसकी दास से भी अधिक गई-बीती हालत बनाकर रखती थीं।

अंजलिका को वर्षों पहले की वह घटना आज भी याद है, जब अपने प्रतापी पति कंस को प्राप्ति ने रुठकर कुछ दिन तक ऐसे तरसा दिया था कि कंस को अस्ति के चरण छूकर उसको प्रसन्न करना पड़ा था। तब अस्ति की ओर से दबाव पड़ने पर ही प्राप्ति ने फिर से कंस की शय्या पर पांव रखा था। वह भी तब, जब राजा कंस ने सचमुच उसके पांवों को दास की भांति चूम-चूमकर उसका पदमर्दन किया था!

किंतु महारानी के इस गौरव से इस गहराई तक तो परिचित नहीं थी

अंजलिका। होती कैसे? होती तो तब जब उसमें भी कीकट संस्कारों के अनुसार अनेक पुरुषों का स्वाद पाने की आतुरता होती। कंस को तो मात्र महारानी अस्ति का यौवन दिखता था अथवा प्राप्ति का उन्मादित कर देने वाला मदमाता रूप-यौवन। उसको अब तो राज्य की सुध ही नहीं रह गई थी। प्रजा पर मगध के राजपुरुषों की ओर से कितना और कैसे-कैसे अत्याचार किया जाता है, इसका भी महाराज कंस को पूरी तरह ज्ञान नहीं था। हां, यदि राजसभा में कभी किसी अभागे यादव ने कंस को इसके विषय में कुछ बताया भी तो कंस उस विवाद को विचार करने के लिए स्वयं महारानी अस्ति को सौंप देता था। मागध राजपुरुषों को किसी प्रकार का दंड देना तो कंस के वश का था भी नहीं। ऐसे विवादों को महारानी अस्ति ही सुलझाती थीं। और होता यही था कि अधिक से अधिक उस राजपुरुष को कहीं और नियुक्त कर दिया जाता था। किंतु अपराधी कोई यादव होता था तो वह एकाध दिन के भीतर ही या तो सहसा राज्य से दूर चला जाता था अथवा किसी जघन्य अपराध के आरोप में वह कालकोठरी जैसे बंदीगृह में पहुंच जाता था। ऐसे कितने ही निर्दोष यादव आज भी कारावास में पड़े सड़ रहे थे।

सोलह

वृंदावन में गोपों के बीच वास्तव में वे दोनों उत्पाती युवा शूरसेनवंशी वसुदेव के पुत्र हैं, यह भेद कंस के गुप्तचरों ने भी खोज ही निकाला और कंस को सावधान कर दिया। कंस को इतना क्रोध आया था कि यदि वश चलता तो वसुदेव की हत्या बंदीगृह में ही करवा देता, किंतु महारानी अस्ति ने ही नहीं, मगध के नीतिज्ञ मंत्रियों ने भी उसको ऐसा करने से रोका, क्योंकि ऐसा करने पर तत्काल ही यादवों में विद्रोह हो जाने की आशंका थी।

किंतु गोपों के बीच छिपकर पलने वाले उन दोनों युवा यादवों का वध कर देना ही संगत होगा—इस बात से अब सभी सहमत थे। मगध के कितने ही मंत्रियों ने कंस को अपने देश के ज्योतिषियों के माध्यम से यह विश्वास दिला दिया था कि कृष्ण ही वसुदेव का देवकी से उत्पन्न आठवां पुत्र है और उससे कंस को निश्चय ही प्राणभय है। कौन जाने इसमें कितना सत्य था और कितना भेद, किंतु कंस को तो पहले से ही विश्वास था कि निश्चय ही वह देवकी का आठवां पुत्र है! उससे ही तो कंस को प्राणभय है! उसने उन दोनों को गोकुल में ही मरवा देने का हर उपाय कर लिया था, किंतु सफल नहीं हो पाया था, इस कारण उसकी आशंका और भी गहरी होती जा रही थी।

महारानी अस्ति स्वयं भी अब चिंतित हो उठी थी।

उस दिन चिंता से ग्रस्त, विह्वल अस्ति ने अपनी विश्वस्त सखी अंजलिका से मंत्रणा करने लगी। वह कोई ऐसा उपाय करना चाहती थी कि कंस की इच्छा के अनुसार, उन दोनों गोपों का वध भी हो जाए और किसी को ऐसा न लगे कि यह सब राजा की इच्छा से हो रहा है। यादवों के भीतर अब तक कंस के प्रति आक्रोश है। और उधर मगध के चक्रवर्ती का कोई आदेश नहीं आया। यदि वह आक्रमण करके पहले ही यादवों की शक्ति तोड़ देते तो उत्तम होता। वस्तुत: कंस को जामाता बना लेने के बाद मगधपति के लिए सीधे मथुरा पर आक्रमण करना भी तो असंभव हो गया है! ऐसे में तो यही हो सकता है कि मथुरापति कंस की ओर से प्रचंड दमनचक्र चलाकर द्रोही यादवों को बरबस वशीभूत कर लेने का प्रयास किया जाए। किंतु वर्षों से इतने यत्न करने पर भी अब तक सेना में मगध के सेनापति ही अधिक हैं। सैनिक तो अधिकतर यादव ही हैं। उनसे हम छोटे-मोटे अनाचार तो करवा लेते हैं, किंतु वसुदेव और देवकी को बंदी बनाकर रखने पर ही इतनी आपत्तियां उठाई जाती हैं कि उनको शांत करना कठिन हो जाता है। ऐसे में तो और कुछ सोचा ही नहीं जा सकता।

अंजलिका ने साहस करके कहा, ''देवी, क्षमा करें। मगधपति तो नीतिज्ञ हैं और आप दोनों पुत्रियों से उनको यही आशा रही होगी कि आप दोनों महाराज को वश में करके, उनको अपने अनुसार ढालकर यहां सहज ही मगध का प्रभाव प्रतिष्ठापित कर देंगी।''

''सो तो मैं भी समझती हूं, अंजलिके....अच्छा, तू आज ही किसी दूत को मगध जाने को कह दे। मैं एक पत्र लिखे देती हूं कि महाराज मगध से अपने सर्वश्रेष्ठ मल्लों को अविलंब यहां भेज दें। अब तो यही उपाय है कि किसी प्रकार गोकुल-वृंदावन में उन युवा गोपों को ललकारकर मल्लयुद्ध में ही उनका वध कर दिया जाए।''

अंजलिका ने कुछ कहना चाहा किंतु चुप रह गई।

अस्ति को लगा कि वह संकोच कर रही है। बोली, ''तू कह तो, सखी! क्या कहना चाहती है? मैं तो वास्तव में इस अराजकता से थक गई हूं!''

''महारानी, इस तरह निराश होंगी तो मथुरा का और स्वयं मगध का भविष्य क्या होगा? चक्रवर्ती सम्राट् को तो आप पर सदा गर्व रहा है कि आप उनके पुत्रों से भी अधिक चतुर नीतिज्ञ हैं। यदि आप ऐसा पत्र लिखेंगी तो मगधपति क्या सोचेंगे? ऐसे यदि आप चाहें तो पत्र लिखवा ही दें, किंतु मेरे मत से तो पहले से ही जो मल्ल योद्धा यहां हैं, उनको ही भेजकर सहज ही उन दोनों का अंत करवाया जा सकता है।''

''कैसे? तू किसकी बात कह रही है?''

''मैंने तो बार-बार महारानी से ही सुना है.... उन श्रेष्ठ महामल्ल की तो आप स्वयं इतनी प्रशंसा करती रहती हैं! वे दोनों कोई अपराजेय योद्धा तो हैं नहीं, देवी! मैंने तो जो कुछ उस गोपी लया से सुना, उससे यही लगता है कि उन दोनों पर विशेष स्नेह होने के कारण ही गोप उन्हें इतना महान् मानते हैं। सच्ची बात तो यह है कि वे हमारे महाराज के महामल्ल प्रलंब का एक पल को भी सामना नहीं पाएंगे! महामल्ल प्रलंब के रहते यदि देवी ने मगध ऐसी सूचना भेजी तो स्वयं उनको ठेस ही तो लगेगी कि देवी ने उनकी अवहेलना कर दी....और एक बात तो निश्चित ही है कि ऐसे में मगधपति की दृष्टि से भी महामल्ल प्रलंब उतर जाएंगे....और तब महाराज न जाने क्या आदेश दें! यह भी तो हो सकता है कि उनको अयोग्य मानकर वह तत्काल उन्हें यहां से बुलाकर दंड ही दें....''

''नहीं, नहीं!'' अस्ति पर वही प्रभाव पड़ा जो अंजलिका चाहती थी। अस्ति को सब स्वीकार था, किंतु प्रलंब को मगधराज के क्रोध का भाजन वह नहीं बना सकती थी। और ऐसा करके वह सचमुच अपना मूल्य भी तो पिता की दृष्टि से गिरा रही है। उसने आतुर होकर कहा, ''सखी, तूने तो मेरी रक्षा कर ली। मैं तो सचमुच इतनी थक-सी गई हूं कि....अब तू आज से ही मेरे साथ परामर्श की अधिकारिणी हो! मैं तुझसे पूछे बिना ऐसा कोई निर्णय नहीं लूंगी। आज तो तूने अपना हित-अहित बिसार कर ही प्रलंब का नाम लिया। मुझे तुझ पर पूरा विश्वास है। मैं जानती हूं कि प्रलंब ने तेरे पति के साथ विश्वासघात किया है। फिर भी, प्रलंब को ऐसा महान् अवसर देने का परामर्श देकर तूने मुझे चकित कर दिया है।''

सशंक होकर अंजलिका बोली, ''देवी, क्षमा करें! मैं तो इस विषय में कुछ नहीं जानती। और यदि जानती ही होती तो भी ऐसे अवसर पर महामल्ल प्रलंब के अतिरिक्त किसी और का नाम नहीं लेती। मुझे तो राजभक्ति के समक्ष अपना जीवन भी हीन जान पड़ता है। आपने और मगधपति ने मेरे साथ जो उपकार किए हैं, उनका तो बस, एक ही उत्तर हो सकता है—मैं आवश्यक हो तो अपने प्राण देकर भी आपका हित करूं।''

आवेश में उस दिन महारानी अस्ति ने अंजलिका को अंक में भर लिया था।

उसी दिन महारानी अस्ति ने महामल्ल प्रलंब को छद्मवेश में जाकर वृंदावन में ही रहने को कहा। दुर्ग में यथासंभव छिपकर उन दोनों का बल-परीक्षण करने और अवसर पाते ही उन दोनों का वध करने की आज्ञा दी।

महारानी ने प्रलंब को आदेश दिया था : ''इसका आभास तक किसी को नहीं मिलना चाहिए! तुम यहां से अकेले ही गुप्त रूप से प्रस्थान करो। तुम्हारी रक्षा के लिए रोचमान यहां से अनेक बलवान सैनिकों को लेकर जाएगा। किंतु तुम दोनों वहां किसी के सामने एक-दूसरे को पहचानने का नाटक तक नहीं करोगे! और दूर ही दूर रहोगे। परस्पर कोई सूचना देनी ही हो, किसी स्त्री के माध्यम से ही लेना-देना। वह भी कोई मेरी चरी ही होगी! हां, तुम दोनों अर्थात् तुम और रोचमान उसकी सहायता मात्र लोगे, किंतु और उस पर शासन नहीं करोगे! वह मेरी प्रतिनिधि होगी!''

महारानी अस्ति की बात से एक बार तो अंजलिका मन ही मन व्यग्र हो उठी—कहीं महारानी उसी को तो चरी के रूप में उनके साथ नहीं भेजना चाहतीं।

किंतु अब महारानी अस्ति का मस्तिष्क फिर से सक्रिय हो गया था और उन्हें संभवत: उस समय अंजलिका की सुध ही नहीं रह गई थी। उनको तो अपने पिता महाराज जरासंध की दृष्टि में अपनी दूरदर्शिता सिद्ध करने की धुन लगी थी!

सत्रह

प्रलंब को मथुरा से गए पूरा पक्ष बीत गया था। वहां रोचमान की सहायता से भांडीर वट के निकट ही दुर्ग बनाकर प्रलंब रहने लगा था। वह सुरक्षित था और उसका रहस्य भी। आसपास कंस के अनेक मागध सैनिक भी थे, अत: भयवश कोई उस और फटकता तक नहीं था। किंतु इतने दिनों से हो क्या रहा है? कोई सूचना नहीं!

रोचमान तथा प्रलंब की सहायता के लिए महारानी की विश्वस्त चरी लोमा गई थी, किंतु उसका भी कोई संवाद नहीं आया....

उस रात महारानी अस्ति का दर्शन करने आई प्राप्ति से अचानक ही एक अप्रत्याशित समाचार मिला, वह भी विचित्र प्रसंग में। प्राप्ति की चरी मालिनी के भाई को प्रलंब ने बांधकर यमुना नदी में फेंक दिया था और उसकी पत्नी को बरबस अपने आवास पर लाकर सारी रात उस पर बलात्कार करता रहा। वह जानता है कि मालिनी स्वयं महारानी प्राप्ति की चरी है, तो भी....

''किंतु प्रलंब तो कोई एक मास से वृंदावन में रहता है। फिर मेरी आज्ञा के बिना....यह कैसे संभव है कि वह मथुरा में हो और मुझे आभास तक न मिले इसका?'' अस्ति क्रोध से कांप उठी। फिर भी प्रलंब के मथुरा आने और

किसी मागध स्त्री पर ऐसा अत्याचार करने की बात उसे अविश्वसनीय लग रही थी। प्रलंब उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके बिना सूचना दिए मथुरा आए और....और स्वयं अस्ति की उपेक्षा करके किसी साधारण-सी युवती के साथ....

''नहीं! असंभव! मालिनी को अवश्य भ्रम हुआ होगा!'' अस्ति ने तीक्ष्ण दृष्टि प्राप्ति पर डाली।

प्राप्ति को लगा कि प्रलंब पर महारानी अस्ति को इतना विश्वास है कि स्वयं उसकी अवहेलना कर रही हैं! फिर भी संयत रहने की चेष्टा करती हुई दृढ़ स्वर में बोली, ''मालिनी ने स्वयं प्रलंब को देखा है और....और मालिनी कभी मुझसे झूठ नहीं बोल सकती।'' फिर वह हँस दी। बोली, ''झूठ भी प्रलंब के विषय में! महारानी के प्रिय अनुचर के विषय में झूठ बोलने का साहस तो स्वयं मैं भी नहीं कर सकती!''

प्राप्ति कुछ आहत-सी विदा लेकर चली गई।

प्राप्ति के शब्दों में छिपे गूढ़ संकेत से अस्ति तिलमिला उठी। उसने तत्काल अंजलिका को आदेश दिया, ''तू इसी समय प्रलंब के आवास पर जा और अपने साथ ही लाकर मेरे समझ प्रस्तुत कर!''

अंजलिका के हृदय में तो प्रलंब का नाम सुनकर ही ज्वाला-सी उठने लगी। वह राजप्रासाद से निकल तो पड़ी, किंतु बड़ी देर तक ऐसे ही भटकती रही....

अचानक ही उसको वही यादव संभव याद आ गया। एक पल को तो अंजलिका विचलित-सी होकर जहां की तहां रुकी रही। फिर मन में ठान लिया अब और क्या हो जाएगा? जो होना था, वह तो हो ही चुका है। अब तो उसका पति फिर से मिलने नहीं आएगा। लेकिन प्रलंब का जीवित रहना अंजलिका के लिए अब असह्य हो गया था। वह तो सोचती थी—यदि किसी प्रकार महारानी को आभास हो जाता कि प्रलंब ने ही उसके पति की छिपकर हत्या कर डाली थी तो वह संभवतः उसकी पीड़ा समझकर उस असुर को दंड देती। किंतु जब उसने स्वयं महारानी से ही सुन लिया कि वह पहले से ही जानती हैं कि प्रलंब ने उसके पति बाहुक की छल से हत्या कर दी थी, और इतने पर भी महारानी अस्ति का प्रलंब के प्रति मोह जरा भी क्षीण नहीं हुआ था, तो अंजलिका का मन टूट गया। उसको लगा कि अब तो उसका कोई अवलंब नहीं रह गया। किससे कहकर वह अपनी पीड़ा का निराकरण करे?

जिस समय अंजलिका प्रलंब का पता लगाने के लिए महारानी अस्ति द्वारा

भेजी गई थी, उसी समय सहसा सुरंगिणी प्रासाद में आई। उसने सहमती-कांपती आवाज में महारानी को अंजलिका के विषय में एक विचित्र-सा संवाद दिया....

अस्ति को पहले तो विश्वास नहीं आया कि स्वयं अंजलिका ही अपने पति बाहुक की ओर से विरक्त होकर प्रलंब की ओर आकर्षित हो गई होगी। किंतु जीवन में अस्ति ने बहुत कुछ देख लिया था। इतनी-सी वय में ही महारानी अस्ति को पुरुष और स्त्री के देह-संबंधों के विषय में विपुल ज्ञान हो चुका था। फिर भी उसने सुरंगिणी की बात को सुनकर जैसे उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया, न तो ऐसा आभास ही दिया कि वह अंजलिका की इस वृत्ति से अप्रसन्न हो रही है। वह सुरंगिणी को ही तीक्ष्ण सौवीरी मदिरा लाने को कहकर शय्या पर अधलेटी पड़ी सोचने लगी।

यदि ऐसा ही है तो फिर निश्चय ही अंजलिका और प्रलंब का यह प्रणय-प्रसंग बहुत पहले से चल रहा होगा! संभवत: मगध से ही। तो फिर अंजलिका पति घातिनी भी है! ये दोनों ही योद्धा बाहुक की मृत्यु के लिए उत्तरदायी हैं....बस!

सुरंगिणी से तो यह तथ्य पुष्ट हो ही गया था कि इन दिनों प्रलंब मथुरा में है! वृंदावन में वह भांडीर वट के निकट ही अपना दुर्ग जैसा सुदृढ़ भवन बनवाकर वहीं स्थायी रूप से रहने की सोच रहा है। इसके लिए उसने महाराज कंस की आज्ञा भी प्राप्त कर ली थी। अस्ति के सुंदर मुखमंडल पर अचानक हलकी-सी मुसकान आकर ठहर गई। वह बोली, ''तो फिर अब प्रलंब अपनी पत्नी और परिजनों को भी वहीं ले जाएगा....और अंजलिका को?''

यह बात सुरंगिणी को विचित्र-सी लगी। उसको लगा, अब महारानी अस्ति की ओर से प्रलंब के लिए कोई विशेष आदेश अवश्य ही दिया जाएगा।

लेकिन सुरंगिणी ने उसी समय अपना मत मन ही मन पचा लिया। महारानी के आदेश के विषय में पहले से ही कोई अनुमान लगाने का अर्थ तो सुरंगिणी जानती ही थी!

अंजलिका उसी समय लौट आई।

लेकिन उसके आने पर महारानी ने स्वयं कुछ नहीं पूछा तो वह कांप उठी। उसको लगा कि अब तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर पाने के पहले संभवत: स्वयं उसको ही मृत्यु का आलिंगन करना होगा! ऐसे तो अंजलिका को अब जीने-मरने में कोई अंतर नहीं जान पड़ता था! मर जाना ही उसे अब जीवन से कहीं अधिक सुखद प्रतीत होने लगा था। किंतु महारानी की कृपा उस पर हो, तभी तो! महारानी अस्ति की तीक्ष्ण द्वेष-भावना किसी को भी ऐसी सहज मृत्यु कहां देती है?

तो भी महाकाल प्रबल होता है। जो होना होगा, हो ही जाएगा। उसे न तो अंजलिका बदल पाएगी, न महारानी अस्ति ही बदल सकती है।

उस समय महारानी अस्ति आंखें मूंदे पड़ी विश्राम कर रही थी। हरीतिमा-मिश्रित-सा गौर वर्ण उसकी देह की शोभा का विलक्षण आधार था। मन ही मन विकल अंजलिका बड़ी देर तक उस सुंदरी नागिन को देखती रही। फिर वह चुपचाप जाने को ही थी कि महारानी की मदिरा से रक्तिम आंखें खुलीं। वह हँसकर बोली, ''प्रलंब नहीं मिला न? तू भी उसके परिजनों के साथ वृंदावन ही चला जा, अंजलिका!'' कहती-कहती वह विचित्र हँसी के कारण जगमगाती दंतावली से मानो सारे कक्ष में उजाला-सा फैलाती हुई बोली, ''तू प्रलंब को वहीं जाकर पा सकेगी....सदा-सदा के लिए....जाएगी न, अंजलिका?''

महारानी की पुतली अधमुंदी आंखों में हिंस्र चमक थी।

फिर भी अंजलिका सहज स्वर में बोली, ''यदि महारानी का आदेश हो तो दासी जाने को तैयार है....किंतु महारानी का आदेश हो, तभी! दासी को क्या करना होगा वहां जाकर?''

अस्ति की आंखों में फिर ऐसी लपक-सी उठी मानो वह नागिन की तरह उसे डस लेने को आतुर हो। हँसती हुई बोली, ''यदि तुझे प्रलंब की कामना हो तो मैं उसको भी अवश्य आदेश दूंगी, सखी! मैं जानती हूं कि मेरे लिए ही प्रलंब ने कितना महान कार्य किया होगा! महाराज को तो अब तक मैंने पता नहीं लगने दिया, किंतु यदि तू चाहे तो मैं प्रलंब से कहूंगी कि तेरे लिए वह वहीं अपने दुर्ग में एक सुंदर कक्ष और बनवा देगा।''

घृणा-भरे आवेग से कांपती अंजलिका ने कहा, ''महारानी सर्वशक्तिमती हैं। महाराज तो स्वयं भी महारानी की ही इच्छाओं का पालन करने में गर्व अनुभव करते हैं।''

''प्रलंब भी करेगा, सखी! किंतु वह तेरी इच्छाओं का दास भी तो है! मुझे तूने पहले ही कह दिया होता तो मैं उसको मथुरा से जाने ही नहीं देती....''

अंजलिका स्तंभित-सी खड़ी रही। वह महारानी के मन में अपने प्रति भ्रमवश उपजी इस भीषण द्वेषभावना के आकस्मिक विस्फोट से अवाक् रह गई थी।

अंजलिका की ओर देखती महारानी ने सहसा लहराकर विषाक्त स्वर में कहा, ''अब विदा की वेला में मेरी ओर से तुझे एक वर भी तो देना अनिवार्य है न! तू बहुत दिनों तक मेरी सखी रही है! प्रलंब का भी तो मुझ पर ऋण है। तू स्वयं जो भी चाहती हो, एक वर मांग ले, अंजलिका!''

और अंजलिका को मानो महाकाल ने ही ऐसा अवसर दे दिया हो। बोली, ''दासी पर महारानी की अनुकंपा ही हो रही है तो मेरी मात्र वही एक कामना है, देवी! आप क्रोध में हैं! तो भी मेरा आग्रह है कि एक बार प्रलंब को अवसर दें कि वह महाराज की आज्ञा के अनुसार, तत्काल उन दोनों युवा यादवों का वध कर दे...मेरी अन्यतम कामना यही है।''

महारानी अस्ति की सुंदर आयत आंखों में तीखी कौंध-सी उठी। वह हँसती हुई बोली, ''यह तो तू पहले ही कह चुकी है! और प्रलंब को वहां भेजा तो इसी कारण मैंने....अस्तु तेरी मनोकामना पूरी हो, अंजलिका। यदि प्रलंब यह कार्य कर देगा तो निश्चय ही महाराज उससे प्रसन्न होकर उसे समस्त व्रज-क्षेत्र का अधिनायक बना देंगे....और तब तू वहां की रानी बन जाएगी। बोल, तू संतुष्ट है?''

''जब स्वयं महारानी का प्रसाद मिल रहा हो तो कौन ऐसा नारकीय होगा, जिसे कोई और कामना होगी!'' अंजलिका ने यंत्रवत कह दिया।

और महारानी अस्ति की आंखें एक बार फिर चमककर सो गईं।

अब अंजलिका को वहां रुकने का कोई काम नहीं था। वह तत्काल ही अस्ति को प्रणाम करके बाहर निकल आई। उसको पूरा विश्वास नहीं आ रहा था—क्या वह सचमुच इतनी भाग्यशालिनी है कि महारानी से वरदान के मिस उसने प्रलंब के लिए एक बार फिर जो अभिशाप मांग लिया है, वह सार्थक हो जाएगा? नहीं, महारानी अस्ति की ओर से उसको शंका नहीं है। वह तो अपना 'वरदान' पूरा करेगी ही। उसे तो इसी प्रकार की क्रूर क्रीडाओं से सुख मिलता है....किंतु अब महाकाल वास्तव में अंजलिका का साथ देगा क्या?

कहता तो वह विक्षिप्त यादव योद्धा संभव भी था....'वृंदावन का वह गोप युवा वास्तव में स्वयं महाकाल का अवतार है! उसकी अवहेलना करने वालों को एक दिन अपने-आप दंड मिलेगा, सुंदरी! तू उस दिन की प्रतीक्षा कर। किसी दिन यह सब बदल जाएगा। वह मथुरा भी आएगा और वह आएगा तो यहां का बहुत कुछ उलट-पलट जाएगा! तू नहीं जानती, उसको देवताओं ने अपना कार्य करने के लिए ही इस पृथ्वी पर भेजा है। उसने अब तक यही तो किया है....तुमने और कभी सुना है....कैसी अद्‌भुत घटना थी वह! पूतना ग्रह की भांति प्रबल उस सुंदरी का वध एक बालक ने कर दिया! तूने और कहीं सुना है कि किसी बालक ने अपनी एक ही मुष्टिका के प्रहार से भयानक वृषभ का वध कर डाला....और कहीं सुना है कि एक किशोर ने बकासुर जैसे भयंकर दैत्याकार बक को अपनी बांह उसके कंठ में फंसाकर मार डाला

हो....अद्भुत....अद्भुत किंतु सत्य....'

अंजलिका को किसी से भय नहीं लगता। उसको तो महारानी अस्ति से भी ऐसा भय नहीं लगता, जितना उस विक्षिप्त-से यादव संभव से लगता है....वह तो पागल की तरह, यहां-वहां भटकता हुआ असंभव के संभव होने की भविष्यवाणी ही करता रहता है....

और महारानी की सबसे प्रिय, सबसे विश्वसीय सखी अंजलिका आज अभिशप्त-सी है, किंतु वह यही तो चाहती है कि उस विक्षिप्त यादव संभव की वह विकट भविष्यवाणी सच हो जाए। उसकी भविष्यवाणी सत्य होने पर ही तो इस नृशंस हत्यारे प्रलंब का विनाश होगा! और ऐसा होने पर ही अंजलिका का हृदय शीतल हो सकता है।

अठारह

आधी रात की वेला थी। महारानी अस्ति उस समय अपने कक्ष में अकेली ही बैठी थी।

सहसा अप्सरा अंजलिका ने आकर धीमे से कहा, ''वृंदावन से रोचमान आया है स्वामिनी! तत्काल देवी का दर्शन करना चाहता है।''

अस्ति ने सशंक और प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर ताका।

अंजलिका ने सिर झुकाकर सपाट स्वर में कहा, ''उन उपद्रवी गोपों ने महामल्ल प्रलंब का भी संहार कर दिया, देवी!''

महारानी अस्ति सुनते ही तनकर खड़ी हो गई। उसकी आंखों से आग-सी बरसने लगी।

उसने पल-भर सोचा, फिर अंजलिका को तत्काल रोचमान को वहीं बुला लेने को कहा। साथ ही आदेश दिया कि अंजलिका स्वयं ही द्वार पर रहकर आज्ञा की प्रतीक्षा करे, और इस बीच किसी को भीतर न आने दे। स्वयं मंत्री अक्रूर हों, तो भी नहीं।

अंजलिका के लिए यह संवाद नया नहीं था। वह जानती थी कि महारानी अस्ति प्रलंब को अपना अनन्य मित्र मानती थी और उसके प्रति उनके मन में विशेष नेह भी रहा है। प्रलंब वास्तव में तो महारानी की इच्छा पर ही गोकुल भेजा गया था। वह मन ही मन हँसती हुई चली गई।

और अंत तक इस प्रकार अंजलिका का प्रतिशोध पूरा हुआ था! उसने मन ही मन अपने पति बाहुक को, और फिर उनकी हत्या का प्रतिशोध लेने वाले उस

बलशाली गोप युवा को प्रणाम किया। महारानी अस्ति तो उस समय रोचमान से प्रलंब के साथ घटित अनहोनी का विस्तार से विवरण सुनने में खो गई थीं। अंजलिका पल-भर सोचती रही फिर चुपचाप बाहर निकल आई। फिर राजभवन को अंतिम प्रणाम करके वह चल पड़ी। वह महारानी अस्ति की विशेष परिचारिका थी, अत: उसको सभी जानते थे। उसके पास महारानी की ओर से मिली मुद्रा भी तो थी! उसको कहीं भी अबाध प्रयाण करने की सुविधा प्राप्त थी।

प्रलंब के मारे जाने का समाचार प्राप्ति के शयनागार में जाकर स्वयं महारानी अस्ति ने पछतावे के साथ महाराज कंस को दिया तो वह स्तंभित रह गया! उसकी आंखों के सामने अंधकार छा गया। कुछ देर तक तो वह बोल ही नहीं सका।

अस्ति ने निकट ही बैठी प्राप्ति की ओर आंखों से ही संकेत किया। वह उठी और तत्काल सौवीर की तीक्ष्ण सुरा चषक में लिए इठलाती हुई कंस के पास आकर उसके अंक में बैठ गई। हँसती हुई बोली, ''हमारे महाराज को प्रसन्न करने के लिए तो मगधपति ने अपनी दो-दो अप्सरा जैसी दुहिताओं को नियुक्त कर रखा है, फिर भी महाराज चिंता से व्यग्र होते हैं! सोचिए भला, मगधपति हमको क्या दंड देंगे!''

उसने कंस के होठों से सुरा का चषक लगा दिया। प्रिया के तन का स्पर्श और सुरा का चषक पाकर कंस ने बिना कुछ सोचे भारी-सा घूंट ले लिया। उसांस भरकर बोला, ''मगधपति दंड देंगे तो मैं ले लूंगा, प्रिये, तुमको कोई दंड नहीं देने दूंगा।'' और प्राप्ति को आवेश के साथ भींचकर अस्ति को देखता हुआ बोला, ''ये हमारी महारानी जब चिंता करने लगती हैं तब मैं तो ऐसे ही विकल हो जाता हूं।''

कुछ ही देर में प्रलंब के वध की चर्चा डूब गई!

कंस आज जैसे अपनी दुर्लभ प्रिया महारानी अस्ति से अपने मन की अतृप्त कामना प्रकट करने का अवसर पा गया हो। अस्ति के संस्कार ऐसे तो मगध की कीकट संस्कृति से ही रचे-बसे थे, किंतु प्रलंब के विषय में उसके मन में कहीं कोई कोना अवश्य ऐसा था कि वह व्यथित थी। इसी कारण पति की ओर से इस समय प्रणय का आवेग उसे जरा भी नहीं भाया। वह किंचित रुष्ट-सी होकर उठ खड़ी हुई। बोली, ''महाराज, अभी तो प्राप्ति की माया के वशीभूत हैं! इसलिए इस समय आपको ऐसी ही बातें अच्छी लगेंगी। मैं फिर आऊंगी।'' कहकर वह तत्काल द्वार से बाहर निकल आई।

कंस के साथ अस्ति का कोई मोह का नाता रहा ही न हो, ऐसा नहीं। शूरसेन जनपद का अधिपति कंस उसको बड़ा प्रिय था। किंतु अस्ति की रचना किसी और ही धातु से हुई थी! वह जितनी ही सुंदर थी, उसका मन उतना ही कठोर था। प्राप्ति प्राय: यही कहकर अस्ति की ओर से कंस के मन का आवेग शांत करने की चेष्टा करती थी, "हमारे महाबली पिता को अग्रजा अस्ति अधिक प्रिय थीं। वह इनको यही तो बनाना चाहते थे जो यहां महाराज की प्रिया बनकर उन्हें अपने-आप ही बन जाना पड़ा है। वह किसी का शासन नहीं मानतीं। ऐसा लगता है कि अस्ति का जन्म वास्तव में शासन करने के लिए हुआ है। आपने देख तो लिया कि जिन यादवों से आप सशंक रहते थे, अस्ति ने मथुरा आने के बाद उनको किस तरह से या तो अपने पक्ष में कर लिया अथवा उनका विनाश कर दिया। वह बीच का मार्ग नहीं अपनातीं। इधर या उधर! मुझसे तो वह प्राय: कहती रहती हैं कि तेरा काम महाराज को भरपूर आनंद देकर उनको मन से संतुष्ट और तन से तृप्त रखना होगा! और मेरा काम होगा, महाराज को राज्य की चिंताओं की ओर से मुक्त रखना।"

अस्ति वास्तव में ऐसा ही करती थी। किंतु कंस प्राप्ति जैसी सुकुमार भावनाओं वाली सुंदरी का सुख मिलने पर भी अस्ति के लिए आतुर रहता था। अपनी पत्नी होने पर भी अस्ति उसे कितनी दुर्लभ लगती थी! और कंस को किसी भी दुर्लभ वस्तु को अपनी बनाने का हठ सदा से रहा है। इसी कारण तो वह आज मथुरा का राजा है। इसके लिए उसे भले ही स्वयं अपने पिता महाराज उग्रसेन तक को बंदीगृह में डालना पड़ा, तो भी वह मथुरा का निरंकुश शासक बनना चाहता था और बनकर रहा। शूरसेन जनपद का अधिपति बनने के बाद कंस को लगता था कि अब तो पूरे उत्तरापथ का अधिपति बनकर ही उसे संतोष मिल सकता है। और अस्ति वस्तुत: इसी प्रयास में लगी रहती है। तो भी कंस उससे इस तरह से विलग तो नहीं रहना चाहता! अस्ति को वह पूरी तरह से पहले अपनी बनाना चाहता है, फिर वह मथुरा की पट्टमहिषी बनकर रहे, तो रहे।

किंतु अस्ति की प्रकृति कुछ और ही थी। वह जीवन में अपने कार्यों की सफलता को ही प्राथमिकता देती थी। कंस से विवाह करके उसको राजरानी बनने का और शासन करने का अवसर तो अवश्य मिला है, लेकिन इसके लिए भी वह अपने को पूरी तरह कंस के समक्ष समर्पित तो नहीं कर सकती! अस्ति का अपना अस्तित्व उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है! उसके बाद ही सारा संसार आता है।

प्रलंब को गोकुल भेजकर उसने सोचा था कि वह निश्चय उन दोनों युवा गोपों का वध करके ही मथुरा आएगा। किंतु उन गोपपुत्रों ने प्रचंड बलशाली प्रलंब की भी हत्या कर दी! अस्ति का मन पहली बार हिल उठा था। उसे तो कल्पना तक नहीं थी कि वे दोनों गोपपुत्र वास्तव में इतने बलशाली होंगे।

रोचमान ने महारानी के आग्रह पर विस्तार से प्रलंब के वध का विवरण सुना रहा था और अस्ति विचारों में खोई थी।

प्रलंब जब मथुरा से चला तो मन ही मन खिन्न था कि उसको महाराज के अंगरक्षकों का ज्येष्ठक होने पर भी आज साधारण-से वधिक का कार्य सौंपा गया है। किंतु महारानी ने उसको इन दोनों के विनाश के लिए भेजते समय कहा था कि महाराज उनके मारे जाने पर प्रसन्न होंगे और प्रलंब को उसके योग्य और भी उच्च पद दिया जाएगा। साथ ही उसे संकेत-सा दिया गया था कि अस्ति की इच्छा है कि अब यहां से मागध सेनापति करुष को वापस मगध भेज दिया जाए क्योंकि वह मगधपति की सेवा में ही रहने को उत्सुक रहता है। तो फिर महाराज को एक सेनापति की आवश्यकता भी होगी ही। इस विषय में प्रलंब से तभी विचार-विमर्श होगा, जब वह वृंदावन से लौटकर आ जाएगा।

मथुरा के सेनापति के पद के लिए प्रलंब से विचार-विमर्श का क्या अर्थ हो सकता है? स्पष्ट था कि महारानी अस्ति उसको ही इस महत्त्वपूर्ण पद पर लाना चाहती थीं। और जो प्रलंब ने किसी को बताया नहीं था और न स्वयं अस्ति ने ही किसी को संकेत दिया था, वह तो रोचमान जानता ही नहीं....जिस आधार पर प्रलंब इतना आशावान था, यह गूढ़ रहस्य तो स्वयं महारानी अस्ति ही जानती थीं!

और इसी बात को सोच-सोचकर महारानी अस्ति के मन में पीड़ा कसक उठती है....

लेकिन अब तो प्रलंब रहा ही नहीं। अस्ति को पीड़ा अवश्य हो रही है, किंतु उसका स्वभाव तो किसी के वियोग में रोने का नहीं है। हां, वे दोनों युवा गोप— नंद अथवा वसुदेव के वे दोनों पुत्र अब केवल महाराज कंस के ही नहीं, स्वयं महारानी अस्ति के परम वैरी हो गए थे!

कुछ समय पहले तक तो अस्ति भी प्राप्ति की ही भांति यह सोचकर हँसती थी कि मथुरा के अधिपति को अपने घर में ही बैठे सहस्रों यादव शत्रुओं से उतना भय नहीं लगता, जितना उन दो उत्पाती युवा गोपों से। प्राप्ति तो इन दिनों महाराज का इतना पक्षपात करती है, किंतु एक समय वह था कि....

वर्षों पूर्व जब कंस ने गोकुल में ही कहीं वसुदेव-पुत्र के छिपे होने के

संदेह मात्र से उत्तेजित होकर सहसा आदेश दे दिया था कि गोकुल-वृंदावन के आसपास के क्षेत्रों तक पांच वर्ष से छोटे जितने बालक हों, उनकी किसी न किसी प्रकार हत्या कर दी जाए। उनमें ही कहीं वह भी होगा, जिसको हमारा प्राणघाती शत्रु कहा जाता है!

ज्योतिषियों की यह बात इतनी प्रचारित की जा रही थी कि महारानी अस्ति को विश्वास हो चला था– अवश्य कोई कुटिल, धूर्त शत्रु कंस को हर पल सशंक, भयभीत और अस्थिर रखने के लिए ही यह सब करवा रहा है। कंस को अपने पराक्रम पर सचमुच विश्वास नहीं रह गया था। आत्मविश्वास से हीन वह हर पल अपनी मृत्यु के दुःस्वप्न देखा करता था! लगता था कि उसका वह धूर्त, चतुर शत्रु मन से उसकी हत्या कर ही चुका है! कंस इतना आतंकित रहने लगा था कि मथुरा जैसे समर्थ राज्य का अधिपति होने पर भी वह सुख और आनंद को भूलकर हर पल मात्र अपनी मृत्यु के विषय में ही सोचता रहता था।

इस आतंक से तभी तो छुटकारा मिल सकता था, जब उसको विश्वास हो जाए कि जिसे उसकी मृत्यु का कारण माना जाता है, उसे ही कंस की आज्ञा से मृत्यु के मुख में पहुंचा दिया गया। कभी-कभी तो कंस को लगता कि यह तो बहुत ही सरल है। ऐसे मृत्यु के वाहक को तो कंस दिन में कितनी ही बार मार सकता है! और उसी समय से कंस को प्रसन्न करने वाले उसके अनुचर अपनी-अपनी युक्ति से नंद के यहां पलने वाले उस शत्रु को कुचल देने के लिए निरंतर युक्ति करते रहे। किंतु कितने आश्चर्य की बात है कि उसको मारने का लक्ष्य लेकर गए कितने ही बलवान योद्धा स्वयं मारे गए थे। ऐसा लगता मानो वह सचमुच दैवी शक्ति से संपन्न है, नहीं तो उसको मारने की कोई युक्ति सफल क्यों नहीं होती!

उसके विषय में नित्य ही किसी न किसी चमत्कारी कांड का संवाद मिलता रहता था। कंस को भी पहले तो यह सब सुनकर हँसी ही आ जाती थी, किंतु जब से उसने अनुभव किया कि वह तो सचमुच इतनी-सी वय में अपने से आठगुने भारी योद्धाओं को भी पछाड़ देता है तो फिर विश्वास करना ही पड़ा कि वह सामान्य गोप नहीं, कुछ और ही है....

और अब तो स्वयं अस्ति को भी मान ही लेना पड़ा कि रोहिणी का युवा पुत्र अवश्य किसी और ही तत्त्व का बना होगा नहीं, तो प्रलंब जैसे महान् योद्धा को इस प्रकार एक घूंसे से मार डालना किसी साधारण मल्ल के वश की तो बात नहीं हो सकती। महारानी अस्ति स्वयं भी एक बार उन विलक्षण युवा गोपों को देखने के लिए उत्कंठित हो उठी।

रोचमान ने बताया था—

उस दिन सारे गोपपुत्र भांडीर वट के निकट ही खेल रहे थे। अवसर देखते ही प्रलंब छद्मवेश में जाकर बरबस उनके साथ हरिणाक्रीडन में सम्मिलित हो गया था। उसे देखकर गोपों में परस्पर धीमे स्वर में चर्चा तो होने लगी थी। लगता है, एक अपरिचित गोप को अचानक आकर उस क्रीडा में सम्मिलित होते देखक उन्हें शंका हो गई थी। एक नवयुवा श्रीदामा ने कहा, ''यह कोई गोप थोड़े ही है! दानव जैसा लगता है। उसे भगाओ यहां से।''

किंतु उसी श्याम वर्ण के कृष्ण ने हँसकर कहा, ''तुमको तो न जाने क्या हो जाता है, श्रीदामा! आओ, चलो, पहले अपनी बारी दो। तुम लोगों को वह अच्छा नहीं लगता तो मैं या फिर तात हलधर उसको अपनी जोड़ी मानकर खेलेंगे।''

प्रलंब को और क्या चाहिए? वह प्रसन्न होकर खेलने में लग गया। कृष्ण के साथ तो स्वयं श्रीदामा ने जोड़ी बना ली और प्रलंब को कृष्ण के अग्रज गौर वर्ण के युवा गोप बलभद्र ने अपनी जोड़ी बनाकर अपने पास खींच लिया।

हरिणाक्रीडन खेल के लिए उन्होंने भांडीरवट नामक विशाल वटवृक्ष को लक्ष्य निर्धारित किया था। गोपों की एक के बाद एक जोड़ी हरिणों की भांति उछल-उछलकर उस ओर बढ़ने लगी। बलदेव के साथ उछल-उछलकर लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ प्रलंब हार गया। संभवत: वह अपना काम पूरा करने के लिए जान-बूझकर ही उनसे हारा होगा! फिर तो हारे हुए खिलाड़ी की भांति, नियमानुसार, प्रलंब भी बलभद्र को अपनी पीठ पर लादकर दौड़ते हुए भांडीरवट को छूने के लिए बढ़ा। किंतु उसको तो किसी प्रकार बलभद्र का वध करना था, इस कारण वह बल गोप को पीठ पर लादकर भांडीरवट पार कर लेने के बाद भी भागता ही चला गया। प्रलंब जब बलदेव को पीठ पर लादे तेजी से दूर भागने लगा तो सारे गोप चिल्लाने लगे, ''वह दुष्ट तो बलदेव को लेकर भागा जा रहा है! वह सचमुच कोई पापी असुर है जो कंस की आज्ञा से यहां हमारे दाऊ को मारने के लिए ही आया है!''

कृष्ण ने उस ओर देखा और मुसकरा दिया। उसको तो मानो किसी से भय लगता ही नहीं। वह थोड़ी देर तक तो देखता रहा फिर वहीं से चिल्लाकर कहा, ''तात! उसे मार डालिए! वह कोई दुष्ट असुर है....तुमसे खेल में छल कर रहा है।''

और बलदेव ने सहसा एक ऐसा घूंसा उसके सिर पर मारा कि प्रलंब मुंह से खून उगलता हुआ गिर पड़ा। उसने उठने का प्रयास किया तो, किंतु फिर

से चकराकर गिरा और वहीं ढेर हो रहा। बलभद्र के बस, एक मुष्टिकाघात से प्रलंब निष्प्राण हो गया था....

उसके बाद सारे गोप उसको देखने आए, फिर प्रलंब की ओर घृणा से देखकर उसे कोसते हुए वे व्रज की ओर चले गए।

उन्नीस

अंजलिका ने देवकी को बताया था कि कुलपुरोहित गर्गाचार्य आज ही तीर्थयात्रा से लौटकर आए हैं। आर्य वसुदेव और रानी देवकी की एक बार फिर कारागृह से मुक्ति की सूचना पाकर वह हर्षित हुए हैं और उन्होंने मंत्रिवर अक्रूर से अनुरोध किया है कि यहां आने पर वसुदेव और देवकी से मिलकर वह प्रसन्न होंगे। यदि संभव हो तो मंत्रिवर इसका प्रबंध करवा दें।

अंजलिका दो ही दिन पहले अक्रूर के यहां से आकर स्वयं आर्य वसुदेव के आगार में रहने लगी थी। वसुदेव को अक्रूर ने अलग से अंजलिका के विषय में सतर्क कर दिया था। वह कुछ ही समय पहले तक महारानी अस्ति की परमप्रिय चरी और प्राप्ति की विश्वसनीय सखी रही है। किंतु न जाने किस कारण अब वह राजप्रासाद का सुख छोड़कर पूरी तरह यादवों की ओर उन्मुख हो गई है। उसका व्यवहार और आचरण अब तक तो शंका से परे ही रहा है, किंतु इसमें संदेह ही है कि महारानी अस्ति को अपनी विशेष चरी के विमुख हो जाने का ज्ञान नहीं होगा। वह सावधान होकर निश्चय ही अंजलिका पर दृष्टि रखने के लिए अपने चरों को कह चुकी होगी। फिर अंजलिका को इस प्रकार स्वतंत्र कर देने के पीछे संभव है उस कुटिल महारानी अस्ति का कोई गूढ़ मंतव्य हो। तो भी अंजलिका के प्रति हमारी ओर से कोई ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिए जिससे महारानी अस्ति को संदेह हो कि हम उसको अब भी महारानी की चरी मानते हैं और सतर्क रहते हैं। हमको तो कुछ ऐसा प्रयास करना होगा कि अंजलिका के माध्यम से हमारे विषय में महारानी को ऐसी सारी सूचनाएं मिलती रहें, जिनके विषय में उस कुटिल महारानी को विशेष रुचि हो....हमें इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए!

अस्ति का मंतव्य क्या होगा, इस विषय में वसुदेव को कुछ समझाने की आवश्यकता नहीं थी। वे स्वयं राजधर्म में निपुण थे और उसकी सारी चालों और कुचालों से परिचित ही थे।

तो भी उनको यह याद था कि इसी युवती अप्सरा ने कोई चौदह-पंद्रह वर्ष पूर्व जब गोपों का दल यहां आया था तो गोपी के वेष में आई देवी रोहिणी

को बड़ी ही कुशलता से लाकर वसुदेव के कक्ष में पहुंचाया था और फिर भोर में ही उनको अपने साथ ही ले गई थी। उनको अचरज हो रहा था तो इस बात पर कि अक्रूर जैसा मंत्री इस बार उसी अंजलिका पर अविश्वास करने को कह रहा था!

अथवा अक्रूर की ओर से यह कोई चाल ही हो! वसुदेव ने कुछ पल तक सोचा, फिर देवकी से बोले, ''देवी, यह अंजलिका जन्म से अप्सरा है! और तुमको तो पता होगा ही कि अप्सराएं किसी की नहीं होतीं। हमें उसकी ओर से सावधान ही रहना चाहिए।''

देवकी ने मुसकराकर कहा, ''देव! अप्सराओं से हमारा क्या काम? हां, आप पुरुषों को अवश्य ही उनसे सावधान रहना उचित होगा।''

वसुदेव ने कहना चाहा कि यह अप्सरा लंबे समय तक महारानी अस्ति की विश्वसनीय परिचारिका रह चुकी है....किंतु उनको अवसर नहीं मिला। उसी समय सहसा अंजलिका ने प्रवेश करके निवेदन किया, ''देव को आशीर्वाद देने के लिए कुलपुरोहित गर्गाचार्य प्रकोष्ठ में पधार चुके हैं।''

कुलपुरोहित का नाम सुनते ही देवकी के कोमल मुखमंडल पर घटाएं-सी घिर आईं। वसुदेव को देवकी के मन की स्थिति समझते देर नहीं लगी। वह भांप गए कि देवकी को इस समय अपने पुत्र की स्मृतियों ने घेर लिया है। वह विचलित-से सोचते रहे; फिर अचानक ही अंजलिका से बोले, ''तू, आर्य को यहीं से ले आ। देवी उनको प्रणाम करना चाहती हैं।''

अंजलिका ने कृशकाया, देवकी की ओर कोमल दृष्टि डाली और चुपचाप बाहर निकल गई।

एकांत पाते ही वसुदेव ने देवकी से कहा, ''प्रिये, अपने को संयत कर लो। आचार्य से उन दोनों के विषय में कोई ऐसा प्रश्न नहीं कर बैठना कि किसी चरी को तुम्हारी बात से संदेह हो जाए। स्वयं आचार्य उनकी कुशलता का जो विवरण अपनी ओर से दे दें, उतने से ही धैर्य बनाए रहना।''

देवकी सिर झुकाए अपने को भरसक संयत करने का प्रयास करने लगीं।

वसुदेव ने उनका साहस बंधाने के लिए उनका हाथ थाम लिया। कहा, ''देवी! धैर्य....धैर्य ही तुम्हारी शोभा है, राजपुत्री!''

देवकी का मन ही जानता था कि उस पर क्या बीत रही है। आज कितने ही वर्षों से धैर्य के नाम पर उसे निरंतर अपनी ममता और वात्सल्य की बलि देनी पड़ी है....जो यातनाएं देवकी को सहनी पड़ी हैं, उसकी कल्पना तक किसी अन्य स्त्री से सहन नहीं हो पाएगी, तो भी धैर्य....महाकाल ने यदि आठ-आठ पुत्रों की जननी होने पर भी देवकी की गोद को सूनी रखने का विचार

किया था तो उसको स्त्री बनाया ही किसलिए?

वह मन ही मन घुटती रही....

लेकिन एक बार फिर देवकी का मातृत्व जीत गया। देवकी ने अपने हृदय पर पाषाण-सा रखकर ठान लिया कि वह अपनी ओर से एक भी प्रश्न नहीं करेंगी। पति का हाथ थामे वह अपनी कांपती, दुर्बल देह को स्थिर करने का प्रयास करने लगीं।

कुलपुरोहित महर्षि गर्गाचार्य के विषय में सबसे यही कहा जा रहा था कि इस बार वह कई मास दूर-दूर तक तीर्थयात्रा करके लौटे हैं। मथुरा आने के बाद उन्होंने सुना कि वसुदेव राजकोप से मुक्त हो गए हैं, अतः उनको आशीष देने आए हैं।

कंस की महारानी अस्ति ने तो हँसकर टाल दिया था, किंतु स्वयं कंस को गर्गाचार्य का वसुदेव के आवास पर आना अच्छा नहीं लग रहा था। तो भी उसने महारानी अस्ति के कहने से उनको अनुमति दे दी थी।

प्रचारित तीर्थयात्रा के अनुरूप ही कुलपुरोहित गर्गाचार्य ने अपनी ओर से तीर्थों का पवित्र उदक तथा अन्य प्रसाद देकर वसुदेव तथा देवकी को दीर्घायु होने का आशीष दिया। फिर वसुदेव के आग्रह पर गर्गाचार्य तीर्थयात्रा के समय प्राप्त अपने मनोरंजक अनुभवों के विषय में उन्हें बताने लगे।

अनुभवों की चर्चा करते-करते सहसा उनका ध्यान देवकी की ओर गया! पल-भर अटककर वह धीरे से बोले, ''राजन्, हमको गोकुल जाने का अवसर भी मिला। वहां तो आजकल मानो देवताओं का वास हो गया हो! नंद का एक पुत्र तो ऐसा है कि उसके आने के बाद से ही गोकुल पर निरंतर न जाने कितनी विपत्तियां ही विपत्तियां आती रही हैं! मानो स्वयं महाकाल ही उस बालक का अहित करने को आतुर हों, लेकिन अब तक तो अपने पराक्रम से वह मानो महाकाल को भी पराजित करता रहा है!'' गर्गाचार्य मुसकराए।

वसुदेव ने देखा, देवकी का रोम-रोम सतर्क हो उठा। वह तन्मय-सी होकर अपने पुत्र की गाथा सुन रही हैं।

गर्गाचार्य उसी प्रकार संकेतात्मक भाषा में बताने लगे—''नंद के उस पुत्र का चरित्र तो कुछ ऐसा है कि कुछ पूछो मत। नंद और उनकी प्रिया देवी यशोदा तो अपने बालक को पल-भर को भी अपनी आंखों से दूर नहीं करना चाहते। यशोदा तो उसको अपने आंचल में ही छिपाकर रखती हैं। किंतु तुम जानते ही हो, राजन्, कि महाकाल की इच्छा को कौन रोक सकता है? आश्चर्य की बात है, राजन्, कि वह बालक ऐसे तो इतना तेजस्वी है कि तीनों लोकों में उजाला भर दे, लेकिन नंद और यशोदा का नेह तो देखिए कि उन्होंने

दुरात्मा, राक्षसी प्रवृत्ति वाले क्रूरकर्मा चरों के भय से अपने ही यहां रहने वाले एक अन्य गोप बालक के संस्कार तक प्रकट रूप से नहीं करवाए। उन्होंने उन दोनों के संस्कार अपनी गोशाला की एक छोटी-सी कोठरी में करवाए थे। जब नंद गोप मुझको दान करने आए तो हँसकर मैंने पूछा, 'आप इतने बड़े गोष्ठ के स्वामी हैं और आपके साथ आपके गोप योद्धाओं की इतनी समर्थ सेना भी है, फिर आपने उन दोनों बालकों के संस्कार इस प्रकार गोपनीय रखकर जिस कारण करवाए हैं?'

''नंद ने वही बताया, 'जिस दिन से ये पुत्र हमारे यहां जन्मे हैं, उसी दिन से न जाने किस दुष्ट ग्रह की इन पर दृष्टि पड़ गई है। हम नहीं चाहते कि दोनों के संस्कार के समय कोई अनिष्टकारी ग्रह आकर बाधा डाले सो हमने ऐसा ही करवा लिया। इसमें कोई दोष तो नहीं है, आचार्य?' ''

गर्गाचार्य ने हँसकर कहा, ''और क्या कहता उनसे मैं! कह दिया कि इसमें इन दोनों के लिए तो कोई नहीं, किंतु लोक के लिए ही दोष है, जिस प्रकार कोई सूर्य देवता का तेज अपनी हथेली से रोकना चाहता हो?''

देवकी ने सहसा अकुलाकर उनके चरण छू लिए। बोली, ''आर्य, आपने तो उनके पुत्र को इतनी महत्ता दे दी कि नंद और रानी यशोदा जीवन-भर आपका उपकार मानेंगी!''

आचार्य ने वसुदेव की ओर देखा। बोले, ''जिसने उस विलक्षण पुत्र को जन्म दिया है, और जिस मां ने उसको अपने आंचल की छाया देकर पाला है, देवी, वे दोनों ही लोक के लिए परम पूजनीय हैं। ऐसे पराक्रमी पुत्र को जन्म देना और उसका पालन करना अपने-आपमें तो लोक पर उपकार करना ही है।''

''धन्य हैं, आचार्य! हम तो आपके आने से और आपके इन अनुभवों से ही सारे ही तीर्थों का फल पाकर कृतार्थ हो गए!'' वसुदेव गद्‌गद कंठ से बोले।

गर्गाचार्य ने उन दोनों को आशीर्वाद देकर उठते हुए कहा, ''मैं फिर शीघ्र ही तीर्थाटन पर जाना चाहता हूं, राजन्! यदि देवताओं की इच्छा हुई तो शीघ्र ही लौटकर फिर आपका जयजयकार करूंगा!''

''हम तो निरंतर प्रतीक्षा करते रहे हैं, आर्य—केवल प्रतीक्षा! हमने युगों से यही तो किया है! अब तो हमको प्रतीक्षा में ही सारे सुख मिलते हैं....''

देवकी की आंखों में आंसू देखकर गर्गाचार्य ने द्रवित कंठ से कहा, ''देवी! तुम्हारा धैर्य ही एक दिन आकर तुम्हारे आंसू पोंछेगा।'' और फिर से हाथ उठाकर 'स्वस्ति-स्वस्ति' कहते-कहते उन्होंने प्रस्थान कर दिया। द्वार पर

खड़ी अंजलिका ने भी हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। उस समय उसकी सारी देह पसीने से तर थी। गर्गाचार्य को लगा, मानो वह संयत रहने का प्रयास करती हुई भी अपनी कंपकंपी नहीं रोक पा रही हो। एक बार उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर 'स्वस्ति' कहते हुए वह बाहर निकल गए।

उनके जाते ही अंजलिका ने अंदर आकर वसुदेव को प्रणाम किया और अकुलाकर रोती देवकी को सहारा देकर अंत:पुर में ले गई।

देवकी को कुलस्त्रियों के निकट पहुंचाकर अंजलिका हांफती हुई फिर वसुदेव के पास आई। बोली, "आर्य, संकट आ गया है! सावधान!"

"क्या हुआ, अंजलिके?" वसुदेव ने चिंतित होकर कहा, "देवी तो सकुशल हैं?"

"देवी सकुशल ही हैं, देव! किंतु आज ही महाराज कंस की ओर से एक दुर्दांत 'असुर' को गोकुल भेजा जा रहा है कहा जाता है, वह यहां से जाकर गोपों के सभी गोष्ठों की रक्षा करने का भार उठाएगा, किंतु...."

"किंतु?" वसुदेव ने पूछ तो लिया, पर वह स्वयं जानते थे कि इस 'किंतु' का कितना भयानक अर्थ है। वह कुछ देर तक तो अंजलिका की ओर आश्चर्य से देखते रहे, फिर बोले, "तूने यह संवाद कहां से सुना है?"

"स्वयं मंत्रिवर....आर्य अक्रूर के भवन की ही एक चरी कहती थी, महाराज! आज ही महारानी की आज्ञा से मंत्रिवर ने उस विकराल 'असुर' योद्धा को मथुरा पहुंचने का आदेश दिया है।" पल-भर रुककर अंजलिका वसुदेव की ओर ताकती रही फिर बोली, "यदि महाराज की आज्ञा हो तो...."

वसुदेव ने हँसकर कहा, "दासी! इस समय मथुरा में मात्र एक ही महाराज हैं, 'महाराज कंस!' मैं तो महाराज की कृपा से मात्र उनका साधारण-सा सभासद ही हूं! तू 'आर्य' कहा कर मुझे। यही पर्याप्त है। यही तेरे हित में भी होगा।"

"दासी को क्षमा करें, महा....आर्य!" उसने जल्दी से अपनी मधुर बोली को सुधार लिया फिर बोली, "यदि आर्य की आज्ञा हो तो मैं अब भी महारानी अस्ति से जाकर अपने लिए निवेदन कर सकती हूं...."

वसुदेव को आश्चर्य हुआ। वह सतर्क होकर बोले, "तू और महारानी से? अब उनसे क्या निवेदन करना चाहती है, अंजलिके?"

अंजलिका ने कुछ झिझककर भारी स्वर में कहा, "वह 'असुर' दमन और कोई नहीं, देव, इस दासी के पति का घनिष्ठ मित्र है! कभी मेरे आग्रह करने पर बाहुक के लिए मेरी ओर से स्वयं महारानी ने ही मगधपति से विनती की थी...."

''तो?''

''मुझे विश्वास है....महारानी अनुमति दे देंगी तो मैं स्वयं भी दमन के साथ ही मथुरा छोड़कर गोकुल चली जाऊंगी, देव....''

''तो?'' वसुदेव को लगा मानो अंजलिका किसी विशेष स्थिति की ओर संकेत कर रही है। पर स्पष्ट कहने से हिचक रही है। पल मात्र में वसुदेव की सारी क्षमताएं मानो सावधान होकर सन्नद्ध हो गईं। वह हँसकर बोले, ''तू गोकुल के गोपों की इतनी चिंता किसलिए करती है, अंजलिका? मैं तेरा आशय नहीं समझा। तू जाकर करेगी ही क्या वहां?''

वसुदेव को संदेह हो रहा था— अंजलिका की ओर से इतनी चिंता व्यक्त करने का अर्थ अधिक से अधिक यही तो हो सकता है कि अस्ति की यह चरी अपनी ओर से ऐसी व्यग्रता दिखाकर उनसे कुछ ऐसा कहलवाना चाहती होगी कि....गोकुल जाकर वह 'असुर' से उन दोनों बालकों की रक्षा करने का प्रयास करे! किंतु वसुदेव ने एक बार माथे पर बल तक नहीं पड़ने दिए जिससे कोई अनुमान लगाता कि उन्हें 'नंद के पुत्रों' लिए चिंता हो रही होगी!

बड़ी देर तक चुप रहने के बाद अचानक ही अंजलिका बोली, ''और तो क्या कर पाऊंगी, आर्य? कम से कम अपने पति के एकमात्र प्रियजन दमन की प्राणरक्षा का प्रयत्न तो कर ही सकती हूं!''

वसुदेव को वास्तव में आश्चर्य हुआ। बोले, ''तू कहना क्या चाहती है? तू ही यह कहती है कि दमन तो गोकुल में नंद के गोष्ठों की रक्षा के लिए नियुक्त होकर जा रहा है। महाराज कंस अथवा महारानी के आदेश से तो वह अधिकारी के रूप में स्वयं हर प्रकार से समर्थ होगा! फिर वहां....गोपों के यहां उसके प्राण किस कारण संकट में पड़ सकते हैं? तेरी बात मेरी तो समझ में नहीं आती।''

वसुदेव ने वार्ता समाप्त नहीं की। वह स्वयं अंजलिका से ही उस संवाद के बीच छिपा रहस्य उगलवाने की चेष्टा कर रहे थे। क्या अंजलिका वास्तव में उनके दोनों पुत्रों के विषय में भी जानती है?

अंजलिका ने सिहरकर कहा, ''आर्य, अब तक जो होता रहा है....मथुरापति ने आज तक जिन सैनिकों और असुरों को उस ओर जाने को कहा है, उनका एक ही अंत होता रहा है— प्राणांत!'' अंजलिका ने धीरे से कहा। फिर विनीत कंठ से बोली, ''यदि आपकी आज्ञा होगी तो मंत्रिवर मेरी विनती अवश्य स्वीकार कर लेंगे। उनसे अनुमति पाने के लिए आपकी आज्ञा होनी ही चाहिए....''

पल-भर को उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहकर वसुदेव ने कहा,

''मेरी ओर से तू स्वतंत्र है। देवता तेरा और तेरे प्रिय दमन का कल्याण करें।''

अंजलिका प्रणाम करके जाने को ही थी कि वसुदेव ने कहा, ''मंत्रिवर को मेरा आशीष देकर निवेदन करना! वह अवश्य कृपा करेंगे।''

अंजलिका उनको फिर से प्रणाम करके चली गई।

वसुदेव स्तब्ध-से खड़े उस विलक्षण स्त्री के विषय में सोचते रहे। महाकाल किसको किस मार्ग से कहां पहुंचा देता है, और कौन, कब, किस कारण से...मानो आकाश से उतरकर सहायक हो जाता है। क्या यह सुंदर-सी अप्सरा सचमुच उस 'असुर' दमन से हमारे पुत्रों की रक्षा करने में सफल हो जाएगी? अथवा कंस की ओर से इसे भी राजद्रोह के अपराध में....

आगे वह सोच नहीं सके। मन ही मन महाकाल को प्रणाम करके वसुदेव थके-थके-से देवकी को देखने के लिए अंत:पुर की ओर चल पड़े।

बीस

कंस स्तंभित बैठा अभी-अभी गोकुल से लौटे रोचमान से वह भयंकर समाचार सुनता रहा—

उसके बलवान सैनिकों ने अरिष्ट नामक भयंकर दानवाकार वृषभ को ले जाकर गोपों के गोष्ठ में गायों के बीच छोड़ दिया था। उनको पूरी आशा थी कि उन्मत्त अरिष्ट हींस-हींसकर बछड़ों और गायों की हत्या करने लगेगा और गोष्ठ को ही उजाड़ देने पर तुल जाएगा तो नंद के दोनों पुत्र अवश्य बल के अभिमान में उससे भी टकराने का उद्यत हो जाएंगे। और तब प्रचंड क्रोधी दानवाकार अरिष्ट उन दोनों को भी निश्चय ही मार डालेगा। उनको पूरा विश्वास था कि गोवंश का होने के कारण अरिष्ट को वे दोनों निश्चय ही जान से मारने की नहीं सोच सकते—वृषभ की हत्या तो उनके लिए घोर पाप है!

अरिष्ट ने छूटते ही दौड़कर गोष्ठ में प्रवेश किया और वहां बंधे अथवा खुले बछड़ों तथा गायों को संत्रस्त करने के साथ ही अपने तीक्ष्ण सींगों से छेद-छेदकर उनको मारने लगा। कंस के अनुचरों ने अरिष्ट को मदिरा पिलाकर और भी उन्मत्त कर दिया था। मद के मारे उसको कोई भी भय नहीं रह गया था। उसने देखते ही देखते पूरे गोष्ठ को उजाड़कर सूना कर दिया!

गोपों में कोलाहल मचा तो कृष्ण का ध्यान उस ओर गया। वह वेग से भागा-भागा उस ओर आया। उसको सामने देखते ही अरिष्ट ने जोर से हींसकर सिर नीचे किया और नुकीले सींग उसकी ओर करके भयंकर वेग से आक्रमण कर दिया।

पूंछ उठाकर जोर से गर्जन करता हुआ अरिष्ट उसकी ओर झपटा। कृष्ण उसको आता देखकर भी अविचल खड़ा रहा। अमर्ष से भरा अरिष्ट उस उद्दंड मानव को सामने अडिग खड़ा देखकर और भी रोष से भरकर उस पर टूट पड़ा।

वह निकट पहुंचा ही था कि कृष्ण ने सहसा उसके दोनों सीगों को पकड़ लिया और प्रचंड शक्ति से उस दानवाकार वृषभ को जहां का तहां स्तब्ध कर दिया। फिर तो दोनों दो विशाल सांडों की भांति एक-दूसरे से भिड़ गए। वृषभ अरिष्ट को जैसे महावृषभ मिल गया हो! वह किसी तरह कृष्ण की पकड़ से छूटकर उसको रौंद डालना चाहता था। किंतु कृष्ण ने उसको सींग पकड़े-पकड़े ही धरती पर पटक दिया और घसीटने लगा। अरिष्ट का क्रोध अब व्यर्थ होकर स्वयं उसको ही दहने लगा था। अरिष्ट छूटकर उठने की जितनी ही चेष्टा करता, उतना ही कष्ट पा रहा था। उसके मुंह से फेन बहने लगा। सारा शरीर लहुलूहान हो गया।

अविश्वसनीय दृश्य था! न जाने कितनी देर तक दोनों का संघर्ष होता रहा। अरिष्ट किसी प्रकार कृष्ण के बंधन से छूटकर उसे कुचल डालने को उतावला हो रहा था, किंतु लेने के देने पड़ गए। वह अपनी ओर से जितना ही जोर लगाता था, कृष्ण के दांव में फंसा होने के कारण उसका दबाव उलटकर उसी पर आता था। निरंतर संघर्ष करता-करता अरिष्ट अंततः थककर क्लांत हो गया। वह ढहने-सा लगा। उसकी सारी शक्ति कृष्ण ने जैसे निचोड़-सी ली हो। वह जोर-जोर से हांफ रहा था। अंत में वह कटे हुए वृक्ष की भांति ढहकर अचेत-सा हो रहा। तब कृष्ण ने उसे बलपूर्वक उठाकर फिर धरती पर दे मारा और रौंदना आरंभ कर दिया।

अरिष्ट मरणांतक पीड़ा से भयानक स्वर में चिंघाड़ रहा था....

महाराज कंस तथा महारानी अस्ति और प्राप्ति की उपस्थिति में ही रोचमान प्रचंड वृषभ अरिष्ट के अंत की दारुण कथा सुना रहा था। करता क्या? महारानी की ऐसी ही आज्ञा थी! उनके ही आदेश से रोचमान को गोकुल और वृंदावन के क्षेत्र में निरंतर रहकर मथुरा के हितों का ध्यान रखना पड़ता था।

रोचमान स्वयं भी बड़ा वीर था और सदा महारानी अस्ति के लिए प्राण देने को भी तत्पर रहता था। वास्तव में प्रलंब की मृत्यु हो जाने के बाद से रोचमान के प्रति महारानी का विशेष अनुराग जाग उठा था। रोचमान ऐसे तो महारानी की विशेष अनुकंपा से डरता ही था। वह मगधपति जरासंध का परम विश्वासपात्र था। महारानी अस्ति की प्रलंब के प्रति विशेष आसक्ति थी—इस

विषय में भी वह पूरी तरह से परिचित था। उसको महारानी की यह कीकट-वृत्ति अच्छी नहीं लगती थी। वह जानता था कि यादवों में भी कुलस्त्रियों की इस प्रकार की उच्छृंखल भावना को हीन दृष्टि से देखा जाता है। वास्तव में यादव आर्य-परंपरा के ही पोषक थे और स्त्री के ऐसे स्वैराचार से घृणा करते थे!

इसी कारण रोचमान ने कई बार प्रलंब को भी इस कदाचार के लिए सावधान किया था, किंतु प्रलंब तो अपने बल-पराक्रम के अभिमान में ही भूला रहता था! फिर महारानी अस्ति जैसी अनिंद्य सुंदरी का मोह पाने के बाद तो वह अपने को सर्वथा अपराजेय मानता था— सर्वशक्तिमान! वास्तव में महारानी के कारण ही रोचमान भी खुलकर प्रलंब के विषय में कुछ कर नहीं पाता था। तो भी उसने निश्चय कर लिया था कि अब की बार अवसर पाते ही वह स्वयं मगधपति को संकेत से प्रलंब की स्वेच्छाचारिता का आभास देकर उसे मगध बुला लेने का आग्रह करेगा।

प्रलंब का दंभ इतना असह्य हो गया कि एक दिन वह अभिमानवश रोचमान को बुलाकर उसे ही प्रताड़ना-सी देने लगा था। इसी से रुष्ट होकर रोचमान ने अंजलिका को उसके पति बाहुक की हत्या करने वाले प्रलंब का वास्तविक परिचय दे दिया था। उसे यह पता नहीं था कि अंजलिका तो पहले ही गंधर्वी उत्तमा से सब सुन चुकी है। रोचमान को आशा थी कि अंजलिका निश्चय ही न्याय पाने के लिए महाराज कंस के समक्ष गुहार करेगी, तब हो सकता है कि प्रलंब को उसकी धृष्टता का दंड मिल जाए। अपनी ओर से रोचमान भी कुछ ऐसा करने को तुला ही था कि महाराज कंस की आंखों में प्रलंब का मूल्य कम हो जाए। और यदि संभव हो तो महाराज कंस के कानों तक अंत:पुर में प्रलंब की धृष्ट कामलीला का विवरण भी किसी प्रकार पहुंचा दिया जाए।

मगध में तो रोचमान और प्रलंब को एक समान अधिकार प्राप्त थे। मथुरा की यात्रा के समय प्रलंब ने मार्ग में ही नवपरिणीता महारानी अस्ति का अनुराग प्राप्त कर लिया था। तभी से रोचमान को लगता था कि प्रलंब उसको हीन दृष्टि से देखने लगा है। विशेषकर उस दिन जिस प्रकार प्रलंब ने उसको बुलाकर आदर देने के स्थान पर उसकी घोर भर्त्सना की थी....वह अपमान तो रोचमान क़ो हर पल चुभता ही रहता है। प्रलंब के प्रति आसक्त महारानी अस्ति से तो उसके विरुद्ध कुछ कहने का अर्थ होता— अपने लिए ही प्राण-संकट मोल लेना। इसी कारण रोचमान ने अंजलिका का सहारा लिया था। किंतु कातर अंजलिका ने कंस के सामने जाकर प्रलंब के विरुद्ध गुहार लगाने का

साहस ही नहीं किया होगा....प्रलंब उसी प्रकार अभिमान से स्वच्छंद विहार-विलास करता रहा! रोचमान को अंत तक यही उपाय सूझा कि अब स्वयं मगधपति को प्रलंब के अनाचार की सूचना देने पर ही उसका पतन संभव है।

वह अभी अवसर की ताक में ही था कि अचानक महारानी अस्ति ने रोचमान को बुलाकर उसे मथुरा से तत्काल गोकुल जाने का आदेश दे दिया। रोचमान कुछ सोच पाता कि महारानी ने उसको गोकुल में प्रलंब की विशेष रक्षा का उपाय करने के लिए कई युक्तियां बताईं। रोचमान यह सुनकर चकित रह गया था कि महारानी अब गोपनायक नंद के पुत्रों का वध करने के लिए स्वयं प्रलंब को गोकुल भेज रही हैं! एक पल को तो रोचमान स्तब्ध ही रह गया। उसे विश्वास ही नहीं आ रहा था कि स्वयं महारानी ने प्रलंब को वहां जाने को कहा होगा। संभवतः महाराज कंस ने ही प्रलंब के विषय में ऐसा आदेश दिया हो, तभी तो महारानी ने ऐसा करने की विवशता अनुभव की होगी!

फिर भी निश्चय करने के लिए रोचमान ने कहा था, ''महारानी को विदित तो होगा ही कि नंद के वे दोनों पुत्र अद्‌भुत शक्तियों से युक्त लगते हैं! एक के बाद एक वे जाने कितने ही चमत्कारिक कार्य करते रहे हैं। उनको तो जैसे संकट का पूर्वाभास मिल जाता हो....हमारी ओर से गए किसी भी योद्धा अथवा चर या चरियों का वे ऐसे संहार कर देते हैं कि....मेरे विचार से तो, देवी यदि उचित मानें तो एक बार उन दोनों के विरुद्ध सेना की किसी टुकड़ी को आदेश दें। वह उन दोनों को कहीं वन में ही घेरकर मार डाले। एक-एक करके तो वे हमारी कई चरियों तथा योद्धाओं की हत्या कर चुके हैं। इतना ही नहीं, हमारी ओर से विशेषकर उनका वध करने के लिए छोड़े गए असुरों के समान बलशाली कितने ही वृषभ, बक, अजगर जैसे भयावने जंतुओं तक को उन्होंने खेल-खेल में ही मार डाला है....महारानी को तो याद ही होगा कि उस कृष्ण ने युगों से यमुना के तट पर अपना लोक बसाकर रहने वाले कालिय जैसे प्रतापी नागराज तक को एक दिन पकड़कर बंदी बना लिया था और उसको मारने ही वाला था, पर नागराज की पत्नियों के अनुरोध पर उसने कालिय को छोड़ दिया। कालिय को वह स्थान छोड़कर तत्काल ही अपनी समस्त नाग प्रजा और अपने कुल के साथ समुद्र की ओर भागने को विवश कर दिया है उसने! ऐसे पराक्रमी को मारने के लिए अकेले प्रलंब को भेजकर महारानी क्या सोचती हैं कि वह सफल हो जाएगा?''

अस्ति की भृकुटि पर बल पड़ गए थे। वह पल-भर रोचमान की ओर देखती रही, फिर हँसकर बोली, ''रोचमान! तुम योद्धा तो हो, किंतु शंकाओं के

अधीन होने के कारण अपनी वीरता का परिचय नहीं दे पाते। प्रलंब निश्शंक योद्धा है और....वास्तव में हम लोक में यह जताना ही नहीं चाहते कि हमने उस गोप किशोर का वध करने का कोई षड्यंत्र किया है। यह तो हमारे महाराज की कायरता मानी जाएगी कि हम उस गोप किशोर को मारने के लिए अपनी सेना भेजते हैं....अरे, तुमको जो कहा जा रहा है, वह करो! प्रलंब को यहां....मथुरा से चलने के बाद से ही ऐसा वेश बनाना होगा कि उसको कोई पहचान नहीं सके। उस समय तुमको गोकुल तक उसकी सुरक्षा का ध्यान रखना होगा। और हां, मैं यह चाहती हूं कि वहां भी कोई प्रलंब की प्रचंड वीरता का साक्षी भी हो, इसके लिए तुम उत्तम हो!''

उस दिन भी रोचमान को पहले तो तिरस्कार की ही अनुभूति हुई थी। किंतु महारानी अस्ति जैसी चिरयौवना सुंदरी उसको किसी कार्य के लिए उत्तम मानती है, यह भी तो गौरव की ही बात है! रोचमान भी अंततः पुरुष ही था और महारानी अस्ति की कृपा पाने को आतुर! वह कृपा न पाने के कारण ही संभवतः वह अब तक प्रलंब से ईर्ष्या करता था। अब उसको लगा कि महारानी की उस पर भी मधुर दृष्टि तो है ही!

प्रलंब की मृत्यु के बाद ही रोचमान को पता लगा था कि महारानी ने तो प्रलंब को कंस अथवा अपनी इच्छा से नहीं, वरन् अंजलिका की ओर से प्रलंब की वीरता का प्रशस्तिगान करने के बाद इस कारण गोकुल भेजा था कि वह प्रलंब को ही सेनापति का महत्त्वपूर्ण पद देना चाहती थीं। और गोकुल के उन दोनों उत्पाती गोपपुत्रों का वध करने के बाद यह महारानी के लिए सरल भी हो जाता। वह महाराज कंस की प्रसन्नता का लाभ उठाकर प्रलंब को मगध से आए समस्त योद्धाओं का प्रमुख नियुक्त करवा देतीं।

यह सारी बात रोचमान को अंजलिका से ज्ञात हुई थी जो प्रलंब की मृत्यु का समाचार पाते ही राजप्रासाद से निकलकर न जाने चली गई थी। एक रात उसे रोचमान ने मथुरा की विशाल मल्लशाला के पास देखा तो चुपके से उससे मिला। अंजलिका के पति बाहुक का रोचमान बड़ा सम्मान करता था और प्रलंब द्वारा जब बाहुक की हत्या कर दी गई थी तो रोचमान को अंजलिका से सहज सहानुभूति हो आई थी। इसी कारण अंजलिका को देखते ही उसको संकेत से अपने भवन की ओर आने को कहकर वह स्वयं अकेला ही लौटकर चला आया था। अंजलिका चुपचाप उसके आवास पर गई भी—उसको रोचमान पर विश्वास था, क्योंकि उसके पति की हत्या होने के बाद एक रोचमान ने ही उसे अपनापा दिया था—गुपचुप ही सही।

अंजलिका से मिलने के बाद रोचमान चकित रह गया था। अंजलिका जैसी सरल और अपने पति में अनुरक्त रहने वाली स्त्री के विषय में उसे तो कल्पना तक नहीं हो सकती थी कि वह इतनी चतुर भी होगी! उसने अंत तक प्रलंब से अपने पति की हत्या का प्रतिशोध ले ही लिया था! उस स्त्री ने कितनी युक्ति से महारानी के मन की गहराई में प्रलंब के प्रति छिपी अनुरक्ति को पहचान लिया था। वह स्त्री थी, फिर अप्सरा! और महारानी अस्ति जैसी स्वेच्छाचारिणी के मन को समझना उसके लिए कठिन नहीं था। उसने महारानी की अनुरक्ति का ही लाभ उठाया और उन्हें प्रलंब को निश्चित मृत्यु के मुख में भेज देने को प्रेरित किया था।

उसी समय रोचमान को एक और सूचना मिली थी की महारानी अस्ति के प्रासाद में रहने वाली कितनी ही यादवियां वास्तव में महारानी और महाराज के विरुद्ध चार-कर्म[1] करती रहती हैं। अंजलिका ने उसे नाम तो किसी यादवी दासी का नहीं बताया था, किंतु उसको पूरा विश्वास था कि स्वयं महाराज को अपने रूप-यौवन से लुभाकर उनके मन की बातें निकाल लेने वाली अनेक चरियां आज भी राजप्रासाद में सक्रिय हैं। अंजलिका ने रोचमान को भी बताया कि वास्तव में वे दोनों ही गोप युवा नंद गोप के पुत्र नहीं हैं। दोनों वसुदेव के ही पुत्र हैं। देवकी का आठवां पुत्र था वह कृष्ण! और कारागार में कृष्ण के जन्म लेते ही उसे नंद के यहां पहुंचा दिया गया था।

किंतु रोचमान को अंजलिका से मिली सूवनाओं में कोई प्रामाणिकता नहीं लगी थी। उसे लगा कि प्रताड़नाएं सहती-सहती अंजलिका बहुत-सी बातों की कल्पना करके सुख पाती है, बस। अतः उसने इन बातों को महारानी तक नहीं पहुंचाया था।

फिर भी रोचमान को शंका-सी बनी रही कि आखिर, अंजलिका को यह विश्वास किस आधार पर रहा होगा कि कृष्ण अथवा बलदेव प्रलंब जैसे दानवाकार बलशाली योद्धा को मार ही डालेंगे? जो सत्य भी सिद्ध हुआ!

स्वयं अंजलिका भी इसका कोई संगत उत्तर नहीं दे पाई थी। तो भी उसे पूर्ण विश्वास था कि प्रलंब यदि एक बार उनके समक्ष पहुंच गया तो जीवित लौटकर नहीं आएगा! और ऐसा ही हुआ भी था!

दानवाकार वृषभ अरिष्ट को मरते समय भी रोचमान ने प्रत्यक्ष देखा था। वह भयंकर दृश्य याद आने पर वह सिहर उठा।

....कृष्ण अरिष्ट को थकाकर गिरा देने के बाद उसको रौंदता रहा, फिर उसने एकाएक उसके दोनों सींगों के बीच एक पांव रखा और उस विशालकाय

---

[1] गुप्तचरी

वृषभ की गरदन को भीगे हुए वस्त्र की भांति निचोड़ने लगा था....अरिष्ट भयंकर चीत्कार करता रहा, किंतु कृष्ण ने उसको तभी छोड़ा जब उसकी गरदन टूटकर दोहरी-सी हो गई। वह विशालकाय भयावना वृषभ धरती पर लहूलुहान मांस के भारी लोंदे की भांति निर्जीव-सा पड़ा था, फिर भी उसका विशाल शरीर रह-रहकर पीड़ा की लहरों के साथ बार-बार तड़प उठता था। वह घोर जीवट वाला महावृषभ अब तक मरा नहीं था.... तब कृष्ण ने अचानक ही पांव उसके मस्तक पर लगाकर उसका एक विशाल सींग उखाड़ लिया और उसी से मार-मारकर अरिष्ट का वध कर दिया। उस समय अरिष्ट का कुचला हुआ मुख ऐसा वीभत्स हो गया था कि उसकी ओर देखा तक नहीं जाता था।

उसको मृत देखकर बलदेव ने अपने अनुज कृष्ण को उठाकर कंधे पर बैठा लिया था। फिर तो सारे गोप उच्च स्वर में कोलाहल करते हुए अरिष्ट को वहीं छोड़कर चले गए थे।

आश्चर्य की बात तो यह है कि भयावने अरिष्ट से युद्ध करके उसका वध करने के तत्काल बाद युवा कृष्ण यमुना के तट पर प्रतीक्षा करती गोप युवतियों के साथ सहज मन से रास नृत्य करने लगा था! उसको आमोद में मग्न देखकर रोचमान चकित रह गया था। कितना प्रबल था उसका आत्मविश्वास! उस समय भी रोचमान को अंजलिका की याद आई थी। अंजलिका ने स्वयं न तो कृष्ण को देखा था, न उसके किसी पराक्रम को ही। फिर भी रोचमान को लगा कि अंजलिका का उस गोप युवा पर इतना विश्वास अनर्गल नहीं था!

कृष्ण को तो संभवतः कंस का कोई पराक्रमी से पराक्रमी योद्धा भी नहीं मार पाएगा—उसके बाद से रोचमान को भी ऐसा ही लगने लगा है। किंतु यह बात महारानी अथवा महाराज के समक्ष कह तो नहीं सकता था वह। अंजलिका से भेंट होने के विषय में भी उसने किसी को नहीं बताया।

मन ही मन उद्विग्न होकर रोचमान सोचता रहा।

किंतु महारानी अस्ति तो उस समय भी आवेश से धधक-सी रही थीं। प्रलंब की मृत्यु से वह पहले ही दुःखी थीं, फिर अरिष्ट जैसे प्रचंड काल रूपी महावृषभ का वध! कृष्ण का यह अद्‌भुत पराक्रम चिंताजनक तो था ही।

इस कांड को सुनकर तो महाराज कंस का मन वास्तव में आतंक से त्रस्त हो उठा था। अब तो उनको भी संभवतः ऐसा ही लग रहा होगा कि कुछ भी हो, वसुदेव का वह पुत्र उनकी हीनता का प्रतीक-सा बन गया है! यह भी कोई विश्वास करने की बात है कि उस अकेले युवा ने एक नहीं, कितने ही असुरों के समान शक्तिशाली मनुष्यों और विराटकाय हिंस्र पशुओं तक को

अकेले ही मार दिया और उसका बाल तक बांका नहीं हो सका।

सहसा महारानी अस्ति ने रोचमान की ओर देखकर कहा, ''तुमको क्या लगता है, रोचमान! वह क्या सचमुच इतना पराक्रमी है?''

महारानी से ऐसी बात सुनकर रोचमान मन ही मन कांप उठा—कहीं महारानी अब की बार उससे युद्ध करने के लिए स्वयं उसको ही तो वृंदावन नहीं भेजना चाहतीं! महारानी अस्ति जैसी स्त्री के लिए कुछ भी असंभव नहीं। वह अपने परमप्रिय को भी किसी भी समय निश्चिंत मृत्यु के मुख में भेज सकती हैं। प्रलंब की मृत्यु की पीड़ा से त्रस्त महारानी उसे भी कृष्ण जैसे महाबली का आखेट बनाकर भेज दें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अंजलिका ने कहा ही था कि महारानी को अपने प्रिय का विजयी होकर आना अच्छा लगेगा, इसी कारण उन्होंने प्रलंब को वहां भेज दिया था। अबकी बार क्या महारानी अस्ति का 'प्रिय' यह रोचमान ही इस सुंदर डाकिनी की हिंस्र कामनाओं का आखेट बनेगा?

महारानी के प्रश्न के उत्तर में देर तक चुप भी तो नहीं रहा जा सकता! कुछ न कुछ तो बोलना ही होगा—यह सोचकर रोचमान ने कहा, ''महारानी की जय हो! ऐसा पहले भी देखा गया है। कुछ व्यक्ति सहज पराक्रमी होते हैं। उन्हें, कहा तो ऐसा जाता है कि कोई दैवी शक्ति प्राप्त होती है। स्वयं मगध-सम्राट् के विषय में भी तो ऐसा ही कहा जाता है कि उनको जरा नामक राक्षसी ने दिग्विजेता होने का वर दिया था....''

महारानी अस्ति का चेहरा अपने पिता के पराक्रम की चर्चा सुनते ही खिल उठा। किंतु वह तत्काल किंचित अमर्ष के साथ बोलीं, ''तुम उस साधारण-से गोप युवा की तुलना मगध सम्राट् से कर रहे हो!''

रोचमान ने तत्काल कहा, ''महाबलशाली चक्रवर्ती की तुलना तो बस, देवपुत्रों से ही की जा सकती है, देवी। मैं तो केवल यह कह रहा था कि कभी-कभी देवों की कृपा से कोई अति साधारण युवा भी समय पाकर बलवान हो जाता है। ऐसा ही उस कृष्ण के साथ भी हो सकता है! किंतु इस समय वह अपने पराक्रम के शिखर पर है, अतः हमें निश्चय ही सावधानी से काम लेनां होगा। उसको ऐसे ही अपने महाबली योद्धाओं का संहार करते जाने का अवसर देना अपनी ही हानि करने की बात है! हमको अब कोई ऐसा उपाय करना होगा कि वह अब जीवित रहने का अवसर पा ही नहीं सके। अर्थात् हमें अब अपने किसी योद्धा अथवा अपने पालित परम बलशाली वृषभ अरिष्ट जैसे अन्य किसी हिंस्र जीव-जंतु का भी सहारा लेकर उस पर आक्रमण करना उचित नहीं होगा। अब तो पहले उसको किसी प्रकार घेरकर तब आक्रमण करना उचित

होगा। देवी की यह बात भी उचित ही है कि एक सामान्य-से गोपयुवा का वध करने के लिए प्रतापी महाराज प्रकट रूप से सेना सहित कोई अभियान तो कर नहीं सकते। और ऐसा करने से यादवों के भीतर सुलगती विद्रोह की ज्वाला को भड़कने का अवसर भी तो मिल जाएगा, जो हमारे महापराक्रमी मगधपति की नीति के भी विरुद्ध होगा। मेरा निवेदन मात्र इतना ही है कि अब अपने किसी अन्य योद्धा को एकाकी वहां भेजकर फिर अपनी शक्ति का अपव्यय करना उचित नहीं लगता। महारानी अब किसी ऐसे उपाय का आलंबन लें कि सांप भी मर जाए और आज प्रारब्धवश पराक्रमी बन गए उस युवा के समक्ष हमारा कोई योद्धा बलि भी न हो जाए....''

कहते-कहते रोचमान को लगा कि उसने आत्मरक्षा के लिए एक प्रकार से महारानी की समूची नीति का ही खंडन कर डाला है! यह विचार मन में आते ही उसको प्रतीत हुआ कि उसने तो बहाने से अपनी मृत्यु को बुला ही लिया है! उस युवा के हाथों न सही, इस सुंदर रमणी के कोप से उसे प्राण तो देना ही होगा।

किंतु उसे यह सुनकर अचरज हुआ कि महारानी ने इस बार उसकी ही नीति की सराहना करते हुए महाराज कंस से कहा, ''मेरे विचार से तो इस चतुर रोचमान को अब महाराज अपने मंत्रिपरिषद् में स्थान दें। रोचमान की बात पहले ही मानी गई होती तो हमको अपने कितने ही बलशाली योद्धाओं से वंचित नहीं होना पड़ता....अब भी, समय कोई बीत तो नहीं गया है। हमारी सुरंगिणी ने बताया है कि इस नीतिज्ञ रोचमान ने यादवकुलों के अंत:पुर में अपनी चरियों को फैलाकर उनकी भीतरी नीतियों तथा भेदों का भी आभास पाने का उपाय कर लिया है!''

महारानी अचानक रोचमान की ओर देखकर हँस दीं। बोलीं, ''हमको तो आश्चर्य था कि हमारी प्रिय सखी अंजलिका का क्या हुआ। एक दिन वह सहसा ही राजप्रासाद से लुप्त हो गई थी! वह तो सुरंगिणी ने आकर हमें सूचना दी कि अंजलिका आजकल वसुदेव के अनुज राजा देवभाग यादव के अंत:पुर में रहती है। और कितने ही यादवों के अंत:पुर की परिचारिकाओं को मिलाकर, उनसे गुप्त सूचनाएं प्राप्त करके वह अब भी रोचमान को दिया करती है। आज भी तो रोचमान को उसने मल्लशाला के निकट बुलाया है! हमको आज की रात प्रतीक्षा करनी होगी कि उससे रोचमान को क्या सूचनाएं मिलती हैं। फिर हम कोई निर्णय करेंगे।''

रोचमान को तो मानो सांप सूंघ गया हो। उसे सूचना तो मिली थी....एक दासी ने आकर उसे बताया था कि अंजलिका ने उसे आज रात को मल्लशाला

के निकट मिलने को 'वहीं' बुलाया है। 'वहीं' का अर्थ भी रोचमान को ज्ञात हो गया था– निश्चय ही 'वहीं' का आशय उसी स्थान-विशेष से होगा जहां पिछली बार उसे रात में अंजलिका मिली थी। किंतु इसकी सूचना महारानी अस्ति को भी है, इसका अर्थ तो यही हो सकता है कि यह सुंदर स्त्री मात्र कामिनी ही नहीं है....यह निश्चित रूप से अपनी कमनीयता को परदा बनाकर हर पल भीतर से राजनीति के विकट खेल खेला करती है।

किंतु अंजलिका इतनी मूर्ख तो नहीं है! फिर उसकी यह सूचना महारानी अस्ति तक कैसे पहुंच गई? सबसे भयंकर बात तो यह थी कि अब महारानी को विश्वास हो गया है कि अंजलिका को राजप्रासाद से निकालकर रोचमान ने ही अपने कार्य में लगा लिया है। अर्थात् रोचमान पर यह एक और आरोप आ गया कि उसने महारानी की परमप्रिय सखी को ही अपनी चरी बना लिया और उनको सूचना दिए बिना उसे राजप्रासाद से ही उड़ा ले गया है वह! रोचमान को लगा कि अवश्य भाग्य उसके विपरीत ही जा रहा है। उसका कहीं कोई दोष नहीं, फिर भी वह किसी न किसी कारण अपने को चारों ओर से फंसता हुआ अनुभव कर रहा था।

महारानी अस्ति ने जितने आत्मविश्वास के साथ यह बात कही थी, और दुर्भाग्यवश वह इतनी सच भी थी, कि महारानी की बात का वह खंडन करने का साहस नहीं कर पाया। न जाने किसलिए महारानी अब तक अंजलिका के विषय में यह नहीं जान सकीं कि उसने ही जान-बूझकर प्रलंब को गोकुल भेजने के लिए महारानी को प्रेरणा दी थी। उसका उद्देश्य मात्र यही था कि प्रलंब से वह अपने पति की मृत्यु का प्रतिशोध लेना चाहती थी। अब कहीं बाद में महारानी अस्ति को पता लग गया कि अंजलिका ने तो प्रलंब को मरने के लिए ही गोकुल भिजवाया था तो महारानी को तत्काल यह संदेह भी हो जाएगा कि रोचमान का ही यह सुझाव रहा होगा। अंजलिका और रोचमान दोनों को उस समय प्राणदंड देने में महारानी अस्ति हिचकेंगी नहीं।

रोचमान को लगा, उसके सामने बैठी मगध की यह राजदुहिता....मथुरा की महारानी अस्ति निश्चय ही उसकी मृत्यु की दूती है! अब रोचमान को महारानी की कमनीय देह किसी नागिन की देह की भांति भयावनी लग रही थी। वह सिर झुकाए सोचता रहा।

अंत में अस्ति ने ही रोचमान की ओर मादक नेत्रों से देखते हुए मुसकराकर कंस से कहा, "महाराज, अब हमें आज्ञा दें। आज निश्चय ही अंजलिका से रोचमान को कोई विशेष सूचना प्राप्त होगी। आप तो निश्चिंत होकर अपनी प्रिया प्राप्ति के साथ विश्राम करें। आपकी कुशलता और हित के

लिए हम तो सारी-सारी रात जगते ही रहते हैं!''

उठकर द्वार की ओर बढ़ती अस्ति ने अपनी भौंहों के संकेत से रोचमान को अपने साथ ही चलने को कहा तो वह कांप उठा। उसको अपनी मृत्यु सिर पर ही नाचती लगी।

वह सिर झुकाए महारानी अस्ति के साथ घिसटता-सा उनके भव्य कक्ष में पहुंच गया। वहां पहुंचते ही महारानी अस्ति ने सहसा रूप बदल दिया। एकटक रोचमान की ओर निहारती रानी अस्ति ने हँसकर कहा, ''अब बोलो, रोचमान! तुम क्या कहते हो? तुम जैसे बलशाली का सम्मान-सत्कार करना तो हम भली-भांति जानते हैं। तुम प्रसन्न तो हो न? कहीं तुमको अंजलिका की ओर से कोई पीड़ा तो नहीं मिलती? उसको मैं तो मगध से ही जानती हूं। उस चतुर अप्सरा से कोई छल नहीं कर सकता। यदि प्रलंब ने उससे छल न किया होता और उसके पति की हत्या न कर दी होती तो निश्चय ही वह स्वयं इस प्रकार गोकुल में जाकर मारा न जाता।''

अटककर अस्ति ने अपनी सुंदर काया को विचित्र-सी थिरकन दी। उसकी समूची देह लहराकर हिलने लगी। वह हँस रही थी। बोली, ''तुमको आजकल इतना उदास देखती हूं तो मुझे अच्छा नहीं लगता। यदि तुम किसी उपाय से महाराज के मन पर छायी उस युवा गोप की आशंका दूर कर दो तो तुमको मेरी ओर से मुंहमांगा वरदान मिलेगा!''

हक्का-बक्का-सा होकर उसकी ओर देखता रोचमान धीरे से बोला, ''मेरे लिए तो देवी की यह हँसी ही वरदान है....''

''तुम तो इससे भी कहीं मूल्यवान वरदान के अधिकारी हो, रोचमान! सच कहती हूं, तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो! जानते हो, मैंने प्रलंब को किस कारण मथुरा से गोकुल भेजा था? मैंने एक दिन अंजलिका से सुना कि प्रलंब तुमसे बहुत रुष्ट रहता है! उसने तुम्हें अपने भवन पर बुलवाकर तुम्हारी भर्त्सना भी की थी न?''

स्तंभित रोचमान ने हकलाते-हकलाते कहा, ''महारानी से क्या छिपा है....देवी तो सर्वज्ञ हैं....देवी से कोई कब तक छिपा रह सकता है!''

अस्ति खिलखिलाकर हँस दी। बोली, ''तुम स्वयं तो 'देवी, देवी' कहकर हमसे कुछ छिपाते ही रहते हो, रोचमान! फिर किसलिए कहते हो कि मुझसे कुछ छिपा नहीं रह सकता?''

रोचमान न तो 'हां' कह सकता था, न 'नहीं'। कहे तो क्या कहे? वह विवश-सा यौवन के मद से आकुल उस कठिन रमणी की ओर देखता ही रह गया।

अस्ति ने सहसा अपना किरीट उतारकर उसकी ओर देखा। रोचमान तुरंत बढ़ा और उसने आदर के साथ किरीट थामकर निकट ही मंच पर रख दिया। साथ ही उसने संशय-भरी आंखों से एक बार इधर-उधर देखा।

अस्ति ने हँसकर कहा, ''यहां तो मेरी आज्ञा के बिना वायु का भी प्रवेश नहीं होता, रोचमान! आज तो तुमको ही इतना कष्ट करना होगा।'' साथ ही अस्ति ने अपनी बांह उठाकर जैसे संकेत किया।

रोचमान मन ही मन कांप उठा, किंतु महारानी अस्ति जैसी रूपवती का संकेत पाने के बाद वह रुका कैसे रह सकता था? वह आंखें झुकाए हुए बढ़ा और अस्ति का राजसी वसन बदलवाने में उसकी सहायता करने लगा। अस्ति ने निर्द्वंद्व भाव से योद्धा रोचमान के सामने अपने को परोस-सा दिया और उसे अपनी देह पर से एक-एक वसन उतारकर नए वस्त्र-अलंकार धारण कराने की सुविधा देती रही। अप्रस्तुत रोचमान मानो बेसुध होकर बड़ी कुशलता के साथ अस्ति की नागिन की भांति चिकनी देह पर से उसके वसन उतार-उतारकर एक ओर रखता रहा, फिर कनखी से उसकी सुनहरी काया की ओर निहारता हुआ उसके नए वसन लेकर पहनाने को आगे बढ़ा। महारानी अस्ति ने मादक हँसी के साथ अपनी कोमल सुडौल बांहें फैला दीं....

•

इक्कीस

उस रात प्राप्ति की देह कंस को अपने जादू से नहीं बांध सकी। यद्यपि प्राप्ति की एक विशेषता उसको अपनी भगिनी अस्ति से एकदम विपरीत आभा प्रदान करती थी। वह यही थी कि अस्ति जहां अपनी रूपज्वाला से किसी को झुलसाती रहती थी, वहीं निरंतर अति सतर्क भी रहती थी और उसकी नीति की धुंध में उसका रूप-संभार कहीं धुंध में छिपा-ढका-सा लगता था। कम से कम कंस को तो ऐसा ही लगता था। जबकि प्राप्ति भले ही अस्ति की भांति नीति में उतनी निपुण न हो। और यदि हो भी तो कम से कम मथुरा में वह राजधर्म के प्रति उतनी अनुरक्ति नहीं रखती थी। अस्ति तो शासन करने को ही जन्मी थी! किंतु कमनीया प्राप्ति का जन्म रूपयौवनसंपन्न देह से पुरुषमात्र को परास्त करने के लिए हुआ होगा--कंस को तो ऐसा ही प्रतीत होता था।

रमणी के रूप में कंस को जैसे विधाता की ओर से प्राप्ति वरदान में ही मिल गयी हो। उसका अक्षय यौवन रस से भरपूर था और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि स्वयं प्राप्ति अपनी दैहिक संपन्नता और काम-कातर यौवन के विषय में जानती थी। और इसीलिए वह जब अपने पर आती तो मुक्त भाव से

अपने को परोस देती। और फिर वह मात्र समर्पण करके ही तुष्ट नहीं होती थी—वह शय्या-संगी को यौवन का दान करती थी तो उसको भोगती भी थी। कंस को आश्चर्य यह होता था कि अस्ति किसी भी रूप में प्राप्ति की अपेक्षा कम सुंदर नहीं थी, किंतु वह अपने यौवन के आवेग में सदा बेसुध नहीं रहती थी। किंतु जब कभी वह उन्मत्त होकर कामयुद्ध में उतर ही जाती तो फिर उसको संभालना कठिन हो जाता था।

दोनों बहनों में एक भेद था—अस्ति तो मानो पर्वत से निकली उस नदी के समान वेगवती थी जो अपने प्रबल प्रवाह में कूल-कगार को बहा ले जाने को आतुर हो जाती थी। और प्राप्ति समतल भूभाग पर बहती भरी हुई नदी की भांति मादकता का आगार थी। उसकी आतुरता भी कमनीय ही होती थी। एकाध बार विशेष पल में उसने अपनी उन्माद-भरी काया से कंस को परास्त भी कर दिया था, किंतु तब भी उसकी कमनीयता कंस को सदा ही प्रिय लगती और वह उस पर आसक्त रहता।

अपनी भगिनी की इस विशेषता से अस्ति को कोई दुःख नहीं था। उसे तो महाराज कंस को बांधकर रखने और अपने मन की करवाने के लिए प्राप्ति का सशक्त अवलंब मिल गया था। वह इसका लाभ उठाती रहती थी। वैसे स्वयं अस्ति के प्रबल कामावेग ने उसको किसी भी सीमा तक जाकर अपने को तृप्त करने की कीकट संस्कृति से सराबोर कर दिया था। स्वच्छंद रण-प्रांगण में ही उसको वास्तविक आनंद मिलता था।

प्राप्ति को भी अपनी भगिनी के प्रबल कामावेश और उसकी उन्मुक्त कामलीला का ज्ञान था। उसे वह किसी भी स्तर पर हीन भी नहीं मानती थी। ऐसा नहीं कि मगध से आने के बाद प्राप्ति यहां के आर्य संस्कारों से प्रभावित होकर स्वयं भी आर्य रमणी के गुण अपनाना चाहती हो। सच तो यह है कि वह जब अपनी भगिनी से मुक्त भोग-विलास के विषय में सुना करती तो उसकी भी लालसा जाग उठती, किंतु उसे ऐसा कामरोग नहीं था कि वह अपनी तृप्ति के लोभ में अपने महाबली पति से छल करने लगती।

सच बात तो यह है कि कंस जैसा महाबली पति उसकी कामनाओं को पूरी तरह तृप्ति देता था। उसके बाद प्राप्ति को और अधिक पाने की विशेष लालसा नहीं सताती थी। यदि ऐसा होता तो उसके लिए कहीं कोई अवरोध नहीं था। वह भी रानी थी। पूरी तरह समर्थ। चाहती तो उसको रोकने वाला कौन हो सकता था? मथुरा के राजप्रासाद में तो पग-पग पर सारे मागध योद्धा ही नियुक्त थे। यादवों पर कंस को तनिक भी विश्वास नहीं था और वह अपनी प्रिया अस्ति तथा प्राप्ति जैसी कामिनी पत्नियों को क्षुद्र यादव योद्धाओं के

ऊपर विश्वास करके छोड़ भी नहीं सकता था....

फिर जब से कुरुक्षेत्र में उस ऋषि ने उसे स्वयं उसके जन्म का गूढ़ रहस्य-दानव द्रमिल का आख्यान बताया था, तब से तो कंस अपनी पत्नियों के प्रति विशेष रूप से सावधान रहने लगा था। कहीं उसकी पत्नियों के साथ भी द्रमिल दानव की-सी कोई घटना न हो जाए। वह स्वयं तो न जाने कितनी सुंदरियों का पति था, किंतु मगध की दोनों राजदुहिताएं उसकी सबसे प्रिय तथा प्रभावशाली पत्नियां थीं। उनकी संतानों को ही वह मथुरा का युवराज बनाने का संकल्प ले चुका था, किंतु अब तक अस्ति अथवा प्राप्ति जैसी समर्थ युवतियों के गर्भ से किसी संतान का जन्म ही नहीं हुआ था!

कंस महारानी अस्ति से एक सीमा तक सकुचाता रहता। कहना चाहिए कि उससे आतंकित-सा रहता था। हां, प्राप्ति अवश्य उसको जीतकर बांधे रहती थी और यह बंधन उसको अपने लिए प्राप्ति के अगाध प्रेम का बंधन लगता था। इस बंधन के कारण कंस अपने को भाग्यशाली मानता था।

तो भी अस्ति के कहने पर आज प्राप्ति और दिनों की अपेक्षा कहीं अधिक लुभावनी वेशभूषा धारण करके आई थी, तो भी कंस के मन में बैठा भय आज वासना की साक्षात् प्रतिमा जैसी अपनी प्रिया के प्रति उसकी आतुरता नहीं जागने दे रहा था। वह चाहकर भी उसकी ओर आसक्त नहीं हो सका। अस्ति की ओर से मिली चेतावनी के कारण आज प्राप्ति ने उसको मोहित करने के लिए न जाने कितनी चेष्टा की, किंतु कंस को वह आज कामावेग से उन्मादित नहीं कर पाई थी।

कंस निरंतर विचारों में खोया रहा और अंत में आज—संभवत: जीवन में पहली बार—प्राप्ति को विश्राम करने को कहकर वह स्वयं विचारमग्न-सा एक ओर जा बैठा।

पति के इस व्यवहार से प्राप्ति को गहरी ठेस लगी। उसको विश्वास नहीं था कि कभी कंस की ओर से उसकी कामनाओं का इस प्रकार तिरस्कार भी किया जा सकता है। वास्तव में प्राप्ति को कभी मथुरा की राजनीति से लगाव रहा ही नहीं, न तो उसने कभी राजकाज में रुचि ही ली थी। इसी कारण कभी-कभी जब अस्ति उसे महाराज को बांधकर चिंता से बचाए रखने की बात कहती, तब भी वह एक बार उससे पूछती तक नहीं थी कि आखिर, ऐसी कौन-सी चिंता है जो महाराज को इतना व्यग्र रखती है! अस्ति की आज्ञा से उसका तो बस, एक ही कार्य रह गया था कि वह महाराज की कामातुरता का लाभ उठाकर उनको राजकाज की ओर से भी विमुख रखा करे।

किंतु कंस को वह कितनी देर ऐसे बांधे रहती? उसका अपना मन भी

तो कभी-कभी कोई और मनोरंजन करने को होता था। मथुरा आने पर आरंभ में तो वह प्राय: महाराज कंस के साथ राज्य में भ्रमण करने निकल जाती थी। कभी-कभी वह महाराज के साथ बैठकर अपने प्रांगण की मल्लशाला में मल्लों का द्वंद्वयुद्ध भी देखा करती थी। उसने सुना था कि दूर दक्षिण-पश्चिम में मत्स्य राज्य का राजा अपने मल्लों को भयानक जंतुओं और हिंस्र पशुओं से लड़ाकर हिंस्र आनंद लेता है। एक दिन उसने महाराज कंस से कहा भी था कि किसी समय मत्स्य देश की यात्रा करें। कंस ने उसकी इस इच्छा का रहस्य जानने की चेष्टा की तो उसने लजाते-लजाते बताया कि किसी वन्य जंतु से मल्लों का द्वंद्वयुद्ध देखने की उसे बड़ी इच्छा होती है। उसके बलशाली पिता मगधराज तो कभी-कभी स्वयं ही सिंहों से मल्लयुद्ध करते थे और उनको परास्त करके सिंह की भांति ही गर्जना करते थे।

कंस ने हँसकर कहा, ''मगधपति तो स्वयं ही सिंह हैं! उनका किसी सिंह से मल्लयुद्ध करना कोई अचरज की बात नहीं। किंतु यदि मेरी प्रिया को मात्र इसी कारण मत्स्य देश की यात्रा करने का लोभ हो रहा हो तो कोई आवश्यकता नहीं। मैं इसकी व्यवस्था यहीं करवा दूंगा। न तो हमारी मथुरा में दानवाकार हिंस्र जंतुओं की कमी है, न मल्लों की ही!''

और सचमुच उसके बाद से मथुरा की रंगशाला में न जाने कितने मल्ल हिंस्र पशुओं के तीखे पंजों और दांतों के बीच लहूलुहान, तड़प-तड़पकर अपना जीवन गंवा चुके थे। कंस को इसका कोई दु:ख नहीं था। और स्वयं प्राप्ति को भी इससे कोई पीड़ा नहीं होती थी, वरन वह तो इन उत्तेजक दृश्यों के कारण जैसे दिनोदिन अधिक कामवती होती जा रही थीं। जिस दिन वह किसी हिंस्र पशु को किसी मल्ल का रक्त पीते देख लेती, उस दिन तो वह मानो स्वयं भी किसी सिंहनी की भांति अपार भूख से आकुल-व्याकुल हो जाती थी। और उस दिन वह कंस को एक पल को भी शांत होकर विश्राम नहीं करने देती थी। स्वयं कंस उसकी वासना की प्रचंड लहरों में तिनके की तरह बहता अनुभव करता। उसको अचरज होता था कि प्राप्ति को होता क्या जा रहा है! कहीं ऐसा न हो कि अपनी प्रचंड वासना की लहर में किसी दिन आपा खोकर कामिनी प्राप्ति पागल ही हो जाए।

किंतु आज वही कामिनी प्राप्ति कंस को अपनी वासना की किसी कला से मुग्ध नहीं कर पाई। हारकर उसने एक के बाद एक कई चषक मदिरा पी ली और गहरी नींद सो गई।

तब सहसा ही कंस उठ खड़ा हुआ। उसने अपने सबसे विश्वासपात्र चर धर्ष को आदेश दिया कि इसी समय जाकर वह सभी सभासदों और यादव

प्रमुखों को मंत्रणा-सभा में उपस्थित होने का आदेश दे।

कंस का आदेश पाकर चकित-विस्मित सभी सभासद बरबस नींद को झिटककर तत्काल सभाभवन में आ पहुंचे और धड़कते हृदय से कंस की प्रतीक्षा करने लगे।

कंस जब राजसभा में पहुंचा तो वहां मागध मंत्री तथा सभी यादवकुलों के प्रमुख आ चुके थे। उनमें से अधिकांश तो स्वयं कंस के निकट संबंधी और भाई-बंधु ही थे—शूरसेन के पुत्र तेजस्वी वसुदेव के अतिरिक्त यादवों में से शिनि के पुत्र सत्यक, कंक, कंक के अनुज, दारुक, महापराक्रमी भोज, प्रख्यात योद्धा पितामह अंधक, वैतरण, महाबलशाली विकद्रु, भयशंख, विपृथु, वभ्रु, कृतवर्मा, भूरितेजा, अक्षोभ्य, धर्मज्ञ यादव आदि बलशाली योद्धा भी आकर अपने-अपने आसनों पर विराज चुके थे। कंस अपने अनुगत अनुज दीर्घकाय सुनामा के साथ आया और अर्द्धरात्रि की उस निस्तब्धता में अपने प्रताप का डंका बजाने वाली उस विशाल सभा में दर्प के साथ बैठ गया।

सिंहासन पर बैठने के बाद कंस का तेज आज और भी असहनीय हो रहा था। सभी चकित होकर कंस की ओर देखने लगे। आज ऐसा लगता था मानो कंस मन ही मन कुछ ठानकर आया है। उसके चेहरे पर आज पहले की-सी चिंता और व्यग्रता नहीं थी। वरन् वह आज अमित बल से संपन्न कृत्तसंकल्प, तेजस्वी राजा की भांति तनकर बैठा था और दर्प के साथ अपने विशाल नेत्रों से एक-एक यादव को ध्यान से देख रहा था।

अकस्मात्, बिना किसी भूमिका के, वसुदेव की ओर घूरकर वह तिरस्कार-भरी हँसी के साथ बोला, "आप लोगों ने गुरुकुल में रहकर विधिवत् शिक्षा ग्रहण की है। आप सभी परम नीतिज्ञ, धर्मज्ञ और पराक्रमी हैं। जब-जब यदुकुल की मर्यादा भ्रष्ट होती प्रतीत हुई, तब-तब आप लोगों ने ही इसकी रक्षा की है। आप जैसे विख्यात, कीर्तिसंपन्न महापुरुषों ने ही आज तक यदुकुल की मर्यादा को किसी पर्वत की भांति दृढ़ता के साथ स्थिर रखा है! किंतु आप जैसे मान्य मंत्रियों के रहते हुए पिछले कई वर्षों से मेरे विरुद्ध निरंतर षड्यंत्र हो रहे हैं, फिर भी आप लोगों में से किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह सब आप लोगों की छत्रछाया में रहने वाले ये वसुदेव ही कराते रहे हैं! आप लोगों को पता तो होगा ही कि इन वसुदेव ने वर्षों पहले मेरे राज्यारोहण के समय मेरा विनाश करवाने की शपथ ली थी! फिर वर्षों पहले देवकी से विवाह के समय इन्होंने जो वचन दिया था, उसको भी पूरा नहीं किया। इन्होंने मुझसे कपट किया और अपने एक नहीं, दो-दो पुत्रों को कपटपूर्वक गोकुल में नंद के यहां पहुंचाकर उनका विशेष ढंग से पालन-पोषण

करवा रहे हैं। आप लोगों को क्या पता ही नहीं कि वसुदेव मेरे साथ जान-बूझकर वैर कर रहे हैं....और सुनता हूं, अब ये अपने उन्हीं पुत्रों से मेरी हत्या कराने का षड्यंत्र रच रहे हैं!''

कंस कुछ देर तक चुप होकर यादवों की सभा में उपस्थित सभी यादव सभासदों को तीक्ष्ण दृष्टि से छेदता-सा रहा।

सब मौन बैठे रहे तो कंस कुछ और विश्वास के साथ बोलने लगा, ''नंद गोप के यहां वह कृष्ण वास्तव में वसुदेव का पुत्र ही है जो निरंतर विचित्र-विचित्र कर्म करता हुआ विख्यात हो रहा है। वह मेरी जड़ें काटने के लिए कुछ न कुछ ऐसा करता ही रहता है! गोकुल में नियुक्त हमारे न जाने कितने योद्धाओं की वह अकारण ही हत्या करता रहा है। इतना ही नहीं, वह तो मेरे द्वारा महान् यत्न और उद्योग से पालित महावृषभ अरिष्ट तथा केशी जैसे विख्यात बलिष्ठकाय अश्व मेरे अनेक उत्तम पशुओं की भी हत्या करने से भी नहीं चूका! वह अवसर खोज-खोजकर मेरे साथ वैर ही निभाता रहता है। और ये वसुदेव यहां मेरे ही दिए हुए भव्य भवन में, मेरे ही अन्न से पलते हैं, और मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचते रहते हैं। मैं तो एक प्रकार से अंधा ही बन गया हूं! मेरा न तो कोई मंत्री ही इतना योग्य है, न हमारे गुप्तचर ही इनके षड्यंत्र के विषय में कुछ विशेष जान पाए। यदि ऐसा न होता तो क्या मेरे उस घोषित शत्रु को सहज ही मथुरा से चुपचाप निकालकर नंद के यहां पहुंचा दिया जाता?''

कंस ने लाल आंखों से वसुदेव की ओर घूरकर व्यंग्य से कहा, ''यह सब यही वसुदेव करवा रहे हैं! अपने को प्रतापी शूरसेन के महान् वंशज मानने वाले ये वृष्णियों के प्रमुख और विख्यात 'सदाचारी' वसुदेव घोर कृतघ्न हैं, यह कौन नहीं जानता? ऐसे तो ये सदा अपनी 'सत्यवादिता' का ही उद्घोष करते रहते हैं, किंतु वास्तव में वसुदेव जैसा निंदनीय और विश्वासघाती व्यक्ति कम से कम यादवों में तो और कोई नहीं होगा!''

कंस ने अटककर एक बार फिर यादव सभा की ओर देखा—मानो मन ही मन अनुमान लगा रहा हो कि उसके वक्तव्य का उन पर क्या प्रभाव हो रहा है। फिर घृणा-भरी दृष्टि से वसुदेव की ओर देखता हुआ बोला, ''मुझे तो कुछ ही दिन पूर्व सोमतीर्थ पर मिले एक ऋषि ने बताया कि इन 'सत्यवादी' राजा वसुदेव ने अपने आठवें पुत्र के विषय में मुझसे घृणित छल ही किया था। अपने नवजात पुत्र को तो इस कुटिल विश्वासघाती ने चोरों की तरह यहां से दूर, यमुना के उस पार गोपों के यहां पहुंचा दिया। और उसकी जगह न जाने किसकी नवजात कन्या लाकर मुझे दिखा दी कि देवकी की आठवीं संतान यह कन्या ही जन्मी है!''

कंस क्रोध से दांत पीसने लगा। फिर क्षुब्ध स्वर में बोला, ''और सुनता हूं कि उस कन्या की भी इसके कुल में देवी की भांति पूजा की जाती है! उसको ये लोग अपने पुत्र की रक्षा करने वाली साक्षात् योगमाया मानकर इतना महत्त्व देते हैं! यह सब मेरे साथ इनकी वैर की भावना ही तो है....और तो और, इस कृतघ्न व्यक्ति ने निर्लज्जों की भांति मुझे अपनी मीठी बोली से ठगकर आज तक भ्रम में ही रखा। इसने अपनी अन्य पत्नियों को भी उनकी संतानों सहित यहां से हटाकर गोकुल अथवा हस्तिनापुर पहुंचा दिया है! इसकी ज्येष्ठा पत्नी रोहिणी भी तो नंद गोप के यहां छिपकर वर्षों से रहती है! मेरी ही कृपा से राजसुख भोगने वाले मेरे ही दास उस नंद गोप और इस कृतघ्न वसुदेव ने मिलकर मेरे साथ छल ही छल किया है! मैं इन दोनों यादवों को साधु तथा सज्जन मानकर इनकी अवहेलना ही करता रहा, और ये दोनों विश्वासघाती मेरे ही विरुद्ध षड्यंत्र करते रहे....वसुदेव की ज्येष्ठा पत्नी वह रोहिणी भी तो वर्षों से नंद के यहां रहती है, फिर उसका पुत्र कहां से आया? क्या उसने गोकुल में ही किसी परपुरुष से गर्भ धारण किया? मुझे तो इस तथ्य से अवगत कराया गया है कि नंद हर वर्ष रोहिणी को भी अपने साथ छिपाकर यहां लाता रहता है और मुझे सूचना दिए बिना वसुदेव का उस पत्नी से मिलन भी करवाता रहा है। वही दुष्ट गोप इस कुटिल वसुदेव के पुत्रों का पालन भी कर रहा है....''

सभा में पल-भर को विक्षुब्ध गुंजार-सा होने लगा। लोग अस्पष्ट स्वर में कंस द्वारा देवी रोहिणी पर लगाए गए घृणित लांछन का विरोध कर रहे थे।

किंतु कंस को किसी की परवाह नहीं थी। वह गरजकर सीधे वसुदेव को अपमानजनक शब्दों से बींधता हुआ बोला, ''अपने को महान् कहने वाले नीच, कृतघ्न वसुदेव, सुन! शास्त्रों में कहा गया है कि भ्रूणहत्या, गोवध और स्त्री-हत्या जैसे पापों का तो प्रायश्चित्त करके मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है, किंतु कृतघ्नता और आत्मीय जन से विश्वासघात के पाप तो ऐसे जघन्य पाप होते हैं कि उसके लिए दारुण से दारुण नरक की यातना भी कम होती है!''

कंस के मुंह से शास्त्रों के उद्धरण और पाप-पुण्य की व्यवस्था वहां उपस्थित हर व्यक्ति के लिए हास्यास्पद ही नहीं, आक्रोशजनक थी! विशेषकर वसुदेव जैसे माननीय यादव-प्रमुख का ऐसा अपमान उन कुलपुरुषों से सहन नहीं हो रहा था, किंतु वयोवृद्ध यादवों के संकेत पर हर कोई चुप बैठा अपमान के घूंट पीता रहा।

नृशंस कंस धृष्टतापूर्वक अत्यंत कठोर शब्दों में वसुदेव की भर्त्सना करता रहा, ''वसुदेव! मुझे आश्चर्य होता है कि इतने कुलीन परिवार में जन्म लेकर भी तुम ऐसे घिनौने कार्य किस प्रकार कर लेते हो....मैं तो सदा तुझ पर

विश्वास करता रहा किंतु तूने दुष्टतापूर्वक मेरा अहित ही करने की ठान ली है! मैंने तो तुझे अपने इस महान् भोजकुल की कन्याएं भी दीं! तुझे जामाता बनाकर तेरा सम्मान बढ़ाया, किंतु तू सदा मुझ पर घातक प्रहार करने का उपाय ही रचता रहा है! तेरे इस घृणित आचार-व्यवहार के कारण ही आज से ये प्रतिष्ठित यादव किसी समाज में गर्व से सिर उठाकर चलने योग्य नहीं रहे। उनको लज्जा के मारे समाज में मुंह छिपाना होगा। समस्त यादवकुल तेरे कारण निंदा का पात्र बन गया है! तेरे इसी व्यवहार के कारण....जो देवकीपुत्र मेरा आत्मीय होता, उससे मुझ मथुरापति कंस का वैर हो गया! कृष्ण और कंस का यह वैर तुम्हारी ही दुश्चेष्टाओं के कारण अब कभी समाप्त न होने वाले वैर में बदल गया है। इसका अंत तो अब हम दोनों में से किसी एक का अंत होने पर ही हो, तो हो! तुम क्या सोचते हो कि तुम अथवा वह दुष्ट नंद गोप मुझसे वैर लेकर जीवित रहोगे....''

अपने ही आवेश के कारण कंस कुछ देर तक हांफता रहा। फिर सहसा ही अक्रूर की ओर देखकर बोला, ''श्वफल्कनंदन अक्रूर! वसुदेव ने तो अपने गर्हित कर्मों से यदुवंशियों को कलंकित ही किया है, किंतु तुम जैसे योग्य और समझदार युवक यादव योद्धा के कारण ही अब भी इस कुल का कुछ सम्मान शेष है! तुम मेरे सबसे मान्य और योग्य मंत्री हो। अब तुम मेरा एक हित करो, तत्काल ही तैयार होकर तुम गोकुल जाओ और नंद को मेरा आदेश दो कि वह अपने समस्त प्रियजनों और परिजनों के साथ राजकर देने के लिए तत्काल मथुरा आए। उसे सचेत कर देना कि महाराज कंस ने एक विशेष अनुष्ठान के लिए अपनी सारी प्रजा को मथुरा आमंत्रित किया है। हमने शीघ्र ही धनुर्यज्ञ के अवसर पर विशाल समारोह करने का निश्चय किया है। इस उत्सव पर यहां महामल्लों के द्वंद्व युद्ध का भी आयोजन किया जाएगा। वसुदेव के वे दोनों पुत्र भी तो, सुनता हूं, महाबली मल्ल ही हैं! उनको कहना कि महाराज कंस ने धनुर्यज्ञ के अवसर पर उन सबको आमंत्रित किया है। गोप नंद से कह देना कि राजकर के साथ ही वह अपने पूरे गोष्ठ तथा गोप-समुदाय सहित आकर मथुरा के समीप ही वनप्रांत में रहे। यज्ञ के अवसर पर एकत्र विशाल समाज के लिए आवश्यक गोरस आदि की पूर्ति भी उसे ही करनी होगी....और हां तुम तो वसुदेव के उन दोनों पुत्रों को अपने साथ ही ले आना! आखिर उनमें से एक तो मेरी अनुजा देवकी का पुत्र है! हमारे परमआत्मीय हैं वे दोनों ही! वसुदेव की मूर्खता के कारण हम भले ही एक-दूसरे को वैरी मानने लगे हों, किंतु मैं तो उन दोनों का पराक्रम इस यज्ञ के अवसर पर देखना चाहता हूं। तुम उन दोनों को अपने साथ ही रथ पर ले आओ! वे भी इस पर्व पर अपनी इच्छा के

अनुसार, अपने समान वय और जोड़ के मल्लों के साथ मल्लयुद्ध करेंगे। मैं उन दोनों 'महापराक्रमी' युवाओं को देखना चाहता हूं। फिर जिसमें हमारा हित होगा, हम वही करेंगे।''

कंस ने निस्तब्ध सभा की ओर अवहेलना-भरी दृष्टि से देखकर कहा, ''महारथी अक्रूर, तुम वास्तव में हमारे परमहितैषी हो। महारानी अस्ति भी तुमको ही यादवकुल में सबसे योग्य और निष्ठावान मंत्री मानती हैं। तुम मेरे लिए स्वयं गोकुल जाकर यह कार्य करो। यदि मेरे विरोधी तुम्हारा कान भरकर तुमको मेरे कार्य से विचलित करना चाहें तो भी तुम पहले की ही भांति हमारा ही हित करोगे—मुझे तुम पर पूरा विश्वास है! तुम राजभक्त हो और हमारे लिए तुमने अपने कुल का तिरस्कार तक सहन किया था। आज तो वही मूढ़ विरोधी तुम्हारी पूजा करते हैं....तुमको हमारा हित ही ध्यान में रखना चाहिए।''

उसने एक बार फिर वसुदेव की ओर भस्म कर देने वाली आंखों से देखा और बोला, ''इस महापापी, कपटी वसुदेव की ओर से अवश्य बार-बार तुम्हारा कान भरने की चेष्टा की जाएगी, लेकिन तुम इस कुचाली की चिंता मत करना। अब तो गोकुल से इसके दोनों पुत्रों के मथुरा आ जाने के बाद ही जो होगा, देखी जाएगी! वसुदेव को तुम अब किसी प्रकार जीवित महापुरुष मत समझो! यह तो अपने दुष्कर्मों के बोझ से पहले ही मर चुका है।''

अक्रूर व्यग्र होकर वसुदेव की ओर देखते रहे, किंतु उन्होंने सदा की ही भांति आज भी अडिग संयम का परिचय दिया और करबद्ध होकर कंस से बोले, ''महाराज, निश्चिंत रहें! यह निष्ठावान् अक्रूर महाराज और महारानी की इच्छा का पालन करता ही रहा! अब भी अपना जीवन रहते तो आपका हित ही करेगा! कोई भी मुझे अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। महाराज का निर्णय सर्वथा उचित ही है। उन दोनों उत्पाती युवा गोपों का मथुरा आना ही अब एकमात्र उपाय रह गया है। तभी हमारी प्रजा का उद्धार होगा!''

कंस ने अट्टहास करके कहा, ''साधु! दानपति वभ्रु! साधु! इस दुष्टबुद्धि वसुदेव में यदि तुम्हारी बुद्धि का शतांश भी होता तो आज हमारे राज्य में ऐसी घटनाएं क्यों होतीं! किंतु मूर्खों को तो विधाता भी ज्ञान नहीं दे सकते। यह वसुदेव महामूढ़ और मतिमंद है। इस बुद्धिहीन जड़ वसुदेव को तो कपट करना भी नहीं आता।''

कंस के बार-बार आक्षेप करते रहने पर भी वसुदेव समुद्र की भांति गंभीर बैठे रहे। उनको कहीं दूर से मानो किसी महर्षि का गुरु-गंभीर स्वर सुनाई दे रहा हो, 'महाकाल की इच्छा हो ही जाए तो फिर कोई उसको रोक नहीं पाता! फिर तो अपराधी स्वयं ही महामृत्यु को स्वयं आमंत्रित करके उसका

आलिंगन करता है....' यह कंस क्या अब सचमुच महाकाल के ही संकेत पर....महाकाल की इच्छा से ही अपनी महामृत्यु का आलिंगन करने को व्यग्र होकर उन्हें यहां बुलवा रहा है? फिर पुत्रों के प्रति वसुदेव के मन में स्नेह की धारा-सी उमगने लगी। न जाने देवकी अपने पुत्र के मथुरा आगमन का संवाद सुनकर क्या करें....

कंस फिर गरज उठा, ''आप समस्त बुद्धिमान सभासद अब स्वयं ही निश्चय करें कि इस कुटिल वसुदेव को क्या दंड दिया जाए....इसका अपराध सर्वथा अक्षम्य है—यह तो अब आप सबको स्पष्ट ही प्रतीत हो रहा होगा। ऐसे कपटी, कृतघ्न को तो जीवित ही हिंस्त्र पशुओं के सामने फेंक देना भी कम ही होगा। किंतु मैं पहले इसके दोनों पुत्रों को बुलवाकर इन्हें दिखा देने के बाद ही इसका निर्णय करूंगा....तब तक वसुदेव और देवकी को फिर से कारागृह में डाल दिया जाए। इस महानीच को मैं कुछ दिन के लिए और जीवन देता हूं।''

वसुदेव की निंदा और क्रूर वचनों से लगातार मर्मघाती भर्त्सना करता कंस और भी न जाने कितनी देर तक बोलता रहा।

सहसा यह देखकर कंस स्तब्ध रह गया कि सभा में बैठे अत्यंत वृद्ध यादवश्रेष्ठ अंधक ने अपने दोनों कानों पर हाथ रख लिया है!

इस अवमानना से कंस पल-भर को हतबुद्धि-सा लंबी-लंबी सांसें खींचने लगा, फिर गरजकर बोला, ''जिनको हमारी बातें इतनी अप्रिय लगती हैं, उनको निश्चय ही यहां बैठे इस नीच वसुदेव के अपराधों की पूरी जानकारी नहीं होगी, नहीं तो वह कम से कम इस कुटिल मूढ़बुद्धि वसुदेव को समझाते कि मेरे साथ वैर-भाव पालकर वह अच्छा नहीं कर रहा है। ऐसे तो अब मुझे लगता है, इस हीन यादवकुल में जन्म लेना स्वयं मेरा ही अपराध है! इससे तो अच्छा था कि मैं कहीं और....किसी और कुल में जन्म लेता! यादव होना ही कलंक है!''

सहसा ही पितामह अंधक ने उठकर कंस की अवहेलना करते हुए भारी गंभीर स्वर में कहा, ''कंस! तुम इतनी देर परिश्रम करके हमको जो कुछ समझाने का प्रयास करते रहे हो, वह किसी भी प्रकार श्लाघनीय नहीं है! हम तो तुम्हारे इस अनर्गल प्रलाप को सुनने योग्य भी नहीं मानते हैं। अपने पिता की आयु के योद्धाओं को अपमानित करके तुमने स्वयं सिद्ध कर दिया है कि तुम स्वयं हमारे इस महान यादवकुल के लिए कलंक हो! तुम यादव हो अथवा नहीं हो, तो भी कोई बात नहीं! तुम जैसे महापुरुष को तो हम सब 'यादव' बनाने को उत्सुक भी नहीं हैं। तुम्हीं नहीं, आज सारा लोक ही हम वृष्णिवंशियों की निंदा करता रहता है! सच ही है, जिस कुल का तुम जैसा राजा हो, उसकी सराहना कौन करेगा! हम तो ऐसे ही निंदनीय हैं! हमारे बीच वह उग्रसेन न

जाने कहां से ऐसा कुलांगार जन्मा कि उसने तुम जैसे पुत्र को जन्म दिया! ऐसे तो शास्त्रों में पुत्र को पुत् नामक नरक से मुक्ति दिलाने वाला कहा गया है, इसीलिए उसे 'पुत्र' कहा जाता है, किंतु उग्रसेन ने तो तुम जैसे पुत्र को जन्म देकर जीवित रहते ही घोर नरक पा लिया है....''

कंस स्तंभित-सा होकर अंधक की ओर वक्र दृष्टि से देखने लगा। किंतु पितामह अंधक जैसे यशस्वी योद्धा को आज तक कभी किसी से भय नहीं अनुभव हुआ था, तो आज उन्हें इस क्षुद्र, कुकर्मी कंस से क्यों भय होता! वह यादवों की स्तब्ध बैठी सभा को संबोधित करते हुए कहने लगे, ''उग्रसेन ने तुम जैसे कुलांगार पुत्र को जीवित रहने दिया तो मात्र इस कारण कि पुत्र के प्रति कोई पिता कभी निर्दय नहीं हो सकता! तो यदि वसुदेव ने अपने पुत्र को तुम जैसे नृशंस हत्यारे से बचाने के लिए छिपाकर कहीं और पहुंचा ही दिया हो तो उनको दोषी कैसे कहा जा सकता है? यदि वसुदेव ने अपने पुत्र का जीवन बचाकर कोई निंदित कर्म किया है तो फिर तुम अपने उस पिता से पूछो जो आज तुम्हारे ही कारागार में सड़ रहा है कि उसने जन्म लेते ही तुम जैसे कुलांगार पुत्र को मार क्यों नहीं डाला था! नंद के यहां पलने वाले वे दोनों गोप युवा—कृष्ण और बलभद्र यदि तुम्हारी सूचना के अनुसार, सचमुच वसुदेव के पुत्र ही हैं, तो फिर वे तुम्हारे परम घनिष्ठ बंधु ही हुए न! कृष्ण तो तुम्हारी अनुजा देवकी का ही पुत्र है! तुम्हारा भगिनेय! और कुरुनंदिनी रोहिणी का पुत्र भी देवकी के नाते तुम्हारा भागिनेय ही तो हुआ। फिर यह जानकर भी तुमने उनसे वैर किसलिए रोप लिया है! उनको अपना आत्मीय मानकर यदि तुम उनका आदर करते तो आज तुमको इतना भय किस कारण होता? तुमने तो अपने-आप ही, अपना प्रियजन जानते हुए भी उनको वैरी ही माना न! और आज तक न जाने कितने नृशंस उपायों का आश्रय लेकर तुम उन दोनों की हत्या करवाने का प्रयास करते रहे हो, तुम्हारी यह घृणित चेष्टा किसी से छिपी नहीं है कंस!

फिर तुम वसुदेव की निंदा किसलिए करते हो? वह तुमको अपने छह-छह नवजात शिशुओं को तो सौंपकर देख ही चुके हैं कि तुमने बधिक ही भांति उन अबोध शिशुओं की नृशंसतापूर्वक हत्या की दी थी! यदि वसुदेव ने अपने एक पुत्र को बचा ही लिया तो तुमको वह इतने भयंकर अपराधी जान पड़ते हैं....और संभवत: तुम समझते हो कि क्रूर बधिक के-से घृणित कर्म करके भी तुम लोक में अपार ख्याति पा रहे हो न!''

कंस उठकर जाने को हुआ किंतु अंधक ने उसको ललकारकर कहा, ''कंस, स्वयं तुम्हारे जघन्य कृत्य ही अब तुम्हारे लिए अपशकुन बन गए हैं।

याद रखना कि अब सारे ही यादवकुल तुम्हारे अत्याचारों को सहते-सहते विकल होकर तुम्हारे राज से छुटकारा पाना चाहते हैं! तात कंस, ऐसे में मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूं कि वसुदेव को साथ लेकर तुम स्वयं अपनी महारानियों कें साथ गोकुल जाओ और अपने प्रिय उन दोनों भागिनेयों को अपना लो! अब तो बस, यही उपाय हितकर लगता है! किंतु मैं जानता हूं कि तुम ऐसा नहीं करोगे....तो फिर वसुदेव को जीवन अथवा मरण देने का दंभ करने वाले ओ कंस, सावधान! रक्त की भांति लाल ये दिशाएं घोषणा-सी कर रही हैं—इस पुरी को शीघ्र ही अपने राजा से हीन होना पड़ेगा! मेरी मानो तो....''

कंस अंधक की ओर तीखी दृष्टि डालकर झटके से सभा-भवन के बाहर चला गया।

अंधक ने हँसकर कहा, ''आज तो यहां उपस्थित समस्त यादवों में से मात्र आयुष्मान् अक्रूर ही हमें परम भाग्यशाली लगते हैं, जिनको 'महाराज कंस' ने अपना परम हितैषी मानकर गोकुल जाने को कहा है। अक्रूर ही अब गोकुल से यादवों के उस उद्धारक को लेकर मथुरा आएं! महाकाल की इच्छा....''

और अंधक स्वयं भी उठकर सभा से चले गए।

बाईस

कंस अब हर तरफ से थक-सा चुका था। पितामह अंधक की ओर से विरोध का स्वर मुखर होने का अर्थ स्पष्टत: यही था कि अब यादवों के भीतर नया आक्रोश जाग उठेगा। और सबसे बड़ी भूल उसने यह की कि पितामह अंधक की फटकार सुनकर उसने क्रोधावेश में मागधों को मथुरा पुरी में मनमानी करने का आदेश दे दिया था। और उस हड़कंप से मथुरापुरी में भीषण हाहाकार मच गया....

पितामह अंधक मंत्रणा-सभा से लौटकर अपने आवास पर पहुंचे ही नहीं। न जाने कहां लुप्त हो गए....तीन दिन बीत गए....

अस्ति ने कंस से मिलते ही रौद्र स्वर में भर्त्सना की, ''महाराज, आपने तो पिता जरासंध की नीति को ऐसा अनीतिकर रूप दे दिया कि मैं स्वयं लज्जित हो रही हूं। पितामह अंधक जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को इस प्रकार नष्ट करवाने का अर्थ तो यही है कि अब कोई यादव कुलपुरुष आपकी राजसभा में खुलकर नहीं बोल सकेगा। सबको यही भय बना रहेगा कि आप क्रोध के वशीभूत होकर किसी की भी हत्या करवा सकते हैं!''

''किंतु महारानी, हमने चारों ओर प्रचार भी तो करवा दिया है कि जो भी व्यक्ति पितामह अंधक को खोजकर ले आएगा, उसको पुरस्कृत किया जाएगा!'' कंस ने विचलित होकर अस्ति को अपनी बुद्धिमत्ता से प्रभावित करना चाहा।

''तो उससे क्या हो जाएगा, महाराज? क्या अंधक को कोई कहीं से जीवित करके ले आएगा और आपके सिर पर लगा हत्या का कलंक धुल जाएगा! आपने तो जो किया, वस्तुतः उसका समाधान यही हो सकता है कि कहीं से अंधक को 'जीवित' लाकर प्रस्तुत कर दिया जाए....और गर्व से घोषणा करवा दी जाए कि आपको कलंकित करने के लिए यह सारा षड्यंत्र विरोधियों का ही रचा हुआ है!''

अस्ति की व्यंग्यपूर्ण उक्ति से कंस खिन्न हो गया। बोला, ''किंतु अब जो हो गया, उसको तो वापस लाया नहीं जा सकता, महारानी। भविष्य में मैं अवश्य आदेश दे दूंगा कि ऐसा कोई कार्य करने से पहले तुम्हारी अनुमति ले ली जाए....''

''हुंह! भविष्य....'' अस्ति ने हँसकर कहा और मदिरा का चषक उठाकर बोली, ''जब आपके द्वारा भविष्य की यह भूमिका रची गई है, तो भविष्य की गति क्या होगी, कौन जाने!'' और उसने चषक से लंबा-सा घूंट लेकर कहा, ''अब विश्राम करें, महाराज। मुझे तो अभी सुरंगिणी से मिलना है। वह कहीं से कोई विशेष सूचना लेकर आने वाली है।''

कंस ने उत्सुकता से कहा, ''यहीं बुलवा लो।''

अस्ति ने अपनी सुंदर भौंहों को वक्र करके देखा। फिर हँस दी। बोली, ''महाराज के विश्राम का समय हो गया है....आपकी प्रिया प्राप्ति निरंतर दुःखी रहती है कि आजकल महाराज को उससे मिलने का समय ही नहीं मिलता! आप उसको बहुत सताने लगे हैं।''

अस्ति की उन्मादित कर देने वाली मादक हँसी से कंस का लोभ जाग उठा। किंतु उसकी समझ में आ गया था कि मगध की इस मानिनी अप्सरा को इस समय अवश्य एकांत की कामना है। और कंस को इतना साहस नहीं था कि वह महारानी अस्ति की इच्छा का विरोध कर पाता। करे तो अपनी ही हानि होगी—यह कंस को अच्छी तरह मालूम था। वह उठा और सहज ही महारानी से विदा लेकर चुपचाप प्राप्ति के भव्य प्रासाद की ओर जाने को तत्पर हुआ।

अस्ति ने अपनी परिचारिका मंदरा को बुलाकर महाराज का पथ-प्रदर्शन करने की आज्ञा दी। कंस मंदरा के साथ चल पड़ा। वह समझ गया कि आज अस्ति किसी विशेष प्रयोजन से ही सुरंगिणी से मिलना चाहती है। उसने जो भी

निश्चय किया हो, उससे कंस का कल्याण ही होगा। अब महारानी अवश्य अंधक के अकस्मात ही लुप्त होने के रहस्य का कोई समाधान प्रस्तुत करना चाहती होगी। उसके कार्य में बाधा बनकर वस्तुतः अपनी ही हानि होगी। अस्ति के मार्ग में किसी भी कारण रोड़ा अटकाने की चेष्टा स्वयं कंस के लिए घातक हो सकती है। कंस को जीवन-भर यह नहीं भूलने का कि अस्ति के कारण ही वह आज मथुरा का एकछत्र अधिपति बनकर शासन कर रहा है। अस्ति ने ही उसे किसी कामातुर सुंदरी की भांति कमनीय रूप धारण करके पहले तो मुग्ध कर लिया था, फिर अपने पिता मगध सम्राट् को विवश कर दिया था कि वह मथुरा के उस महाबली राजपुत्र से ही उसका विवाह कर दें!

कंस को वह दिन याद आता है कि आज भी वह रोमांचकारी अनुभूति से विभोर हो जाता है....

जरासंध से मिलने के लिए चेदिराज दमघोष जब कंस को अपने साथ लेकर उनके शिविर में गए थे, तो उस समय संयोगवश अस्ति भी उनके निकट ही बैठी थी। मथुरा के यादवसंघ के महानायक महाराज उग्रसेन का नाम सुनकर कंस की ओर जरासंध ने विशेष ध्यान दिया। अस्ति भी अनुरक्त-सी लगी। जितनी देर कंस वहां रहा, अस्ति उसे निरंतर आसक्ति-भरी दृष्टि से निहारती रही। कंस को तो उस विलक्षण कमनीया सुंदरी ने पहले ही मोहित कर लिया था! वह अपने को संभाल नहीं पा रहा था, किंतु स्वयं मगधपति की उपस्थिति के कारण वह संकोच से बंधा-सा रहा।

उसी समय जरासंध ने अकस्मात पूछा था, ''आज तो राजा ही सब कुछ होते हैं। तुम्हारे यादवगण ने यह क्या रोग पाल रखा है? तुम लोग अपने पिता को समस्त अधिकार अपने हाथ में लेकर शूरसेन राज्य पर एकछत्र शासन करने को क्यों नहीं प्रेरित करते?''

कंस अचकचा उठा! सकुचाकर बोला, ''यह तो हम यादवों की प्राचीन काल से ही परंपरा रही है, पूज्य! वहां तो कभी किसी ने राजा का पद ग्रहण नहीं किया!''

''क्यों?'' जरासंध ने मुसकराकर कहा था, ''वह परंपरा भी तो किसी ने डाली ही होगी, युवराज! वास्तव में परंपरा कुछ नहीं होती। हर परंपरा किसी पराक्रमी द्वारा ही स्थापित की जाती है। हो सकता है कि महाराज उग्रसेन अपनी वय के कारण अथवा किन्हीं दबावों के कारण अपने को राजा न घोषित करते हों। किंतु अब नया युग तो तुम जैसे पराक्रमी युवकों के हाथ में है। तुम स्वयं नई परंपरा क्यों नहीं स्थापित करते? तुम तो युवराज ही हो न? अब तुम अपने

को राजा घोषित करके विधिवत् अपना राज्याभिषेक कराओ! हम सबको भी आमंत्रित करो! हम तुमको यादवों के राजा के रूप में देखकर प्रसन्न होंगे।''

कंस के मन में सहसा ज्वाला-सी कौंध गई थी।

मगधराज की उस प्रेरणा का ही परिणाम था कि कंस मथुरा का एकछत्र अधिपति है!

तेईस

देवकी को अंजलिका ने उसी रात चुपके से आकर संवाद दिया कि महाराज कंस ने मंत्रिवर अक्रूर को वृंदावन से अपने साथ ही नंद आदि गोपों के गोष्ठ सहित उन दोनों को भी लाने का आदेश दिया है!

सुनते ही देवकी आवेग से कांपने लगी थीं। एक मन होता कि कृष्ण तत्काल आकर आंखों के सामने पल-भर को खड़ा हो जाए! पुत्र को एक बार जी-भरकर देख लेने की आकुलता पर वह नियंत्रण नहीं पा रही थीं। फिर तत्काल ही भीरुता ने उनको विह्वल कर दिया—वह अभी है ही कितना बड़ा! बालक ही तो है! उसको तो आते ही दुष्ट कंस अपने राक्षसी कर्म करने वाले सैनिकों से कहकर मरवा डालेगा। वर्षों से हृदय पर पत्थर रखकर जिस पुत्र को कभी भर आंख देखने की देवकी प्रतीक्षा करती रही हैं, क्या उसका भी ऐसा ही भीषण अंत होगा!

'नहीं....नहीं....'

दोनों हाथों से आंखें मूंदकर देवकी कांपती हुई कातर स्वर में रोने लगीं।

वसुदेव उसी समय लौटकर आवास पर आए! सभा में जिस पल कंस ने अक्रूर को जाकर गोकुल से उनके दोनों पुत्रों को भी अपने साथ ही लाने का आदेश दिया था, उसी पल से वह विकल हैं। तो भी वह पुरुष हैं और उनको अपने कुलपुरुषों तथा पूजनीय ऋषियों-महर्षियों द्वारा की जाने वाली भविष्यवाणियों का भी सहारा था! किंतु जब याद आता कि उनकी कितनी ही संतानों को आंखें खोलकर संसार देख पाने के पहले ही नृशंस कंस ने मार डाला था तो वह भी अधीर होकर कांप उठते।

अपनी कृशकाया पत्नी देवकी को वह किसी तरह आशा बंधाकर उसका जीवन बचाने की चेष्टा करते। किंतु देवकी के लिए प्राणों से यदि कोई मोह था तो मात्र अपने पुत्र की छवि को एक बार आंख-भर निहार लेने की कामना से ही! और यही बीजमंत्र दे-देकर वसुदेव किसी प्रकार अपनी संत्रस्त पत्नी को जीवित रखते थे। आज भी वह सांत्वना दे ही रहे थे कि आंधी की तरह

झपटती-सी अंजलिका भीतर आई। कांपती हुई बोली, ''सावधान, आर्य! पुरी में हाहाकार मचा है! मागध सैनिक आ गए....''

और वसुदेव कुछ सोच पाते कि मगध के क्रूर सैनिकों का एक दल भवन में घुस आया। कंस की आज्ञा से वे वसुदेव और देवकी को बंदी बनाकर फिर कारागृह में ले जाने के लिए आए थे।

वसुदेव ने इधर-उधर देखा। वह मन ही मन संतुष्ट हुए—अंजलिका इस बीच मानो माया से लुप्त हो गई हो!

वसुदेव ने धीरे से अचेत-प्राय देवकी को सहारा देकर उठाया और उन्हें संभालते हुए सैनिकों के साथ चल पड़े।

चौबीस

अगले दिन कृष्ण और बलभद्र उपवन में डाले गए नंद के विशाल शिविर से अपने कुछ गोपों के साथ मथुरा नगरी में भ्रमण करने के लिए निकले।

यादवों की संपन्न राजधानी मथुरा तो ऐसे ही सौंदर्य एवं भव्य छटा के लिए विख्यात थी। वीरों द्वारा पालित मथुरा पहले तो बलशाली यादवगण के अनुरूप ही विशिष्ट शोभा से अजेय-सी दीखती थी। मथुरा के विशाल प्राकार इतने ऊंचे-ऊंचे थे कि उनको पार करना पक्षियों की भांति आकाशचारी होने पर ही संभव लगता था। फिर चारों ओर जल से भरी गहरी परिखा के कारण वह पुरी सर्वथा अलंघ्य ही थी। विशाल द्वारों में लगे सुदृढ़ कपाट जब खोले जाते तो उनकी घरघराहट दूर-दूर तक सुनाई देती थी। पुरी के द्वार इतने विशाल और चौड़े थे कि उनसे होकर एक साथ पांच-पांच गजराज भी प्रवेश कर जाते, किंतु जब उनको बंद कर दिया जाता था तो नन्हा-सा कीट भी पुरी में प्रवेश नहीं कर सकता था। प्राकार पर बने ऊंचे-ऊंचे कंगूरों पर खड़े धनुर्धर सैनिकों द्वारा वह नगरी पूर्णतः सुरक्षित थी। उनकी आंखों से बचकर कोई भी तोरणों को पार नहीं कर सकता था।

मथुरा में इन दिनों निरंतर चर्चा होती रहती थी कि महाराज की आज्ञा से मथुरा में महाधनुष का पूजन-समारोह होने वाला है। और उस पूजन-समारोह में भाग लेने के लिए दूर-दूर के जनपदों से भी सहस्रों विख्यात-कुख्यात मल्लों का आगमन होने वाला है।

प्राकारों के द्वारों पर नियुक्त रक्षकों को भी ज्ञात था कि अब कुछ दिनों तक पुरी की शोभा देखने के लिए भी पुरी में जानपदों तथा मल्लों का आना-जाना लगा ही रहेगा। पिछली संध्या को वृंदावन से अक्रूर के साथ ही गोपों का

विशाल दल लेकर गोष्ठ सहित स्वयं नंद भी आए हैं और नगरी के बाहर ही प्रशस्त वाटिका में गोपों का शिविर पड़ा है। उनके आने-जाने के विषय में इस बार कोई विशेष आदेश तो दिया नहीं गया था-- अर्थात् पिछले वर्षों की भांति इस बार भी गोपों के आने-जाने पर कोई रोक नहीं लगाई गई होगी! ऐसे भी गोकुल के गोप तो महाराज की प्रजा ही हैं। उनके लिए नगर-प्रवेश पर कोई बंधन कभी नहीं लगाया जाता।

कृष्ण और बलदेव को द्वार में प्रवेश करने से किसी ने नहीं रोका था। हां, नवयौवन की ऊर्जस्वी आभा से जगमगाते उन दोनों युवा गोपों को देखकर सैनिकों को ईर्ष्या-सी होने लगी थी। ऐसा सुदृढ़ अंगविन्यास और कसी हुई हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ काया उन्होंने कहीं और नहीं देखी थी। कृष्ण और बलभद्र मंद मुसकान के साथ मानो हर किसी का सहज अभिनंदन करते हुए प्रसन्न मन से पुरी में प्रवेश करके वहां की शोभा निरखने लगे।

उनको निर्द्वंद्व भाव से पुरी में विचरण करते देखकर वहां नियुक्त कितने ही सैनिक चकित होकर एक-दूसरे की ओर निहारते रहे। उनमें कितने ही, विशेषकर मगध के, ऐसे चर भी थे, जो महारानी अस्ति अथवा उनके ही किसी प्रिय योद्धा की ओर से साधारण पुरजनों के रूप में हर कहीं उपस्थित रहते थे। किंतु किसी ने उन दोनों युवा गोपों को रोकने का साहस नहीं किया। वे निश्चिंत मन से उत्साह के साथ नगरी के विभिन्न भागों में भ्रमण करते रहे।

मथुरा की समृद्धि के अनुरूप ही वहां के हाट-बाट और चौराहे तक सुशोभित हो रहे थे। हर कहीं चित्र-विचित्र रचनाएं की गई थीं जिन्हें स्वर्ण तथा रजत से मंडित किया गया था। चौराहों को ऐसा सजाया गया था कि आंखें वहीं टिकी रह जाती थीं। कितने ही रंग-बिरंगे रत्नों एवं बहुमूल्यों पाषाणों तथा धातुओं से मढ़कर रचे हुए ऊंचे-ऊंचे हर्म्यों के द्वारों पर कितनी मोहक चित्रकारी-सी की गई थी! श्रेष्ठियों के विशाल हर्म्यों की भांति ही सुसज्जित अनेक ऐसे भवन भी थे, जो प्रजा के हित के लिए कुलीन नागरजनों की बैठक के लिए बनाए गए सभा-भवन थे। प्राचीन गण-व्यवस्था में इन सभा-भवनों में ही बैठकर प्रजा की ओर से उनका हित करने वाले प्रतिष्ठित पौरजन कितनी ही समस्याओं पर विचार करते रहे होंगे। किंतु अब राजा कंस के समय तो वह मात्र शोभा के आगार ही बनकर रह गए हैं।

निकट ही हाट का विशाल आयोजन था। एक ओर तो विविध कौशलों के जानकार शिल्पियों के बैठने के स्थान थे। दूसरी ओर, अनेक कलात्मक वस्तुओं का विक्रय-केंद्र था। वहां रखी वस्तुएं वास्तव में कितनी कलात्मक और मोहक थीं! एक से एक सुंदर भवनों में स्फटिक, नीलम और मूंगे-पन्ने

आदि से जटित जालीदार झरोखों पर खड़ी, रूप और यौवन की साकार प्रतिमा जैसी यादव रमणियों के निकट ही उनके पालित कपोत, मयूर तथा शुक आदि पक्षी मधुर स्वर में गा रहे थे। रथ्या-वीथी तथा चौराहों पर सुरभित जल का छिड़काव किया गया था। और हाट की शोभा के लिए स्थान-स्थान पर अनेक रंगों की मालाएं टंगी थीं। फूलों के गुच्छे, मंगलद्रव्य के रूप में यव के नवीन अंकुरों के साथ ही खील, तथा अक्षतों का छिड़काव भी किया गया था।

सामान्य पौरजनों के आवासों की शोभा भी मन को मोहित कर लेने वाली थी। उन आवासों के द्वारों पर विधिवत् चंदन, दही, दूर्वा आदि मंगलद्रव्यों से चर्चित, जल से भरे कलश रखे हुए थे। इस समय भी सुवसना कुलवधुएं कहीं-कहीं कलशों के पास ही बैठी हुई फलों, कदली के पातों, नवांकुरों तथा दूर्वा, सुपारी, श्रीफल एवं रंग-बिरंगी पताकाओं से कलशों को अपनी ही भांति सुंदर शृंगार से सुसज्जित करके उन पर दीपक रख रही थीं। मंगलकामनाओं से भरे हृदय वाली उन वरस्त्रियों को प्रातवेला में ही इन युगल वासुदेवों का दर्शन-मात्र मानो शुभ का संदेश देकर आया हो! वे मुग्ध दृष्टि से कृष्ण-बलभद्र की और देखती रहीं, फिर अपनी कजरारी आंखों की मोहिनी चितवन से मानो उनकी अर्चना करती, मृदु हास की छटा बिखराती हुई परस्पर उनके ही विषय में चर्चा करने लगीं।

गोपों का वह छोटा-सा दल मथुरा में दिवस के प्रथम प्रहर का वह दिव्य स्वागत पाकर उत्फुल्लित हो उठा और परस्पर बातें करता-करता आगे बढ़ चला।

यह समाचार तो नगर में पहले से ही फैला हुआ था कि राजा कंस ने स्वयं मंत्रिवर अक्रूर को गोकुल भेजकर नंद के यहां रहने वाले उन दोनों युवा गोपों को भी विशेष रूप से बुलवाया है। और यह तो मथुरा में अब सभी जानते थे कि कंस को अब यह विश्वास हो चुका है कि वे दोनों नंद गोप के पुत्र नहीं है, वरन स्वयं वृष्णिकुल के राजा वसुदेव के पुत्र हैं। नगर में यह चर्चा भी तो थी कि पिछले कई वर्षों से वसुदेव की परमप्रिया प्रथम पत्नी, कुरुकुल की राजदुहिता देवी रोहिणी भी गोकुल में ही नंद के यहां छिपकर जीवन बिता रही थीं। उनका पुत्र बलभद्र स्वयं भी अब समर्थ मल्ल है। कहा जाता है कि उन दोनों ने ही पिछले कई वर्षों से कंस की ओर से जाने वाले कितने ही दानवाकार अनुचरों का वध कर डाला है। देवकीनंदन कृष्ण और रोहिणीनंदन बलभद्र दोनों ही एक से बढ़कर एक बलशाली हैं। कंस ने ऐसे तो उनको अपना निकट संबंधी तथा आत्मीय मानकर उनसे मिलने के लिए ही यहां बुलाया है, किंतु कौन जाने कि कंस किस समय अवसर निकालकर उनके

साथ घात कर बैठे!

मात्र चर्चा सुनने की बात और ही थी—आज उन दोनों युवकों को प्रत्यक्ष देखने के बाद हर किसी का मन भारी हो रहा था। अपनी छवि से मन को मोह लेने वाले ये दोनों यदि वास्तव में वसुदेव के ही पुत्र हैं तो उन जैसा भाग्यशाली पिता संसार में दूसरा कौन होगा! किंतु क्या अब वसुदेव को कंस की गर्हित कामना के कारण इन दोनों पुत्रों से भी वंचित होना पड़ेगा? कंस वास्तव में मनुष्य नहीं, राक्षस है!

कुछ ही देर में सारे नगर में कृष्ण और बलदेव के आने की बात फैल गई!

उस समय कंस सोकर उठा ही था। महारानी प्राप्ति पर्यंक के निकट ही आसन पर अलसाई-सी बैठी कहीं खोई-सी थी। कंस ने उसको चिंतालीन देखा तो स्वयं उदास होकर बोला, ''आज हो क्या गया, देवी? प्रातवेला में ही अचानक देवी का मुखमंडल कुम्हलाया देखकर चिंता होती है! कहीं....''

प्राप्ति तत्काल उठी। पति को अपनी कोमल भुजाओं में भरकर उसने आलिंगन में बांध लिया। बोली, ''चिंता की ही बात तो हो ही रही है, देव। आप इतनी देर तक तो कभी नहीं सोते! महारानी अस्ति देव का दर्शन पाने को व्यग्र स्वयं यहां कितनी ही बार आ चुकी हैं। उनको न जाने किस कारण चिंता व्याप रही है, भगवान् रुद्र कल्याण करें।'' प्राप्ति की देह कुछ कांपती-सी, पति से लिपटी, थरथराती रही।

कंस ने उसकी व्यग्रता अनुभव की और अपनी प्रियतमा को भुजदंडों के बीच बांधकर मानो उसकी रक्षा का आश्वासन देता हुआ वह बोला, ''कहीं महारानी को कोई कष्ट तो नहीं है, देवी। तुमने पहले ही जगा दिया होता।''

प्राप्ति ने पहली बार आज महाराज की अवहेलना-सी की और कुछ खीझी-सी बोली, ''मैं तो जीवन-भर महाराज को जगाती ही रही, किंतु मेरी तो कभी किसी ने सुनी ही नहीं। आज महारानी ने पहली बार मुझे ऐसा आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो, महाराज को जगाकर मुझे बुलवा लेना। कहीं कुछ अशुभ की आशंका उन्हें पीड़ित कर रही है, देव।''

''अशुभ! अर्थात्?'' कंस ने तत्काल उसको छोड़कर अपना उत्तरीय संभाला। बोला, ''मैं ही जाता हूं। कहां हैं महारानी? अपने कक्ष में?''

''मैं तो यही हूं, महाराज!'' कहती-कहती सहसा अस्ति भीतर आ पहुंची।

महारानी अस्ति का शिथिल श्रृंगार तथा किंचित हतप्रभ और आहत-सा

रूप देखकर कंस को ठेस लगी। बोला, ''यह क्या? महारानी का यह रूप देखकर तो....''

अस्ति ने अपनी बड़ी-बड़ी कातर आंखें उठाकर पति की ओर देखा और विचलित कंठ से बोली, ''महाराज! सावधान! विकट समय आ पहुंचा है। आपने मेरी नहीं सुनी न! अब तो लगता है कि मथुरा पर प्रलय की क्रूर दृष्टि आ ही पड़ी है। यदि पहले ही अपना दूत मगध भेज देते तो....''

''किंतु हुआ क्या, देवी? ऐसा क्या हो गया कि तुम इस प्रकार विचलित हो रही हो?''

अस्ति ने कांपकर कहा, ''अब तक तो वैसा कुछ नहीं हुआ, महाराज! किंतु लगता है, आज....शीघ्र ही कुछ होने वाला अवश्य है! आज पहली बार मेरी छाती धकधक कर रही है। महाराज, आप तत्काल अपने सेनापतियों को सावधान कर दें। मैंने विभांड को सावधान कर दिया है....किंतु वे दोनों तो अब....अब तो हर ओर....हर दिशा में वही दोनों दिख रहे हैं! आप तत्काल अक्रूर को आदेश देकर उन दोनों को अपने आवास पर ही बुलवा लें, महाराज! वे तो नगरी में जहां-जहां भी जाते हैं, वहीं उनका जयजयकार होने लगता है। उन दोनों ने अनेक उत्पात किए हैं, महाराज! और हमारी सेना ने अब तक उनके विरुद्ध कुछ भी नहीं किया है! मुझे तो आशंका हो रही है—कहीं यह सब उनकी सोची-समझी चाल तो नहीं है। कहीं आपने उनकी ही इच्छा से—उनकी परोक्ष प्रेरणा से—ही तो उन दोनों को यहां नहीं बुलवाया हो....आपको याद तो है, महाराज....आपने स्वयं अपनी ही इच्छा से उनको मथुरा ले आने का आदेश दिया था?''

महारानी अस्ति की अनर्गल बातों और उसकी व्यग्रता से कंस स्वयं विचलित होकर उसकी ओर ताकता रह गया। फिर बोला, ''स्वयं मैंने ही मंत्रणा-सभा में यह निर्णय लिया था, देवी! किंतु तुमको यह सब सोचने की क्या पड़ी है? आज तुमको इस रूप में, इस प्रकार व्यग्र देखकर मुझे यातना-सी मिल रही है, देवी। तुमने ही तो इतने दिनों से मथुरापुरी का पालन किया है....प्रजा पर शासन किया है। अब इस रूप में तुमको विह्वल देखकर प्रजा पर क्या बीतेगी, महारानी? पहले तो तुम जाकर स्नान आदि से निवृत्त होकर अपने को शांत करो। मैं देखता हूं, कहां क्या हो रहा है।''

किंतु मानिनी महारानी अस्ति आज किसी सामान्य-सी कातर-भीरु स्त्री की भांति, सब कुछ भूलकर सहसा लपकी और पति को अपने आलिंगन में बांधती हुई बोली, ''नहीं, आप अकेले नहीं जाएंगे, महाराज! पहले तो अंगरक्षकों की टोली जाएगी, फिर मेरे अनुचरों का दल आपके साथ-साथ

जाएगा....उन दोनों का कोई विश्वास नहीं....क्या कर डालें!''

कंस को अब पत्नी की इस व्यग्रता पर हँसी आ गई। वह अट्टहास करता हुआ महारानी को अपने वक्ष से सटाए रहा, फिर बोला, ''बहुत दिनों से अपनी महारानी को अंग नहीं लगा पाया था! मैं तो उन दोनों का उपकार ही मानूंगा कि उनके कारण आज मुझे अपनी परम सुंदरी प्रिया को पाने का अवसर तो मिल गया....''

किंतु अस्ति ने आर्त कंठ से विनती की, ''नहीं महाराज! हँसी का अवसर नहीं है यह....मुझे विकट षड्यंत्र की आशंका हो रही है। बिना कोई विशेष प्रयास किए उन दोनों को इतना साहस नहीं हो सकता था कि वे अचानक ही स्वच्छंदतापूर्वक हमारी पुरी में हमारे अनुचरों का वध करते हुए निश्शंक विचर रहे हैं!''

अस्ति ने उसी समय अपनी प्रमुख चरी सुरंगिणी को बुलाकर नगर के हाट में भ्रमण करते दोनों गोपों द्वारा किए गए क्षोभजनक कृत्यों के विषय में सुनाने का आदेश दिया।

सुरंगिणी सहमती-सहमती बताने लगी। उसने सबसे पहले पुरी में प्रवेश करते ही उन दोनों की महाराज कंस के वस्त्रों को रंगने वाले रजक से हुई मुठभेड़ का विवरण सुनाया। बोली :

उन गोपों का दल पुरी की रजक वीथी में पहुंचा तो एक स्थान पर महाराज के सुंदर वस्त्रों की छटा देखकर वे सभी मुग्ध हो गए और मूढ़, बर्बर गंवारों की भांति वे रजक से अपने लिए सुंदर-सुंदर वस्त्र मांगने लगे। रजक ने उनको झिटकारते हुए डपटकर कहा, ''तुम तो महाजंगली गोप हो! ये वस्त्र स्वयं महाराज के हैं। तुम इनको पहनने के लिए सौ-सौ जन्म लोगे, तो भी इनको नहीं पा सकोगे।'' किंतु उन असभ्य गोपों में से कई ने लपककर अनेक वसन उठा लिए और उलटे-पुलटे ढंग से शरीर पर लपेटना शुरू कर दिया।

रजक ने क्रोध से उनको फटकारते हुए कहा, ''तुम सब गंवार महामूर्ख हो! अब यहां से चुपचाप चले जाओ, नहीं तो....'' उसने झटका देकर एक गोप को धकेल दिया।

बस, उनमें से सांवले युवक ने सहसा रजक के सिर पर एक थप्पड़ मार दिया....वह चकराकर दूर जा गिरा और निश्चेष्ट-सा वहीं पड़ा रहा। उसके साथ के रजकों तथा स्त्रियों ने लपककर उसको उठाना चाहा, किंतु वह तो निष्प्राण हो चुका था! रजकों की मंडली और स्त्रियां चिल्लाती, दुहाई देती वहां से सब कुछ छोड़कर भाग निकलीं। गोपों ने मनमाने वसनों को लेकर जैसे-तैसे पहन लिया और 'हा-हा-ठा-ठा' करते हुए हाट में निर्भय टहलने लगे।

वे बार-बार अलग-अलग दुकानों पर रुक-रुककर वहां की सामग्री को देखते और जो भी वस्तु उन्हें अच्छी लग जाती, उसको लेकर ऐसे चल देते मानो सारी सामग्री वहां उनके स्वागत के लिए ही सजी रखी हो। हाट में कोलाहल मचता रहा। सभी दुहाई दे रहे थे, किंतु उस रजक की दुर्गति देखकर किसी को भी उन गोपों के निकट भी जाने का साहस नहीं हो रहा था।

कुछ आगे ही गुणक की शाला है जो राजभवन के वस्त्र सिया करता है! उसके यहां भी नए-नए सुंदर वस्त्रों को देखकर गोप उससे अपने लिए वस्त्र मांगने लगे। गुणक ने अपनी आंखों से रजक की दुर्गति देखी ही थी, उसने दिए भी, किंतु भयवश नहीं...वरन् लगता था....उन गोप युवकों को देखकर वह प्रसन्न हो रहा था, अतः उसने विरोध करना तो दूर, अपने-आप ही चुन-चुनकर, सबसे सुंदर वसनों से उन गोपों को सजाकर उन्हें प्रसन्न किया। यदि किसी का कोई वस्त्र छोटा-बड़ा हुआ तो गुणक और उसके साथियों ने उन्हें उसी समय काट-छांटकर ठीक करके पहनाया।

यह देखकर गोपों के वह दोनों युवक नेता गुणक से बहुत प्रसन्न हुए और उसकी सराहना करते हुए न जाने क्या-क्या कहते रहे! कितु निकट ही आकर खड़े हुए मागध सैनिकों को देखकर गुणक कुछ आशंकित हो रहा था। उसने स्वयं कुछ नहीं कहा, बस, उन गोपों को सादर प्रणाम करके अपने कार्य में लग गया....

आश्चर्य तो यह है कि उस समय नगरी के उस मुख्य हाट की रथ्या और वीथी पर उन गोपों को, विशेषकर उनके दोनों नवयुवा नेताओं को देखने के लिए भीड़-सी उमड़ पड़ी। और तो और, अंतःपुरों से मथुरा की कुलीना वरस्त्रियां तक बाहर निकल आई थीं अथवा अपनी-अपनी अट्टालिकाओं के छज्जों पर खड़ी होकर वे निस्संकोच, उनको अपलक निहारती रहीं। उनको मानो सहज लज्जा अथवा अपनी कुलमर्यादा की भी सुधि नहीं रह गई थी।

उसी समय उस सांवले गोप युवा ने एक चमत्कार-सा कर डाला! महाराज की सैरंध्री त्रिवक्रा कुब्जा उसी मार्ग से महाराज के लिए उत्तम अंगराग, चंदन आदि लेकर आ रही थी। उन गोपों में से सांवले वर्ण के गोप ने सहसा ही बढ़कर उसका पथ अवरुद्ध कर लिया। कुब्जा ने विस्मित होकर अपनी बड़ी-बड़ी, काली-काली सुंदर आंखों से उसकी ओर देखा तो आसक्त-सी होकर हँसती-हँसती बोली, "अरे, लोक का चित्त चुराने वाले मनभावन, तुम कौन हो? यहां कैसे विचर रहे हो? तुमको तो मेरे आवास पर होना था! लो चितचोर, अपने सुंदर अंगों पर हमारे राजसुलभ अंगराग का लेप करके सुख पाओ। तुम्हारे इस मोहक रूप से बढ़कर और किसका रूप होगा जो मेरे इन

उत्तम अंगरागों का लेपन करने योग्य होगा, लो!'' उसने स्वयं ही श्यामवर्ण के युवक कृष्ण के अंगों पर पीत चंदन और दिव्य गंधों से सुरभित अंगराग लगाकर उसको तिलक-चर्चित कर दिया!

फिर उसने निकट ही खड़े स्वर्णाभ कांति वाले युवक से कहा, ''लो, भद्र! तुम भी मेरे इस अनुपम अंगराग को धन्य कर दो।''

और उसने स्वयं ही गौर वर्ण के युवक को भी सुरभित अंगराग के लेपन से और जगमग कर दिया। दोनों ही हँसने लगे।

फिर कृष्ण ने तीन स्थानों से वक्र होने के कारण रूपवती होती हुए भी विरूप-सी दीखती कुब्जा को सहसा ही अपने पास खींच लिया। उसने कुब्जा के दोनों पांवों के पंजों को अपने पांवों से दबाकर अपने दाहिने हाथ की दो अंगुलियां कुब्जा की ठोड़ी पर टिका दीं। अचानक एक झटका दिया। चमत्कार! तीन स्थानों से टेढ़ी, भचक-भचककर चलने वाली कुरूप-सी कुब्जा का कूबर उसकी पीठ से अचानक ही लुप्त हो गया और वह सीधी खड़ी हो गई। अब त्रिवक्रा कुब्जा की छवि देखते ही बनती थी। उसका पृष्ठभाग सीधा हो जाने के कारण उसके अंग-प्रत्यंग सीधे हो गए थे। उसका वक्षस्थल विरूपता से मुक्त हो गया और उसके कुचकलश उन्नत और सुडौल दीखने लगे थे। उसका कटिस्थल भी क्षीण हो गया और नितंब-प्रांत मोहक होकर उभर आया था। वह कुरूपा त्रिवक्रा पलक झपकते ही विलक्षण सुंदरी के रूप में मन को मोहित करने वाली वरांगना युवती हो गई थी!

अपनी रमणीय देहयष्टि पर स्वयं मुग्ध-सी कुब्जा ने आतुर होकर कृष्ण के पीतांबर का छोर पकड़ लिया। बोली, ''अब तुम मेरे आवास पर ही चलो, प्रियतम! मेरा यह जीवन, यह तन-मन, सब कुछ अब तुम्हारा ही हो गया। तुम्हारे बिना मेरा क्या होगा?''

अग्रज बलभद्र तथा गोप संगियों के समक्ष ही उस कामवती रमणी का आग्रह सुनकर कृष्ण हँस पड़ा। कुब्जा से बोला, ''सुंदरी, तुम इस समय तो हमें जाकर पहले राजा के धनुष का दर्शन कर लेने दो। देश-देश से हम कितने ही मल्ल इसी कारण तो मथुरा आए हैं कि मल्लयुद्ध में भाग लें। हमारा कार्य पूरा हो जाने पर मैं अवश्य तुम्हारे यहां आकर तुम्हारा सत्कार स्वीकार करूंगा!''

पच्चीस

कामपीड़ित कुब्जा को वहीं विस्मित-सी छोड़कर कृष्ण और बलभद्र अपने गोप सहचरों के साथ आगे बढ़ चले।

बड़ी देर तक हाट और पुरी के विभिन्न भागों में भ्रमण करते-करते कृष्ण-बलभद्र अंत में उस रंगशाला के निकट जा पहुंचे जहां महाराज कंस का वह विशाल यज्ञ-धनुष रखा था।

उस समय उनकी चेष्टाओं से कुछ आभासित नहीं होता था कि उनके मन में क्या है, वे क्या करने की सोच रहे हैं, अथवा कब क्या कर डालेंगे। उनकी सारी चेष्टाएं गोपन ही रहीं।

वे बिना किसी से कुछ पूछे ही रंगशाला में प्रवेश कर गए। सामने ही कुछ रक्षक सैनिक दिखाई पड़े। श्याम वर्ण के युवक ने उनसे कहा, "भद्र, हम यहां महाराज कंस द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञ के विशाल धनुष को देखने आए हैं। कहां है?"

उस समय आयुधागार में किसी दर्शक आदि के आने की संभावना नहीं थी। और आयुधागार के रक्षक ऐसे किसी अप्रत्याशित अतिथि की तो आशा कर ही नहीं रहे थें। फिर भी अत्यंत मृदु स्वर में कृष्ण की जिज्ञासा सुनकर प्रमुख रक्षक प्रवीरक ने सामने ही ऊंचे मंच पर रखे धनुष की ओर संकेत कर दिया।

कृष्ण और बलदेव एक-दूसरे की ओर देखकर हँसे। फिर कृष्ण मानो धनुष को निकट से देखने के लिए मंच पर चढ़ गया। वह विशाल धनुष मणि-जटित आसन पर रेशमी वस्त्रों से ढककर रखा था। उसकी विधिवत् पूजा की जाती होगी, तभी तो आसपास विविध रंगों के पुष्प बिखरे पड़े थे! पुष्पों के साथ ही चंदन आदि कितने ही मंगल गंधद्रव्यों की सुगंध वहां व्याप्त थी। कृष्ण ने वस्त्र हटा दिया। विशालकाय सुदृढ़ धनुष इतना भारी था कि किसी साधारण योद्धा द्वारा उसको उठा पाना असंभव ही था।

कृष्ण उसकी ओर पल-भर कौतूहल से देखता रहा। उसने एक बार निकट ही खड़े अग्रज बलभद्र की ओर देखा, फिर कौतुक-भरी हँसी हँसकर कृष्ण ने कनखी से शस्त्रागार के रक्षक की ओर देखा और अकस्मात् उस भारी धनुष को सहज ही उठा लिया। धनुष का एक छोर दाहिने पांव से दबाकर कृष्ण ने दूसरे हाथ से पकड़कर ऊपरी छोर को झुकाते हुए उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने का प्रयास किया, किंतु न जाने जान-बूझकर अथवा अचानक ही अधिक जोर लगा देने से वह विशाल पूजित यज्ञ-धनु एकाएक बीच से टूट गया।

उसकी प्रचंड ध्वनि से आयुधागार का रक्षक प्रवीरक चकित-भ्रमित-सा आंखें फाड़े देखता ही रह गया। अगले पल चेत आते ही उसको गहरा आघात लगा। वह चीत्कार-सा भरकर अपने सहायक रक्षकों को पुकारता हुआ कृष्ण की ओर झपट पड़ा।

उसकी ललकार सुनकर अन्य रक्षक भी अपने-अपने शस्त्रास्त्र झनकारते हुए उन दोनों को पकड़कर बंदी बनाने के लिए उन पर टूट पड़े। यह उन दोनों के लिए अप्रत्याशित नहीं था! उन्होंने उस विशाल यज्ञ-धनुष के ही सुदृढ़ खंडों को उठा लिया और देखते ही देखते आयुधागार के रक्षकों को मार भगाया। फिर निर्भीकतापूर्वक डग भरते हुए वे आयुधागार से निकलकर नगर की ओर चले गए।

आहत रक्षक इस आकस्मिक युद्ध से प्रतिहत-से जहां के तहां अवाक् खड़े उन दोनों को वहां से जाते देखते रहे। उनमें से किसी को साहस नहीं हुआ कि बढ़कर उनको रोकने की चेष्टा करता।

प्रधान शस्त्ररक्षक प्रवीरक को चेत आया तो वह कंस के भय से और भी विह्वल हो उठा। उसको और कोई उपाय नहीं सूझा तो वह उसी रूप में, रक्त से नहाया हुआ ही, राजप्रासाद की ओर भागा।

वह कंस की दुहाई देता जा रहा था।

मार्ग में जो भी उसको देखता, उस विचित्र दृश्य से सहमा-सहमा-सा रह जाता। आयुधागार के प्रमुख रक्षक प्रवीरक को लगभग सभी जानते थे और उसकी वीरता से भी परिचित थे। उसको इस प्रकार आहत, रक्तस्नात देखकर हर किसी का हृदय भय और आशंका से दहल उठा। लगा, अवश्य पुरी पर किसी बलशाली शत्रु का आक्रमण हो गया है! अन्यथा धनुर्पाल बलशाली प्रवीरक की यह दुर्दशा किसने कर दी होगी! और जब यह याद आया कि उसको आहत करके कहीं शत्रुओं ने आयुधागार के शस्त्रास्त्रों को भी न लूट लिया हो कि पुरी की रक्षा करना भी कठिन हो जाए, तब तो उनका साहस भंग हो गया और वे भागकर अपनी रक्षा का उपाय करने लगे।

महाराज कंस उस समय अपने कक्ष में ही बैठे अस्ति की दूती सुरंगिणी से पुरी में यादवों द्वारा उन गोप युवाओं की पूजा-अर्चना तथा सत्कार के विषय में विस्तार से समाचार सुन रहे थे। अकस्मात् कोलाहल सुनकर सन्नद्ध प्रहरियों ने राजप्रासाद को घेरकर उसे हर दिशा से सुरक्षित कर दिया। किंतु राजप्रासाद के बाहरी द्वार से ही हाहाकार करते, कंस की दुहाई देते हुए धनुर्पाल प्रवीरक ने प्रवेश किया और कंस के सामने पहुंचते ही धरती पर लोट-सा गया। उसने कराह-कराहकर अपने अधीन रखे महाधनुष के टूटने की सूचना दी।

बोला, ''महाराज! देवता रक्षा करें, आज देव के हर प्रकार से सुरक्षित आयुधागार में जो विचित्र कांड हो गया है....उससे तो प्रतीत होता है कि अब प्रलय की भीषण ज्वालाओं से यह जगत ही नष्ट हो जाएगा! अभय मिले, स्वामी! हम सारे रक्षक उस समय सावधानी से महाधनुष की रक्षा के लिए

सन्नद्ध थे। तभी न जाने किस ओर से दो विलक्षण युवकों ने हमारे देखते-देखते आयुधागार में प्रवेश किया और हमारा उल्लंघन करके सहसा महाधनुष के मंच के निकट जा पहुंचे। हमने उनको रोकने के लिए चारों ओर से घेर लिया। हम उनको जीवित ही बंदी बनाने का प्रयास करने लगे....चरी अर्चिका ने हमें पहले ही सूचना दी थी कि इस समय पुरी में महाराज के दो भागिनेय नगर-दर्शन के निमित्त भ्रमण कर रहे हैं। वे दोनों ही परम रूपवान भी हैं, देव! हमको लगा कि हो, न हो, ये तो महाराज के वही दोनों भागिनेय ही होंगे....हमको अर्चिका ने कुछ ही समय पहले आकर बताया था कि इस समय नगरी में महाराज के वही दोनों भागिनेय यादवों से पूजा-अर्चना प्राप्त कर रहे हैं....उनका ऐसा दिव्य रूप था, स्वामी, कि यहां तो उनकी तुलना में कोई नहीं ठहरता। उनके वस्त्र भी राजसी ही थे, स्वयं आपके वस्त्रों की ही भांति बहुमूल्य और दिव्य...''

प्रवीरक मंत्राविष्ट से बिना रुके बोलता जा रहा था, ''उनमें से एक ने तो पीतांबर और उसी रंग के कुसुमों का हार धारण कर रखा था और दूसरा, जो चंद्रमा की भांति शुभ्र वर्ण का था, उसके बलिष्ठकाय शरीर पर नीले वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। वे दोनों देवपुत्रों के समान तेजस्वी और शक्तिशाली प्रतीत हो रहे थे, महाराज! वे न जाने कब किस ओर से सहसा आकर हमारे समक्ष खड़े हो गए थे....हमें तो उनके आने का आभास तक नहीं हो पाया, मानो वे आकाश-मार्ग से आए हों! महाराज के अंत:पुर में बनी उस रंगभूमि में कोई सामान्य जन आ ही कैसे सकता है, देव! किंतु उन्होंने एक बड़ा ही अनुचित कार्य कर डाला, स्वामी। देखते ही देखते पीतांबरधारी उस श्याम वर्ण के युवक ने सहसा ही विशाल मंच पर चढ़कर पूजित यज्ञ-धनु को उठा लिया और एकाएक उस वज्रकठोर धनुष को मूली की तरह खंडित करके दूर फेंक दिया। उस समय हमको प्रतीत हुआ कि ये तो वैरभाव से हमारी हानि कर रहे हैं। हमने उनको ललकारा और उन्हें बंदी बनाकर महाराज के समक्ष प्रस्तुत करने का निश्चय किया....किंतु वे दोनों तो अमित बलशाली निकले, महाराज। उन दोनों ने टूटे हुए महाधनुष के ही एक-एक खंड उठा लिए और भयंकर प्रहार करके हम सबको आहत कर दिया और स्वयं अछूते ही बच निकले....हम तो यह भी नहीं देख पाए कि वे दोनों कब, किस ओर से सहसा ही निकलकर चले गए। अथवा वहीं खड़े-खड़े अंतर्धान हो गए हो....देव! आपके चरणों की सौगंध, महाराज....उनकी कहीं गंध न पाकर हम भागे-भागे यहीं आ गए। प्रभु, रक्षा करें। हमें आशंका है कि कहीं वे दोनों अत:पुर में न प्रवेश कर गए हों.... वहां तो....''

सहसा कंस हुंकार उठा। और आयुधागार का रक्षक बलशाली प्रवीरक

जड़ की भांति निस्तेज, अवाक् खड़ा रह गया।

कंस ने गंभीर, अर्थ-भरी दृष्टि से अस्ति की ओर देखा।

इतना हो जाने पर भी वहां मात्र महारानी अस्ति ही ऐसी थी जो यह सब सुनकर भी न तो स्तंभित थी, न सशंक ही। अपनी महारानीसुलभ गरिमा के अनुरूप उसने गंभीर आंखों से अनुजा रानी प्राप्ति की ओर देखा जो निश्चय ही यह सब सुनकर विचलित हो उठी थी। निकट ही वह चरी सुरंगिणी भी खड़ी थी, जिसने कुछ ही देर पहले पुरी में विचरते उन दोनों युवकों के आदर-सत्कार पाते और हाट तथा रथ्या-वीथी तथा श्रेष्ठियों के विशाल रत्नजटित भवनों तथा सामान्य पुरजनों के आवासों पर भी उनका अभूतपूर्व ढंग से निरंतर पूजन-अर्चन होते— ऐसा सत्कार पाते देखा था, जो किसी देवपुत्र के लिए भी दुर्लभ ही था।

सुंदरी अस्ति ने तत्काल ही आयुधागार के रक्षक प्रवीरक को अपने एक चर के साथ उसकी और उसके अन्य सैनिकों की उचित चिकित्सा आदि का प्रबंध करने का आदेश देकर विदा कर दिया।

फिर उसने प्राय: रूपवती वधू का रूप धारण करके पौरजनों के भवनों तथा कार्यशालाओं के भीतर पैठकर संवाद एकत्रित करने वाली सुरंगिणी को जाकर वसुदेव के कुल के आवास में तथा उनके परिजनों के यहां क्या हो रहा है— इसका संवाद लाने की आज्ञा दी।

उसके जाने के बाद महारानी अस्ति ने पति की ओर ध्यान दिया। उसकी दृष्टि से छिपा नहीं रहा कि उसका महाबली पति उन दोनों युवकों द्वारा किए जाने वाले असंभव-प्राय कृत्यों से त्रस्त हो उठा है और अब कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा है! वह निकट जाकर कंस को अपनी कोमल भुजाओं से संभालती हुई बोली, ''महाराज, शांत हों! मैंने तो इसी कारण पहले ही कहा था कि आपके ये यादव मंत्री भी कदापि विश्वसनीय नहीं है। हमको उसी समय दूत को मगध भेजकर पूज्य पिता से सहायता मंगवा लेनी थी। तो भी महाराज को इस प्रकार आशंकित नहीं होना चाहिए। अब आप प्रमाद छोड़कर तत्काल उचित उपाय करें और पुरी में यहां-वहां हर स्थान पर विचरण करते हुए अपने प्रभाव से प्रजा को आतंकित करने वाले उन दोनों गोपपुत्रों को इसी क्षण रोकने की चेष्टा करें। मेरा मत तो अब भी वही है कि आपने ही इतने दिनों बार-बार उनको चर्चा में लाकर उन्हें इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया है, अन्यथा वे दोनों इतने विख्यात न हो जाते! आपकी आतुरता का लाभ उठाकर ये यादव परिवार भी निरंतर उनका पराक्रम बढ़ा-चढ़ाकर बताते हुए हमारे रक्षकों को हीन बताते रहे हैं। हमारे योद्धाओं का मनोबल तोड़ने का अवसर तो स्वयं महाराज ने ही अपनी आशंकाओं के चलते शत्रुओं को दे दिया है! इस समय वे आकर पुरी

में घोर उपद्रव कर रहे हैं, अब इसका कुछ निराकरण तो करना ही होगा!''

कंस धनुर्भंग की सूचना पाकर आतंक से कांपने-सा लगा था। महारानी अस्ति की कोमल भुजाओं का अवलंब पाकर वह किंचित संभला और कुछ भर्राए स्वर में बोला, ''ऐसा नहीं है, देवी! मुझे तो पिछले ही वर्ष ताटंक तीर्थ पर उस ऋषि ने जो-जो बताया था, आज वही सब सत्य प्रमाणित हो रहा है! तुमको मैं कैसे विश्वास दिलाऊं कि इस दुष्ट वसुदेव ने हमारे साथ घोर छल किया है। उसने कारागृह में रहते हुए भी न जाने कैसे हमारे शत्रु को यहां से दूर नंद के यहां पहुंचा दिया था। ये दोनों उस नीच वसुदेव के ही पुत्र हैं, जो आज हमारे लिए मृत्यु का संदेश लेकर....''

''छि: छि:, महाराज! अशुभ से मुक्ति पाकर अपनी बलशाली भुजाओं पर विश्वास करें, स्वामी। इन बलिष्ठ भुजदंडों पर मुग्ध होकर ही हमारे पिता महाबली जरासंध ने अमूल्य रत्नों जैसी दो-दो पुत्रियां आपको समर्पित कर दी थीं। हम दोनों को तो आपके ही भुजबल का अवलंब है, महाराज! अब तक आपने जो भी किया है, उसको तो जाने ही दीजिए। आपने मेरे निरंतर चेतावनी देने पर भी बराबर वसुदेव को बंदी बनाकर कारागृह में रखा और नवजात शिशुओं की जघन्य हत्याएं कर-करके अपने विरोधियों को व्यर्थ ही उकसाते रहे हैं। यदि मान भी लूं कि वसुदेव और देवकी के पुत्रों से आपको भय था ही, तो भी आपके द्वारा इस प्रकार नृशंसता के साथ शिशुहत्या करना उचित नहीं था....''

महारानी अस्ति स्वयं को ऊपर से चाहे अडिग जता रही हो, किंतु अब वह भी अंतर तक हिल उठी थी। कुछ कठोर स्वर में कंस की भर्त्सना-सी करती हुई बोली, ''यादवों के मन में तो आरंभ से ही आपके विरोध में कुछ न कुछ कर डालने का संकल्प था! यदि आपने उसी दिन वसुदेव और देवकी की हत्या करवा दी होती, तो भी एक बात तो होती न कि इन कुटिल वृष्णियों का अंत ही हो जाता। किंतु आपने तो दोनों को तब भी जीवित ही रखा और प्रति वर्ष उनकी किसी न किसी संतान की हत्या करके अपनी राक्षसी क्रूरता की ही कीर्ति अर्जित करते रहे!''

सहसा प्राप्ति ने अपनी ज्येष्ठा भगिनी का हाथ थामकर संभवत: जीवन में पहली बार उसको बोलने से रोका। बोली, ''महारानी....क्षमा करें देवी! अब तो चारों ओर से अपशकुन ही दिख रहे हैं। यह समय महाराज की निंदा का नहीं है, कुछ करो! कुछ ऐसा करो, देवी, कि यदि हमारे आर्यपुत्र का ही दोष हो, तो वह भी दूर हो जाए। हमारी राजधानी तो कुछ दिनों से मानो ज्वालाकुंड हो गई हो! आपकी आज्ञा से मैं निरंतर आर्यपुत्र को किसी प्रकार अपने मोह

से ग्रस्त तो किए रही, किंतु, वास्तव में स्वयं मैं निरंतर अपने को ही ज्वालाओं से घिरी, जलती हुई अनुभव करती रही हूं। तो भी मैं अपना कर्तव्य मानकर आपके आदेश से महाराज को तृप्त करती रही। अब तुमसे मेरी विनती है, दीदी, कि महाराज को किसी प्रकार इन पापिष्ठ यादवों के षड्यंत्र से बचाइए! यदि और कोई उपाय न हो तो किसी प्रकार हम महाराज सहित अपनी छोटी-सी सेना के साथ मागध योद्धाओं की सुरक्षा में मगध की ओर ही प्रस्थान कर दें। फिर महाबली मगधपति स्वयं ही आकर इन कुचाली यादवों को दंड देंगे।''

''नहीं!'' कंस ने सहसा गरजकर कहा, ''तुम दोनों अंततः हो तो स्त्री ही। तुम आसन्न संकट से विकल होकर मेरे पलायन करने का स्वप्न देखने लगी हो! महारानी, मैंने....महाबली कंस की इन भुजाओं ने अपने ही बल पर इतने वर्षों से इन यादवों को, इनके महापराक्रमी प्रमुखों को भी अपने कारागार में रखकर मथुरा पर अखंड शासन किया है! अब तुम कहती हो कि मैं इन कपटी षड्यंत्रकारियों से भयभीत होकर यहां से भागने का उपाय करूं! किंतु महारानी, तुमको क्या हो गया है? तुम तो सदा ही पराक्रम की कामना करती रही हो। तुमने तो आज तक मुझे एक बार भी आकुल नहीं होने दिया, फिर आज इस प्रकार भीरुता पर क्यों उतर आई हो! तुम देखती रहो....बस, तुम किसी प्रकार अपने अत:पुर की रक्षा का ध्यान रखना। ऐसे तो मेरी आज्ञा से सुनामा ने हमारे तीन-तीन अनुजों को राजप्रासाद और अंत:पुर की रक्षा के लिए ही नियुक्त कर दिया है! उनको लांघकर किसमें साहस होगा कि कंस के अंत:पुर में प्रवेश करने की सोचे! किंतु इस समय हो सकता है कि सचमुच कुछ यादव इस कोलाहल और उथल-पुथल का लाभ उठाने का प्रयास करें। उनकी संख्या नगण्य ही है। हमारे मित्र अधिकांश युवा यादव योद्धाओं में से अकेले अक्रूर की ही अपनी विशाल सेना है। फिर उन्होंने स्वयं वृष्णिकुल के यादवों को भी विविध प्रलोभन तथा सुविधाएं देकर हमारे पक्ष में ही कर लिया है। वसुदेव के पराभूत हो जाने के बाद उनकी ओर से किसी प्रकार की आशा न रह जाने के कारण वे यादव अब उस धूर्त को तो याद तक नहीं करते! वे सब हमारी ओर से सन्नद्ध होकर युद्ध करेंगे। किंतु हमसे युद्ध करने कोई आएगा तभी तो! हमारे दास इन गोपों में क्या कोई इतना बलशाली है कि अपने छोटे-छोटे दंडों के बल पर हमारी सुसज्जित सेनाओं का सामना करके पार पा सकेगा?''

सन्नाटा छाया रहा।

प्राप्ति अनुनय-भरे नेत्रों से अग्रजा अस्ति की ओर देख रही थी। उसका विलासी मन तो केवल कंस का कल्याण चाहता था। संयोग से मथुरा की रानी

बनकर आने के बाद से ही अस्ति तो महारानी के पद के अनुरूप राजकाज में ही संलग्न होकर रह गई थी। अपनी महासुंदरी अनुजा प्राप्ति के रूप-यौवन का उपयोग वह पति को उलझाए रखने के लिए ही करती रही। स्वयं अस्ति का रूप और उसकी काम-वासना प्रचंड ही थी, किंतु उसका उपयोग वह मात्र पति को वश में करके वह स्वयं अनुचरी बनकर नहीं रह सकती थी। वरन् अपने उद्दाम यौवन का उपयोग वह अपने पति के साम्राज्य को विशालतर बनाने के लिए करना चाहती थी! अपने पिता महाबली जरासंध की महत्त्वकांक्षा से उन दोनों को ऐसी ही प्रेरणा मिली थी! उत्तर भारत को येन-केन-प्रकारेण मगध के चक्रवर्ती क्षेत्र के अधीन लाना, यही उनका ध्येय था। और इसके लिए कम से कम अस्ति तो पूर्णत: समर्पित ही थी। अपनी महत्त्वाकांक्षा का निर्विरोध वहन करने के लिए उसने अपनी भगिनी प्राप्ति का सहारा लिया जो किसी न किसी रूप में स्वयं भी कंस की प्रिया बनकर कामनाओं का भरपूर सुख पाने को व्यग्र रहती थी! अस्ति ने तो जैसे मनोकामना ही पूरी कर दी हो उसकी! प्राप्ति अपनी अग्रजा के प्रति अनुगृहीत ही थी....

महारानी अस्ति उस समय भी विचारों में उलझी थी। कंस को लगा कि उसकी महारानी अब निरुत्तर होकर चुप रह गई है। वह मन से तो त्रस्त ही था, किंतु आज महारानी अस्ति को इस प्रकार अपने बल-पराक्रम की चर्चा से प्रतिहत देख वह विहँसकर उठता हुआ बोला, "अब तुम दोनों रानियां निर्भीक मन से सुखपूर्वक गांधार की तीक्ष्ण सुरा का आनंद लो। मैं राजसभा की ओर जाता हूं। अक्रूर ने गोकुल से आने के बाद अभी तक अपनी पूरी यात्रा का विवरण नहीं दिया है। उससे कुछ बात करने के बाद ही निर्णय करूंगा कि इन धूर्त गोपों और यादवों के मन में क्या है! मेरा विचार है कि देवकी के उस पुत्र को यहीं मथुरा में रोककर उन दोनों की उचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करवा दूं।"

दोनों ही रानियों ने चकित होकर कंस की ओर देखा। प्राप्ति तो अकुलाकर बोली, "आर्यपुत्र! आपने तो...."

"कुछ न कुछ तो करना ही होगा न! क्यों महारानी? सुनता हूं, वे दोनों मल्लविद्या में बड़ी रुचि लेते हैं! सोचता हूं कि अपने दोनों महामल्लों मुष्टिक और चाणूर से ही उनका दीक्षा-संस्कार करवा दूं...." कंस ने अट्टहास किया।

अस्ति समझ गई कि दोनों भागिनेयों का मुष्टिक और चाणूर से अंतिम संस्कार करवाने का निश्चय करके महाराज अपने मन में इतना प्रसन्न हो रहे हैं।

किंतु इतने पर भी अस्ति को प्रतीत हुआ कि महाराज वास्तव में स्वयं

इस कल्पना से सुख नहीं अनुभव कर रहे हैं....कहीं न कहीं घोर त्रास की गहन छाया उनकी हँसी को आवृत किए हुए थी....

रानियों की ओर से कोई उत्तर पाने की कामना भी नहीं थी कंस को। वह उनकी ओर एक बार गहरी दृष्टि डालकर उठा और अपना उत्तरीय संभालता हुआ द्वार की ओर बढ़ चला।

महारानी अस्ति ने डांवाडोल होकर संभवत: इतने वर्षों में पहली बार पति को अत्यंत मधुर स्वर में आमंत्रित किया, ''मैं प्रमदवन में प्रतीक्षा करती रहूंगी....''

किंतु कंस चला गया।

छब्बीस

धनुष तोड़कर भी उन दोनों के सकुशल निकल जाने की सूचना पाने के बाद कंस को लगा मानो उसका हर प्रयास अब व्यर्थ होकर रह जाएगा। उसको एकाएक उस त्रिकालद्रष्टा ऋषि की बातें याद हो आईं, जिसकी भविष्यवाणी से त्रस्त होकर ही कंस ने देवकी के छह-छह पुत्रों को शिला पर पटककर मार दिया था। वह सब सुनकर ऋषि ने व्यंग्य से हँसते हुए कंस की ओर देखकर कहा था, ''राजन्, कौन जाने कि तुमने जिन नवजात भागिनेयों का इस प्रकार वध कर डाला है, वही तुम्हारी मृत्यु के कारण हों! तुमने इतना नहीं सोचा कि जब प्रारब्ध ने किसी कार्य का निश्चय कर दिया हो तो उसे किसी दुश्चेष्टा द्वारा नहीं बदला जा सकता। नियति की रेखा अमिट होती है। उसे तुम कैसे बदल सकते हो?''

आज महाराज कंस को लगता है कि नियति की वही रेखा आ गई है! उसकी अवहेलना करके, वह अंत:पुर से संलग्न आयुधागार तक पहुंच गया! यज्ञधनु खंडित कर डाला उसने और उसकी रक्षा करने वाली सेना तक उसे न रोक सकी, न बंदी बना पाई! इसका तो यही अर्थ हुआ कि यदि वह चाहता तो यहां हमारे प्रासाद में....अंत:पुर में भी प्रवेश करके कुछ कर डालता और कोई उसको रोक नहीं सकता था! उसने अंत:पुर का मार्ग पार करके ही तो आयुधागार में प्रवेश किया होगा!

विचलित कंस उसी समय बाहर निकल आया। उसको यह सुधि भी नहीं रही कि इस समय प्रमदवन में स्वयं महारानी अस्ति उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। कंस इतना उद्वेलित हो गया था कि अब अस्ति और प्राप्ति का रूप-यौवन भी उसे निरर्थक-सा लगने लगा था। उसके समक्ष तो अब जैसे जीवन

की अंतिम घटिका आकर बारंबार उसे आंदोलित कर रही थी। जो महाराज कंस अपने अपार बल से मदांध होकर अमरता की ओर प्रयाण करने को उत्सुक रहते थे, जिन महाराज कंस को अब तक मगध की अपरूपा सुंदरियों का यौवन ही समस्त विश्व की अनुपम विभूति जान पड़ता था और जिन महाराज कंस को विश्वास था कि बाणासुर और प्रतापी कालयवन जैसे महापराक्रमी राजाओं के मित्र और संरक्षक स्वयं मगध के चक्रवर्ती जरासंध अपने जिस जामाता कंस की रक्षा करते हों, उसे कौन छू सकता है....वही महाबली कंस अब अपने को दीनहीन, कातर, निर्बल व्यक्ति की भांति मृत्यु के भय से कांपता अनुभव कर रहा था!

उसने मन में सोचा—प्राप्ति का कहना मानकर यदि वह इस समय स्वयं ही मगध चला जाता अथवा वेगगामी दूतों से संवाद भेजकर किसी बहाने महाराज जरासंध को ही आमंत्रित कर लेता तो कम से कम आसन्न विपदा से तो बच ही जाता। पुरुषार्थ से न सही, पलायन से तो इस अमिट रेखा को बदला जा सकता है! महर्षि ने यही तो कहा था कि यदि उस समय तक महाराज ने अपने विद्रोही को किसी प्रकार पराजित कर दिया तो भी वह किसी न किसी प्रकार से आपको पराभूत कर सकता है! उससे बचने का तो एक ही मार्ग है कि आप पहले ही उसको अपना बनाकर इस शत्रुता को ही निर्मूल कर दें! यद्यपि आपके नक्षत्रों से ऐसा लगता तो नहीं कि आप अपने वैरी को कभी अपना सकेंगे....

''यह तो पुरुषार्ष से भी अधिक कठिन मार्ग है!''

कहते-कहते ऋषि ने मुसकराकर कंस को आश्वासन दिया था, ''राजन्, कहा जाता है कि पुण्यबल हो तो प्रारब्ध का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है। हमने तो सुना है कि आपकी पत्नियां आपके लिए विशेष आयोजन करती ही रहती हैं। उनकी ओर से यदि महारुद्र की उपासना की जाए तो संभवत: आपके अनिष्ट का बल क्षीण हो सकता है।''

किंतु उन दिनों कंस से यह सब सुनकर महारानी अस्ति ने हँसकर कहा था, ''महाराज को मात्र अपने पराक्रम पर विश्वास होना चाहिए, जिसके बल पर हम जैसी पत्नियों को आपने जीता है! हम चाहे कुछ भी कर लें, आपके पराक्रम से तो अधिक नहीं कर सकतीं। हमारे महाबली पिता ने अपनी ओर से भगवान रुद्र की उपासना की है और उनकी पूजा-बलि देकर निरंतर उपासना करते ही रहते हैं, किंतु उनकी विजय का इतिहास तो वास्तव में उनका पराक्रम ही लिखा करता है, महाराज! आपको किसी ढोंगी आर्य ऋषि की बातों में आकर ऐसी भीरुता नहीं अपनानी चाहिए। आपको भयभीत देखकर तो आपके

वैरी प्रसन्न ही होंगे और आपका उपहास करने के साथ ही वे और भी उत्साह के साथ आपका अनिष्ट करने का उपाय करने लगेंगे। आप निश्चिंत रहें, महाराज! हमारी आंखों से बचकर कोई आपका अहित नहीं कर सकता। आप तो निश्चिंत होकर जीवन के सुख का रस भोगते रहें और हमको राजकाज चलाने दें। हमारी ओर से आप निश्चिंत रहकर अबाध राजसुख भोग सकें—ऐसा ही आयोजन कर दिया गया है।''

महाराज कंस! हहह....!

कंस को हँसी आती है। वह अपनी ही स्थिति पर हँस रहा है और अब अपने को और सुरक्षित करने के लिए स्वयं सक्रिय हो गया है। कीकट संस्कारों में पली इन उन्मदयौवना सुंदरियों के पास देह का सौंदर्य मात्र हो, तो हो। वे आर्यललनाओं की भांति पति की प्रतिष्ठा और समर्पण की भावना क्या जानें! इन संस्कारों से तो वे पूर्णत: वंचित ही हैं। उनको तो बस, इतना ही आता है कि अपने पति को रमण का सुख देकर सदा तृप्त करते रहना चाहिए। और संभवत उनकी दृष्टि में पति की पूजा का यही अन्यतम मार्ग है....

अस्ति की देह का वैभव याद आता है तो कंस को लगता है कि वह व्यर्थ ही न जाने और किस जीवन की लालसा से ग्रस्त होकर ऐसी बातें सोचने लगा है। इस लोक में उसके समान कौन इतना भाग्यशाली होगा! मगध की दोनों ही अप्सरातुल्य राजदुहिताओं ने अपने लिए जिसका वरण कर लिया हो! चक्रवर्ती की दोनों कन्याओं ने कंस का वरण स्वयं ही तो किया था! यह और बात है कि कंस स्वयं भी उन पर आसक्त हो गया था। किंतु अंत तक महाराज जरासंध ने ही तो चेदिराज दमघोष का आश्रय लेकर कंस को अपनी दुहिताओं को प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी! कंस को हँसी आती है....मगध के अधिपति ने मात्र अपने आनबान की रक्षा के लिए इतना नाटक किया था! उसका लाभ भले ही अंत तक स्वयं कंस को मिला। वह यादवगण में जो असंभव था उसको प्राप्त कर सका और साथ ही यहां गणसंघ का महानायक न बनकर सदा-सदा के लिए यहां का राजपद पा गया था। इसका श्रेय तो मगधराज जरासंध को देना ही होगा। लेकिन यह सब मगधराज ने अपने लिए ही किया था, महाराज कंस के लिए तो नहीं! वह अपनी पुत्रियों के स्वामी को मथुरा का एकछत्र अधिपति ही देखना चाहता था। फिर कंस पर तो उसका कोई उपकार नहीं हुआ।

इन कल्पनाओं ने कंस को एक बार फिर स्फूर्ति से भर दिया। उसका साहस लौट आया। वह अपने वैरी को अब नहीं छोड़ेगा! उसको यहां बुला ही लिया है तो फिर उसे यहां से जीवित लौटकर नहीं जाने देगा। इसके लिए यदि

सारा का सारा राज्य ही विद्रोह करे तो कंस उसको भी देख लेगा— दमन! घोर दमन!!

उसी आवेश से उमगता कंस सीधा अपने प्रेक्षागार की ओर चला गया।

वहां उसको एकाकी देखते ही कितने ही रक्षक भागे-भागे आए और उसके चारों ओर सन्नद्ध होकर खड़े हो गए। कंस ने उनकी ओर अवहेलना-भरी दृष्टि भी नहीं डाली, मानो वे किसी सहज यंत्र की भांति यही करने के लिए नियुक्त हैं, फिर उन्हें देखने अथवा उनका अभिवादन स्वीकार करने के लिए वैसा कोई प्रदर्शन करने की महाराज को क्या आवश्यकता!

वह देर तक घूम-घूमकर रंगशाला को देखता रहा। उसके मन में तो मात्र यही नाच रहा था कि कल इसी रंगशाला में उसके चिरशत्रु का अंत हो जाएगा! उसका अंत कैसे होगा, इसका उपाय कंस ने कर ही रखा है! वह यदि आज धनुष तोड़कर दंभ में भरा होगा कि उसने तो महाराज कंस की अवहेलना करके अपना पराक्रम दिखा दिया तो भ्रम में ही रहेगा! कल इसी रंगशाला में वह सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। कैसे....इसकी तो उस उत्पाती, मूढ़ युवा ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की होगी।

अपने स्वामिभक्त मंत्री अक्रूर से कंस अवश्य प्रसन्न था। अस्ति ने जिस प्रकार कितनी ही बार अक्रूर की निष्ठा और उसकी चतुरता की परीक्षा ली थी और जिस प्रकार बार-बार कितने ही नाटक रचाकर उसकी सत्यता की परख की थी, उसमें उत्तीर्ण अक्रूर अवश्य ही प्रसंशनीय है। अस्ति की यौवनवती काया मात्र रूप की ही खान नहीं है, वह वास्तव में राजकाज में पटु है। कंस को कल्पना तक नहीं थी कि अस्ति अपना काम साधने के लिए किस सीमा तक जा सकती है! उसका राजकाज अपने-आपमें तो साधना ही है। महारानी ने तो कंस का हित साधने के लिए प्रलंब जैसे बलवान योद्धा को अपना प्रियतम बनाने का प्रलोभन तक दिया था! कोई यह कल्पना में भी सोच सकता है? किंतु कंस को स्वयं महारानी अस्ति ने ही सब कुछ बता दिया था! फिर महारानी अस्ति के प्रति कंस के मन में कोई शंका कैसे बैठा सकता है?

महाराज कंस को याद आया कि जिस दिन महारानी अस्ति को प्रलंब के वध का समाचार रोचमान से मिला था, वह सहसा ही हँसती-हँसती रोने लगी थी। कंस ने उसे अपनी बांहों में लेकर सांत्वना देते हुए कहा था, ''महारानी का यह संताप देखकर सब क्या कहेंगे! और मुझे भी कौतूहल होता है....महारानी को प्रलंब की मृत्यु से ऐसा शोक और हर्ष— एक साथ! कितना विचित्र लगता है....''

महारानी ने मुसकराकर कहा था, ''प्रलंब आपके समान ही महाबली था,

महाराज! और मैंने सोचा था कि प्रलंब की बलि नहीं होगी....आपका शत्रु वह निश्चय ही नष्ट हो जाएगा, किंतु अब तो लगता है कि मुझसे ही अपराध हुआ। प्रलंब जैसे विश्वस्त योद्धा को इस प्रकार से नष्ट होने के लिए नहीं भेजना था। उसको तो अवसर देकर यहां, अपने सामने ही उन गोपों को नष्ट करने का आदेश दिया जाता तो निश्चय ही प्रलंब विजयी होता....अस्तु, अंजलिका ने मुझे उस समय आवेश में लाकर यह अहित किया। वह मायाविनी अप्सरा अंत तक अपनी माया से ही मुझे परास्त करके न जाने कहां चली गई....''

कंस उसका आशय नहीं समझ पाया था। किंतु उसने इस विषय पर अधिक बात नहीं की थी। अवसर ही नहीं मिला था। महारानी अस्ति ने उसी समय सहसा ही सुरंगिणी को बुलवाकर उसको अंजलिका के विषय में तत्काल खोज करने को कहा था। फिर वह किसी और मागध योद्धा से मिलने के लिए कंस से अनुमति लेकर चली गई थी।

किंतु उस दिन तो कंस को कुछ याद नहीं रहा।

एक दिन अकस्मात् कंस को सूझा—कहीं उस अप्सरा अंजलिका ने महारानी का कोई रहस्य तो नहीं खोल दिया है? उस प्रकार अपनी ही एक परिचारिका के विषय में महारानी के इस प्रकार व्यग्र होने का क्या अर्थ हो सकता है?

कुछ ही दिन पश्चात् कंस को सहसा ही पता लगा था कि उसके प्रासाद में रहने वाली एक सुंदर-सी युवती इन दिनों वसुदेव के अनुज देवभाग के आवास में आती-जाती देखी गई है....अंजलिका ही थी वह! और महारानी ने उसको तत्काल ही बंदिनी बनाकर लाने का अथवा उसका किसी भी प्रकार वध कर देने का आदेश दे दिया है!

कंस ने निश्चय किया था कि महारानी से उसके विषय में बात करेगा, किंतु अवसर ही नहीं मिला। कंस को वैसे भी वसुदेव के पुत्रों को गोकुल से मथुरा लाने का उपाय करने में ही इतना समय लग गया था कि कंस को उस परिचारिका की बात ही याद नहीं रही। उसको अब हर बात पर संदेह होने लगा था....फिर कंस ऐसे भी तो महारानी से इस विषय में कुछ पूछते हिचक रहा था। और किसी दिन समय मिलने पर भी वह महारानी से अंजलिका के विषय में पूछ पाएगा या नहीं, इस पर तो स्वयं कंस को ही विश्वास नहीं रहा।

हां, एकमात्र साधन रह गया है—अक्रूर! अब वह महारानी का परम विश्वासपात्र हो चला था और वह महारानी के गोपनीय से गोपनीय रहस्य को भी जानता है....

और उसके लिए कंस को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन अक्रूर ने स्वयं ही आकर विशेष गंभीरता के साथ संवाद दिया, ''महाराज था, अभय मिले! एक दु:संवाद है!''

कंस की भौहें चढ़ गईं। उसने अचरज से अक्रूर की ओर देखा। पूछा, ''किस विषय में कहना चाहते हो?''

''महादेवी की एक परिचारिका का शव महाराज....''

''परिचारिका?'' कंस ने रहस्यमय स्वर में कहा, ''कहीं वही अंजलिका अप्सरा तो नहीं?''

''प्रभु सर्वज्ञ हैं! आपसे क्या छिपा रह सकता है, राजन्? राजप्रासाद में विशेष रूप से इन दिनों वह महारानी के आवास की ही चरी थी, महाराज....न जाने किस दुरात्मा ने उसकी हत्या करके यमुना-तट पर फेंक दिया था। अभय....महारानी तक यह संवाद पहुंचाने का साहस किसी भी राजपुरुष को नहीं होता....सुनता हूं कि महारानी की परमप्रिय अनुचरी थी अंजलिका।''

कंस मन ही मन कुछ पल सोचता रहा फिर हँसकर बोला, ''संवाद दे दो! तुम स्वयं जाकर महारानी को संवाद दे दो, दानपति अक्रूर! निश्शंक रहो। महारानी प्रसन्न ही होंगी। उनको इस संवाद की वास्तव में व्यग्रता से प्रतीक्षा है।''

''महाराज!'' अक्रूर ने आश्चर्य से आंखें फाड़कर देखा।

''उस अप्सरा का शव कहां है....उसको ही लाकर महारानी के सामने प्रस्तुत कर दो तो निश्चय ही तुम्हें पुरस्कार में उसके शरीर को तोलकर उसके भार के बराबर स्वर्ण मिलेगा।''

अक्रूर ने व्यग्र होकर कहा, ''शव तो इतना सड़ चुका था महाराज कि असह्य दुर्गंध के कारण उसको फिर से यमुना में ही प्रवाहित करवा दिया गया है। हां, उसके शरीर पर से मिले वस्त्राभूषणों को सुरक्षित रखवा दिया गया है। महाराज का जैसा आदेश हो....''

कंस ने उसका उत्तर न देकर पूछा, ''हमने सुना है कि पिछले कुछ दिनों से वह दासीपुत्री निरंतर वसुदेव के आवास पर जाया करती थी! हमारे पितृव्य देवभाग के आवास में रहती थी वह!''

अक्रूर ने आश्चर्य से कहा, ''फिर तो इसके विषय में विशेष रूप से शोध करना होगा, महाराज!''

''हां! कर लेने के बाद मुझे सूचित करना!'' कंस ने जरा रुक्ष होकर कहा था। फिर बोला, ''महारानी को तत्काल सूचना दे दो!'' और उठकर प्राप्ति के प्रासाद में चला गया।

अक्रूर को अंततः स्वयं ही जाकर महारानी अस्ति को यह समाचार सुनाना पड़ा। उस समय स्वयं महाराज कंस भी वहीं थे। सुनकर महारानी ने उत्सुकता के साथ कहा, ''तो उसका अंतिम संस्कार तो करवा ही दें, दानपति! वह उस लोक में जाकर अपने पति बाहुक से अपने कृत्यों की क्षमा तो मांग लेगी।''

कहती-कहती अस्ति महाराज की ओर देखकर हँस दी। बोली, ''महाराज, उस 'सती अप्सरा' के लिए मेरी ओर से मथुरा की नृत्यशाला में सभी नर्तकियों-गणिकाओं को एक-एक 'स्वर्ण' पुरस्कार देने का प्रबंध करने का आदेश दें।''

''पुरस्कार नर्तकियों-गणिकाओं को? किस बात का, देवी? सती अप्सरा की हत्या के लिए?'' कंस ने अचानक ही कहा और अट्टहास करके बोला, ''दानपति अक्रूर स्वयं ही दान करवा देंगे।''

''आदेश, महाराज!'' कहकर अक्रूर ने उस नितांत क्रूर राजदंपती के विनाश की देवताओं से प्रार्थना करते हुए वहां से तत्काल विदा ली।

महाराज कंस और महारानी को कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि उसी रात अंजलिका के हाथों में पांच सहस्र मुद्राओं से भरी चर्म-मंजूषा थमाते हुए दानपति अक्रूर ने कहा, ''महारानी की आज्ञा से ये मुद्राएं तुम्हारे नाम पर नर्तकियों तथा गणिकाओं के पुरस्कार हेतु मिली हैं, अंजलिके! अब तुम स्वयं इनका उचित उपयोग करो!'' कहकर वह हँसने लगे।

अंजलिका को हँसी नहीं आई। वह पल-भर सोचती रही, फिर आग्रह के साथ बोली, ''आर्य, यदि अवमानना न समझें तो इस धन को प्रलंब की पत्नी को देने का कष्ट करें।'' पल-भर अंजलिका की भरी हुई आंखों की ओर देखते रहकर अक्रूर ने कहा, ''अंजलिके, तुम्हारी सद्भावना का पुरस्कार प्रलंब की पत्नी को मिल जाएगा, किंतु हम स्वयं ऐसा नहीं कर सकेंगे। महारानी अस्ति को सूचना मिली तो वह तत्काल ही कहीं न कहीं षड्यंत्र सूंघकर तुम्हारी खोज करवाएगी। ऐसे भी अब तुम्हारे लिए आर्य देवभाग के अंतःपुर से बाहर जाना हितकर नहीं होगा। हम सभी ऐसे संकट में पड़ जाएंगे कि देवी उग्रसेना का भी कोई अनुरोध कंस नहीं मानेगा। ऐसे में एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि तुम अपने को....अर्थात् 'अंजलिका' को अब मर ही जाने दो! और उस सुंदर 'परिचारिका' को जीवित कर दो जो उस रात देवी रोहिणी को महाराज वसुदेव के पास ले आई थी!''

अंजलिका ने उनको प्रणाम करके कहा, ''देव की इच्छा।''

''तुमको उसी दिन से देवी रोहिणी अपनी अनुजा के समान ममता देती हैं। मेरा विचार है कि तुम यहां से गोपों के दल के साथ गोपी के वेष में गोकुल ही चली जाओ! वहां देवी रोहिणी तुमको अवश्य सुखद आश्रय देंगी।''

अंजलिका के लिए 'ना' करने का न तो कोई कारण ही था, न वह 'ना' करना ही चाहती थी। दस-बारह वर्ष पूर्व की उस रात में देवी रोहिणी का सान्निध्य उसको मात्र कुछ ही पलों के लिए प्राप्त हुआ था, किंतु उतनी ही देर में वह देवी रोहिणी की अपनी बन गई थी।

गोपों का दल मथुरा आता-जाता ही रहता था। महाराज का आदेश पाने के बाद गोपों को कर ही नहीं, उपायन लेकर भी मथुरा जाना ही होता था। इस बार अक्रूर का संवाद पाकर नंद अपने गोपों का दल भेजते समय कई गोपिकाओं को भी भेज देंगे और मात्र एक पखवारे के बाद अंजलिका को गोपबाला के वेश में साथ लेकर गोपों का दल गोकुल चला जाएगा। उस दल के पास स्वयं मंत्रिवर अक्रूर का आदेश होगा, अत: कोई भी उनको रोकने का प्रयास नहीं करेगा!

यही निश्चित रहा।

किंतु इसका अवसर ही कहां मिला? अंजलिका कामरुपिणी अप्सराओं की माया तो जानती ही थी—वह अब भी वेष बदलकर कभी अक्रूर के यहां रहती, कभी आर्य देवभाग के अंत:पुर में। और प्राय: पुरी में जहां-तहां विचरण करके संवाद भी जुटा लाती थी। हां, 'अंजलिका' का वास्तविक रूप उसने त्याग ही दिया था। और नए रूप में उसे पहचान पाना असंभव ही था।

सत्ताईस

यज्ञ-धनुष टूटने की सूचना पाने के बाद से कंस इस कारण और उद्विग्न हो उठा था कि उसको लगा, यह अपने-आपमें घोर अपशकुन हो गया! यज्ञ-धनुष की स्थापना करके कंस ने सोचा था, इस यज्ञ में जो भी योद्धा विजयी होगा, उसको अपने प्रमुख सेनापतियों में स्थान देगा और अपनी सेना को और भी समर्थ बनाकर वह निकट भविष्य में ही राजा जरासंध की ओर से होने वाले विजय-अभियान में अपने बाहुबल से कीर्तिमान स्थापित करके दिखा देगा। वह सिद्ध कर देगा कि इस समय पृथ्वी पर वास्तव में कंस ही महाबली है। और हो सका हो वह मगधपति से कहेगा कि इसी अभियान में वह कुरुओं पर भी आक्रमण करें और उनकी युगों से व्याप्त प्रभुसत्ता को भंग करके यह दिखा दें कि अब वह युग बीत गया, जब हस्तिनापुर के योद्धाओं की धाक सारी पृथ्वी

पर व्याप्त थी। अब कुरुकुल की शक्तिमत्ता मात्र सुनी-सुनाई गाथा-भर रह गई है। अब उनके स्थान पर मथुरा का दिग्विजेता बलवान कंस ही सर्वश्रेष्ठ है।

वह उद्विग्न होकर उठा और ऐसे ही टहलता-टहलता एक बार फिर अपने उस विशाल प्रेक्षागृह को देखने के लिए चला गया जिसे राजप्रासाद से कुछ ही दूरी पर विशेष रूप से इस अवसर पर मल्लों के द्वंद्व के लिए निर्मित करवाया गया था।

उस विशाल प्रेक्षागार का सिंहद्वार ही इतना विशाल था कि देखने वाले के मन पर आतंक-सा छा जाता था। कंस उसको देखकर प्रसन्न हो गया। वह प्रेक्षागृह के एक-एक खंड का निरीक्षण करने लगा।

इसके निर्माण के लिए विभिन्न शिल्पों के आधार पर ही जीविका अर्जित करने वाले अनेक विख्यात वास्तुशिल्पियों और कलाकारों को नियुक्त किया गया था। कंस ने निश्चय कर लिया था कि इसी पर्व पर अपने उन शत्रुओं— वसुदेव के दोनों पुत्रों को सदा-सदा के लिए शांत कर देगा और यदि वृष्णियों की ओर से कोई विद्रोह हुआ तो उनको भी सदा-सदा के लिए निर्मूल कर देगा। अब वह अधिक दिनों तक उनके कारण उद्विग्नता-भरा जीवन नहीं जीना चाहता।

यह एक ऐसा प्रसंग था, जिसके लिए महारानी अस्ति की ओर से अब भी कंस को समर्थन नहीं मिला था। वह कहती थी कि ऐसा कुछ भी करने के पूर्व एक बार मगधपति से परामर्श कर लेना हितकर होगा। किंतु कंस को इसमें अपना अपमान अनुभव होता था। महारानी अस्ति पति की इस भावना से क्षुब्ध रहती थी— वह अब मगधराज जरासंध की भी अवहेलना करने लगे हैं! महाराज कंस को यह भूल ही गया है कि मगधपति की कृपा से ही उनको मथुरा के यादवगण का एकछत्र राजा बनने को अवसर मिला है। महाबली जरासंध ने ही तो उनको मथुरा का अधिपति बनाया! अब महाराज कंस को उन्हीं मगधपति के सामने अपनी विपदा के समय सहायता मांगते लज्जा आती है!

अस्ति ने कंस की बात पर कुछ नहीं कहा था, किंतु कंस जानता था कि महारानी को उस पर रोष है। वह नहीं चाहती कि कंस उसकी इच्छा से अलग जाकर कुछ ऐसा करे।

कंस को अब किसी की इच्छा के अधीन रहना अच्छा नहीं लगता। महारानी अस्ति और प्राप्ति की अधीनता को कंस अवश्य स्वीकार करता रहा है, किंतु जिन अर्थों में उनकी अधीनता उसे यौवन का सुख देने वाली होती है, बस, उसी सीमा तक। उससे अधिक नहीं।

कंस को अपने पराक्रम पर, अपने भुजदंडों पर पूरा विश्वास रहा है। वह यादवकुल के ही एक बालक को अपना शत्रु कहकर मगधपति से उसके विनाश में सहायता मांगना अपने लिए अपमानजनक मानता है।

उसने अपने भव्य प्रेक्षागृह की शोभा देखी तो उसका अहं जाग उठा। उसको हँसी आई— महारानी अस्ति की नीति और विचार-क्षमता का वह आदर करता रहा है, किंतु इतने-से कार्य के लिए उसको अस्ति की ओर से बार-बार दी जाने वाली चेतावनी अपना तिरस्कार ही प्रतीत होती है। कल....बस, कल....एक दिन और सही। उसका अंत हो जाएगा! फिर वह कामिनी अस्ति को अपनी भुजाओं में भरकर मनुहार कर लेगा....

सिंहद्वार से प्रवेश करके कंस ने जो दृश्य देखा वह तो वास्तव में चकित कर देने वाला था। शिल्पियों ने उस विशाल प्रेक्षागृह की कल्पना में अपना सारा कौशल लगा दिया होगा। दूर-दूर तक प्रशस्त प्रेक्षागार में कितनी ही कलाओं को प्रदर्शित किया गया था। एक से एक सुंदर कितने ही मंचवाट बांधे गए थे। उनको चर्मरज्जु से अत्यंत दृढ़ता से बांधा गया था, जिससे दर्शकों का बोझ पड़ने पर कोई मंच एकाएक टूटकर धराशायी न हो जाए।

मंचवाटों को अत्यंत कलात्मक सज्जा से विभूषित किया गया था। मंचों के साथ अनेक सुशोभना वलभियां[1] बनी थीं, उसमें से कई विशाल वलभियों को तो छह-छह स्तंभों की टेक दी गई थी। अनेक ऐसे छज्जे भी थे जो मात्र एक-एक स्तंभ के सहारे ही स्थिर किए गए थे। ऊंचे-ऊंचे मंचों तक पहुंचने के लिए कितने ही सोपान बने थे, जो बहुत चौड़े और परस्पर सटी हुई सीढ़ियों वाले थे। उन पर बालक-वृद्ध और स्त्रियां सब सहज ही चढ़ सकते थे।

उस विशाल रंगशाला में राजकुल के पुरुषों तथा अंत:पुरिकाओं के लिए कितने ही रत्नजटित सिंहासन भी थे। उन सुंदर आसनों को मंचवाटों के चारों ओर रखा गया था। उनके कारण रंगशाला की शोभा दोगुनी हो गई थी। रंगस्थली में अनेकश: सुंदर-सुंदर वेदियां थीं, जिनमें बहुत बड़ी संख्या में दर्शकों को अपने भीतर भर लेने की क्षमता थी। इनके अतिरिक्त अपार भीड़-भीड़ का ध्यान रखकर विस्तृत रंगशाला में चारों ओर से आने-जाने के लिए अनेक पथ बनाए गए थे। उन वीथियों को भी भव्य द्वारों के साथ ही साथ नवकुसुमित पुष्पों से लदे पौधों से सजाया गया था।

प्रेक्षागृह के निर्माण से संतुष्ट होकर कंस ने वहां नियुक्त राजकर्मियों को निर्देश दिया कि कल प्रातवेला में ही महोत्सव के निमित्त इस समूची रंगस्थली में सुगंधित जल का छिड़काव करके उसको पूरी तरह सुवासित कर दिया जाए। फिर समस्त मंचों, वलभियों तथा वीथियों और पथों को भी रंग-बिरंगी पताकाओं और मालाओं से सुसज्जित कर दिया जाए। मंचों तथा वेदियों को भी उत्तम कोटि के श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कर दिया जाए। शोभा के लिए स्थान-स्थान पर परदे लगा दिए जाएं।

---

[1] वलभियां— छज्जे।

इस यज्ञोत्सव के अवसर पर, विशेषकर प्राचीन परंपरा के अनुसार होने वाले मल्लयुद्धों का आयोजन किया जाना था, अतः कंस ने स्वयं जाकर मल्लों के लिए बने विशाल अखाड़े का भी निरीक्षण किया। उसने कर्मकरों को उनमें भी पर्याप्त कोमल, मृदु मिट्टी तथा गोबर के चूरे आदि की इतनी विशाल राशि एकत्र करवा देने का आदेश दिया कि समय पर उनकी कमी न होने पाए। उसने रंगशाला की शोभा का विस्तार करने के लिए अनेक अलंकृत स्तंभों को भी और गहराई तक खोदकर गाड़ने का आदेश दिया कि कहीं वे उखड़ न जाएं। उन पर कंस ने सोने के चमचमाते कलश स्थापित करके उनको सुरभित, सुस्वादु एवं शीतल जल से भर देने को कहा। उन पानकुंभों के विषय में कंस ने पूरी तरह से सावधान रहने का निर्देश दिया।

फिर वह एक आसन पर बैठ गया और अपने अधिकृतों को बुलवाकर उनके साथ महोत्सव के लिए आवश्यक एक-एक वस्तु पर विचार करता रहा। उसने आदेश दिया कि कल विजेता मल्लों को देने के लिए महोत्सव के अनुरूप ही उत्तम उपहारों को भी एकत्र करके यहीं रंगशाला के भंडार में रखवा लिया जाए।

मल्लों के लिए उसने द्राक्षा आदि के स्वादिष्ट रसों से भरे कुंभ स्थापित करने का भी आदेश दिया। फिर उसने रंगशाला के अध्यक्ष को आदेश दिया कि प्रजा के संतोष के लिए कल मल्लों की प्रतियोगिता के समय यहां मल्लयुद्ध के नियमों को जानने वाले योग्यतम प्रशिक्षकों तथा विशेषज्ञों को आमंत्रित किया जाए। उन सबको हर प्रकार की सुविधा देकर ऐसी व्यवस्था की जाए कि वे समय पर यहां निश्चित रूप से उपस्थित रहें।

एक बार फिर रंगशाला में चारों ओर घूमकर कंस ने एक-एक स्थान को ध्यान से देखा। फिर जाने के पहले उसने फिर विस्तार से अपने राजपुरुषों को समझाकर अनेक आदेश दिए कि कल रंगशाला की भव्य साज-सज्जा किस प्रकार होनी चाहिए।

रंगशाला से निकलकर कंस अपने प्रासाद में पहुंचा तो उसका मन बहुत कुछ स्थिर हो गया था। महारानी अस्ति और प्राप्ति उसकी प्रतीक्षा ही कर रही थीं, किंतु कंस रानियों से मिलने के पहले अपने मंत्रणाकक्ष में जा बैठा।

वह कल के समारोह के विषय में बड़ी देर तक सोचता रहा। कल ही उसको अपने दोनों महाशत्रुओं का अंत कर देना होगा जो कितने ही वर्षों से हर पल आशंका की भांति उस पर छाये रहते हैं। कल के बाद कंस ससमारोह अपनी विजय का अपूर्व उत्सव मनाएगा। फिर महारानी की इच्छा के अनुसार, वास्तव में दिग्विजय के विषय में मात्र सोचते रहने की प्रवृत्ति छोड़कर, शीघ्र ही कुछ ठोस करने की चेष्टा करेगा।

महारानी अस्ति की ओर से फिर दासी आई और प्रमदवन में उनकी आकुल प्रतीक्षा का संवाद दिया। कंस ने रुक्ष स्वर में कहा, ''महारानी से कहो, महाराज को आधी रात के बाद ही समय मिलेगा। आज हमको कल के महोत्सव के विषय में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने होंगे।''

प्राप्ति ने तो एक ही बार महाराज की ओर से ऐसा रुक्ष उत्तर पाने के बाद फिर कोई परिचारिका नहीं भेजी। उसको कुछ-कुछ अनुमान हो गया था कि महाराज कल कोई बहुत विशेष कार्य करना चाहते हैं! किंतु अस्ति को नींद नहीं आ रही थी। उसने कल रात को ही विकट स्वप्न देखा था और दुर्भाग्य से उसके बाद निरंतर प्रयास करने पर भी उसे महाराज कंस से उस विषय में बात करने का अवसर नहीं मिल सका था। अस्ति को लगा, यह भी उसके लिए अपशकुन ही तो है! कंस ने उसकी तो कभी ऐसी अवहेलना नहीं की थी। अवहेलना तो दूर, उलटे सदा ही अस्ति को ऐसा लगता रहा है कि महाराज उसकी एक दृष्टि पाने को तरसते ही रहते हैं। प्राप्ति जैसी सुंदरी भी उनकी उद्दाम वासना तृप्त नहीं कर पाती। अस्ति की ओर से उदग्र आत्मसमर्पण न पाने की स्थिति ही कंस को सदा उसके प्रति आतुर रखती होगी। अस्ति ने अपनी इस विजय को मन में अपने 'अहं' की तृप्ति पाने का साधन बना लिया था। किंतु आज वही महारानी अस्ति बार-बार महाराज से मिलने का अनुरोध कर रही है, फिर भी महाराज कंस को उससे मिलने का अवकाश नहीं! देवता ही कल्याण करें....

कंस ने अस्ति को जब स्पष्ट ही कहलवा दिया कि उसे आज आधी रात तक अवकाश नहीं मिलेगा तो अस्ति ने कुछ सोचकर अपनी विश्वासपात्री कूटचारिणी सुरंगिणी को उसी समय जाकर मगध के बलशाली योद्धा महारथी संवर्त को बुला लाने को भेजा।

संवर्त का नाम सुनकर सुरंगिणी को आश्चर्य हुआ। महारानी की ओर से संवर्त को आज किसलिए बुलवाया जा रहा है, इसका मर्म वह समझ नहीं सकी। महारानी ने पहले भी कितनी ही बार संवर्त को बुलवाया है और हर बार सुरंगिणी ही उसको बुलाने के लिए जाती रही है। अंजलिका के सहसा लुप्त हो जाने के बाद से मात्र सुरंगिणी ही महारानी की परमविश्वसनीया, चहेती चरी रही है और वह महारानी की हर इच्छा और उनकी हर ऐसी कामना तक की साक्षी रही है जो महारानी की कीकट संस्कृति की सारी ही विशेषताओं की प्रतीक रही हैं और उनकी उद्दाम दैहिक आतुरता का साक्ष्य प्रस्तुत करती रही हैं। आज क्या महारानी को फिर से पहले की-सी वासना व्यथित कर रही है? ऐसे समय जब कि महाराज का जीवन भीषण संकट में पड़ा है! क्या महारानी अस्ति को

उनसे सचमुच पति से कोई ममता नहीं रही?

किंतु सुरंगिणी अंजलिका की भांति महारानी की सखी तो नहीं है, वह मात्र चरी है—ऐसी चरी जिसको महारानी की आज्ञा से किसी भी पल मरने को भी तत्पर रहना होता है! महारानी का एक संकेत—एक ही भ्रू-विक्षेप होते ही उसको काल के गाल में पहुंचा देने में पल मात्र की भी देर नहीं होगी।

सुरंगिणी ने उसी समय महारथी संवर्त के भवन पर जाकर सूचना दी कि महारानी ने किसी कारण उसको तत्काल अपने साथ ही लाने की आज्ञा दी है!

संवर्त उस समय अपने शयनागार में था और उसकी पत्नी सोमा उस समय जग ही रही थी। उसने सुरंगिणी का संवाद सुना तो पति से साग्रह बोली, "देवी से कल प्रात: ही जाकर मिल लेना।"

किंतु सुरंगिणी जानती ही थी कि महारानी अस्ति के आदेश की अवहेलना करने का साहस किसी भी मागध योद्धा को नहीं हो सकता। वह द्वार पर ही रुककर प्रतीक्षा करती रही।

न जाने संवर्त ने क्या सोचा और सोमा ने किस प्रकार अपने पति को बाध्य कर दिया, सो सुरंगिणी को पता नहीं, लेकिन अंत तक वह बिना संवर्त के ही लौट पड़ी। तब सोच रही थी कि आखिर महारथी संवर्त के जीवन का अंतिम दिन भी आ ही गया! बेचारी सोमा....

लेकिन राजप्रासाद पर पहुंचकर उसको लगा कि संवर्त को महाकाल की ओर से कुछ दिन और जीवित रहने का अवसर मिल गया है। उस समय रात्रि का तीसरा प्रहर बीतने को था। संवर्त के यहां जाने और वहां से निराश-सी होकर आने में ही इतना समय बीत गया था! सुरंगिणी को द्वारपाल ने ही बताया कि महाराज अभी-अभी महारानी के शयन-कक्ष में आए हैं—इस समय तो महारानी को विधाता से भी मिलने का अवकाश नहीं है!

हँसकर सुरंगिणी संवर्त के जीवन के लिए मन में महाकाल को धन्यवाद-सी देती हुई लौटकर अपने आवास की ओर चली गई। उस रात सुरंगिणी को संभवत: थकान के मारे ऐसी गहरी नींद आई।

प्रात:काल जब वह कोलाहल-सा सुनकर बाहर निकली तो देखा कि मथुरापुरी में भव्य समारोह मनाया जा रहा था। सुरंगिणी ने सुना कि महारानी और महाराज इस समय तक शयनकक्ष से बाहर नहीं आए हैं। वह कुछ देर सोचती रही, फिर न जाने किस अज्ञात शक्ति के संकेत पर महारथी संवर्त के भवन की ओर चल पड़ी।

संवर्त तो उस समय रंगशाला की ओर जा चुका था। भवन में उसकी पत्नी सोमा ही थी। उसने फिर सुरंगिणी को आई देखा तो हँसकर बोली, "महारानी को तो, लगता है, सारी रात नींद नहीं आई होगी न?"

और कोई दिन होता तो सुरंगिणी उसको ऐसा उत्तर देती कि वह जीवन-भर के लिए हँसना ही भूल जाती, किंतु आज उसको ऐसा कुछ करने की इच्छा नहीं हो रही थी। सोमा की बात पर वह स्वयं भी हँस दी। बोली, ''महारानी की तो नहीं जानती, किंतु मैं रात-भर गहरी नींद सोई। इस समय मैं महारानी की आज्ञा से नहीं, अपनी ओर से तुझे प्रसन्न करने को आई हूं। तू संयोगवश ही एक-दो दिन का अवसर पा गई है, तो अपने पति के साथ जीवन का सुख भोग ले। महारानी को अब तक महाराज से ही अवकाश नहीं मिला है कि कल रात को महारथी संवर्त द्वारा अपनी अवहेलना की सूचना पातीं। किंतु समय तो सदा-सदा के लिए एक-सा नहीं रहता न, सो अवसर पाते ही महारानी मुझसे सबसे पहले तो यही पूछेंगी कि संवर्त उस रात आया क्यों नहीं....''

संभवत: कल रात की भांति सोमा पर इस समय मदिरा अथवा मादकता का नशा नहीं सवार था, सो उसे तुरंत ही सुरंगिणी की बात का मर्म समझ में आ गया। वह कांप उठी। पिछली रात के वे पल उसकी आंखों के सामने नाच उठे। वह अकुलाकर बोली, ''महारानी को क्या संवर्त जैसे साधारण योद्धा के विषय में इतनी याद रहती होगी, सखी?''

सुरंगिणी ने आंखों में हँसी छलकाकर कहा, ''तू मुझे सखी कहती हो तो कह ले! किंतु तुझे ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए कि मैं जाकर तेरे लिए महारानी से छल करूंगी अथवा असत्य कह दूंगी!''

सोमा ने आहत होकर उसकी ओर गीली आंखों से देखा और सिर झुकाए चुप ही रही।

सुरंगिणी बोली, ''मैं इस समय महारानी के कहने से नहीं आई हूं। मुझे वास्तव में तेरे भाग्य से प्रसन्नता हो रही थी, सो चली आई। अब तू यदि संवर्त का जीवन चाहती हो तो किसी प्रकार तत्काल मथुरा छोड़कर पति के साथ कहीं दूर चली जा।''

उसकी बातों में कुछ ऐसा था कि अब तक शंका से संतप्त सोमा को लगा, सुरंगिणी सचमुच उसका हित करने के लिए ही आई है! धीमे से बोली, ''किंतु महारानी से दूर तो कोई भी स्थान नहीं है न!''

''इस समय है....तू 'महाराज' की आज्ञा से कहीं चली जा।''

सोमा सोचती रही फिर मानो उसकी वाणी का मर्म समझकर बोली, ''महाराज की आज्ञा लेने का हमें अवसर ही कहां रहा?''

सुरंगिणी ने कहा, ''महाराज तो इन दिनों, संभवत: एक पखवारे तक अब किसी भी बात का अवकाश नहीं पाएंगे। इसीलिए तो कहती हूं कि इस समय किसी को विश्वास कराने के लिए तेरा कह देना ही बहुत होगा कि 'महाराज ने ही आज्ञा दी है कि आज ही....' जहां जाना हो, कह देना कि 'हम

महाराज की आज्ञा से ही जा रहे हैं....' संवर्त तेरे साथ होगा ही। तू भीरुता त्यागकर अपने पति की प्राणरक्षा कर ले....''

सुरंगिणी कातर सोमा को और वार्ता का अवसर दिए बिना तत्काल वहां से निकल आई।

आज तक सुरंगिणी ने महारानी के भ्रू-विक्षेप मात्र पर न जाने कितने योद्धाओं को तड़प-तड़पकर मरते देखा था—रुधिर से नहाए....शिरोच्छेदन के बाद भी तड़पते....रक्त की फुहार छोड़ते....कल की घटना के बाद सुरंगिणी को विश्वास हो गया था कि जैसे ही महारानी अस्ति को उससे बात करने का अवसर मिलेगा, वह संवर्त के विषय में अवश्य पूछेंगी और उनके सामने सुरंगिणी असत्य बोल भी देगी तो छिपा नहीं सकेगी और उसका एक ही अर्थ होगा—संवर्त के साथ-साथ उसे भी मृत्युदंड!

इतने दिनों से सुरंगिणी महारानी की चरी के रूप में न जाने कितने योद्धाओं के लिए मृत्यु का संदेश ला चुकी थी! इन दिनों पुरी में मची भयानक उथल-पुथल से वह स्वयं अस्त-व्यस्त हो चली थी। न जाने क्यों उसको लगता था कि वह स्वयं किसी की रक्षा तो कर नहीं सकती, लेकिन अगर संभव हो तो उनको सावधान करके, मृत्यु के मुख में जाने से पहले आत्मरक्षा की प्रेरणा तो दे ही सकती है!

यही सोचकर सुरंगिणी ने महारथी संवर्त की पत्नी को सावधान कर दिया था और यह आशा करती हुई उसके आवास से निकलकर बाहर आई कि कौन जाने, महाकाल ने जब एक बार संवर्त को बचा ही दिया है, तो संभव है, सोमा किसी प्रकार अपनी चतुराई से उसको लेकर कहीं बाहर चली ही जाए! उसको सहसा ही विचार आया कि सोमा से कह दे, 'तू पति के साथ जाकर नंद के गोकुल में शरण ले ले। सुनती हूं कि नंद के पुत्र को मारने के लिए महाराज का हर उपाय व्यर्थ हो जाता है। कहा जाता है कि उसने तो इंद्रपूजा तक रोककर अपने गोपों को गोवर्द्धन गिरि की शरण दिलवा दी है....महाप्रलय की-सी वृष्टि के समय उसने गोपों के साथ ही सारे गोधन को भी बचा लिया।' यदि वह सोमा से यह बात कह दे, तो कौन जाने संवर्त की जान बच ही जाए!

सुरंगिणी ठिठककर सोचती रही और सहसा ही लौटकर सोमा से बात करने लगी....

अचानक उसी समय नगरी में प्रचंड कोलाहल मच गया!

सोमा ने पल-भर ध्यान से सुनकर कहा, ''कुछ हो रहा है....इधर आ तो....''

दोनों युवतियां उत्कंठित-सी झरोखे पर जाकर देखने लगीं।

निश्चय ही कुछ भयंकर कांड हो रहा था! उनके आवास से कुछ ही दूरी

पर स्थित हाट की ओर से भयंकर हाहाकार सुनाई पड़ रहा था। ऐसा लगा मानो एक साथ अनेक स्त्री-पुरुष कातर स्वर में चीत्कार कर रहे हों। फिर गर्जन-तर्जन के साथ शस्त्रों की तेज झनकार भी सुनाई पड़ने लगी।

"क्या रहा है?" सोमा ने चकित, भयभीत स्वर में कहा और आशंका के साथ सहसा ही सुरंगिणी का हाथ थामकर जैसे अपने को अवलंब देने की चेष्टा करने लगी।

"यह तो युद्ध-सा हो रहा है!" सुरंगिणी ने कहा और तत्काल पलटकर बोली, "मैं जाती हूं!"

लेकिन सोमा ने उसको पकड़ लिया। बोली, "नहीं, नहीं....तुम भी मत जाओ! यहीं रहो...."

एकाएक 'सोमा! सोमा!' पुकारता एक युवक दौड़ता हुआ उसी ओर आता दिखा। सोमा ने पहचाना, "यह तो मेरा अनुज है....दर्प!"

सुरंगिणी ने उत्कंठित होकर सोमा के अनुज की ओर देखा और एक डग बढ़कर खड़ी हो गई। पूरे वेग से दौड़ता दर्प उछल-उछलकर सीढ़ियां पार करता हुआ ऊपर आया और किसी प्रकार अपनी सांसों पर नियंत्रण करने की चेष्टा करता हुआ बोला, "संवर्त कहां हैं?"

"नहीं हैं।" सोमा कुछ स्पष्ट नहीं कह सकी। बोली, "रंगशाला की ओर गए होंगे।"

"नहीं....नहीं!" दर्प ने अकुलाकर कहा, "वहां....वहां तो वे हत्याएं कर रहे हैं। मगध के योद्धाओं को यादवों ने घेर लिया है....हत्या कर रहे हैं.... हत्या....चलो, भागो यहां से! चल, तू तो चल! आ जा...."

दर्प ने सोमा का हाथ थामकर उसको घसीटा, किंतु सोमा ने बरबस ही झटककर कहा, "पहले जाकर संवर्त को ले आ....जा....जा....रंगशाला में होगा...." कहती-कहती वह अचानक ही सुर काढ़कर रोने लगी।

इतनी देर में सुरंगिणी को आभास-सा मिल गया था कि हो क्या रहा है। उसने जल्दी से सोमा के मुंह पर हाथ रखकर कहा, "चुप....चुप!" फिर धीरे से दर्प से पूछा, "कहां जाएगा? किस ओर...."

"वहां....पिता ने दो रथ ले लिए हैं....सब जा रहे हैं दूर....दूर...उस ओर, वो तो हत्या....हत्या कर रहे हैं....बलि दे रहे हैं! यादव घेर-घेरकर मागधों को मार रहे हैं....गोपों का दल आया है न, वही तो...." दर्प कुछ स्पष्ट कह नहीं पा रहा था।

तो भी सुरंगिणी ने अनुमान लगा लिया कि यादवों ने आज अचानक ही गोपों के साथ मिलकर मगध के योद्धाओं पर आक्रमण कर दिया होगा! किंतु ऐसा तो नहीं कि यादव उन सबको जीतकर मार ही डालेंगे! उसने सोमा को

सांत्वना दी, ''तू अपने पिता के पास जा! मैं जाती हूं....यदि संवर्त राजप्रासाद की ओर होगा तो उसको भी आने को कह दूंगी....तू तो जा....''

और उसने एक प्रकार से बरबस ही सोमा का हाथ पकड़कर दर्प के साथ उसे बाहर कर दिया। फिर वह स्वयं भी निकलकर वीथियों में छिपती-छिपाती-सी राजप्रासाद की ओर चल पड़ी।

किंतु वह महारानी के प्रासाद तक पहुंच नहीं पाई। अचानक ही वीथी में दूसरी ओर से हाहाकार मचाते अनगिनत यादव युवकों का एक दल आता दिखा। स्तब्ध खड़ी सुरंगिणी पर दृष्टि पड़ते ही मानो उनमें विचित्र-सा उछाह आ गया। उन्होंने जोर-जोर से चिल्लाते हुए उसे घेर लिया। एक युवक ने चिल्लाकर कहा, ''यही है वह! इसी हत्यारिणी ने तो महारानी से हमारी भगिनी के विषय में कहा था!''

सुरंगिणी उस यादव युवक को पहचान गई। महारानी की आज्ञा से सुरंगिणी ने सचमुच उसकी बहन के विषय में कुछ सूचना दी तो थी, किंतु महारानी ने उसका कोई अहित तो नहीं किया था! उसका हित ही किया था....तो फिर ये यादव उसकी ऐसे तिरस्कार के साथ भर्त्सना क्यों कर रहे हैं....

सुरंगिणी इस विषय में कुछ कहना चाहती थी, किंतु उसे बोलने का अवसर नहीं दिया किसी ने।

दो-तीन युवकों ने सहसा ही सुरंगिणी को घेरकर कहा, ''चल! हमारे साथ चल....''

एक ने खड्ग उठा लिया।

''ठहर जा, बिंब!'' एक कठोर स्वर ने युवक बिंब को ताड़ना-सी दी।

''युयुधान! इस स्त्री ने अकेली ही न जाने कितना अहित किया है हमारा। तू इसको जानता नहीं, यह मगध से आई उसी राक्षसी महारानी की चरी है!''

''हां! मैं इसको नहीं जानता, किंतु तू भी तो नहीं जानता, बिंब!'' युयुधान नामक बलिष्ठकाय युवा ने उसको ललकारकर कहा, ''तुमको इस प्रकार किसी स्त्री पर पराक्रम नहीं दिखाने दूंगा मैं....वासुदेव कृष्ण का आदेश है—किसी स्त्री को प्रताड़ित नहीं किया जाएगा....कदापि नहीं!''

बिंब आक्रोश के साथ चीखकर बोला, ''इसी दुष्टा के कारण मेरी भगिनी को यमुना में प्राण देने पड़े! मैं इसको जीवित नहीं रहने दूंगा।''

''और मैं इसे मरने नहीं दूंगा।'' कहता हुआ युयुधान सहसा उस युवक और सुरंगिणी के बीच अडिग चट्टान की भांति खड़ा हो गया।

सुरंगिणी स्वभाव से भीरु नहीं थी, किंतु इस समय उसने सहसा ही युयुधान को अपने लिए मरने-मारने को तत्पर देखा तो उसकी पीठ से दुबककर

खड़ी हो गई। धीमे से बोली, ''आर्य, मेरा न्याय हो।''

यादव युवकों को परस्पर ही युद्ध के लिए तत्पर होते देखकर सहसा उनके बीच से सबसे वयस्वी युवक सामने आ गया। बोला, ''बिंब! तू अत्याचार नहीं करेगा। हम सब अनाचार का विरोध करने के लिए सन्नद्ध हैं। युयुधान सात्यकि ने उचित ही कहा है। हम इस युवती को न्याय-सभा में ले चलेंगे। वहीं उसका न्याय होगा!''

युयुधान ने ज्येष्ठ युवक की आज्ञा सुनकर आश्वस्त स्वर में सुरंगिणी को अपने निकट ही रहने को कहा।

किंतु बिंब ने उदास होकर कहा, ''अग्रज उद्धव, आप ज्येष्ठ हैं। हमारे नेता हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूं। किंतु स्मरण रहे कि इसी स्त्री के कारण मेरी भगिनी लक्षणा ने यमुना में कूदकर प्राण दे दिया था!....इसका दंड तो इसे मिलना ही चाहिए।''

उद्धव स्वयं वसुदेव के प्रिय अनुज आर्य देवभाग का पुत्र था। उसकी ज्ञान-गरिमा के कारण वय में ज्येष्ठ यादव भी उसका आदर करते थे। वह अत्यंत धीर-गंभीर युवक था।

उसने सांत्वना-भरे स्वर में उत्तर दिया, ''बिंब, सात्यकि युयुधान ने जो किया है, वह मात्र स्त्री पर अनाचार न हो जाए, इसके लिए ही किया है। तेरी भगिनी हम सबकी भगिनी थी और उस पर हुए अत्याचार का दंड अब तो हर अनाचारी को भुगतना होगा। धैर्य से प्रतीक्षा करो। और इस समय हमें जो करना है, पहले उस पर ध्यान दो।''

उद्धव के आदेश से युयुधान ने कहा, ''इस युवती को आर्य देवभाग के आश्रय में पहुंचा देना ही उचित होगा।''

उद्धव ने पल-भर सोचकर कहा, ''नहीं। तू इस युवती को अपनी रक्षा में ले जाकर वृष्णिवीथी में आर्य कनक के आवास पर पहुंचा दे। हां, उनसे बता देना कि हम अब पहले रंगशाला की ओर जा रहे हैं और वहां गोपों के दल के साथ मिलकर अनाचारी मागधों का दमन करेंगे।''

सात्यकि युयुधान ने कहा, ''तो इसे पहुंचाकर मैं स्वयं भी शीघ्र वहीं आता हूं।''

उद्धव ने कहा, ''बिंब! तू भी सात्यकि के साथ जा। हां, यदि हो सके तो तुम दोनों और भी युवकों को रंगशाला पर आकर हमारा साथ देने को प्रेरित करना!''

सात्यकि युयुधान ने नेता का आदेश माना और बिंब के साथ सुरंगिणी को लेकर वृष्णियों की वीथी की ओर चला गया।

अट्ठाईस

त्रिवक्रा कुब्जा अब त्रिवक्रा तो नहीं रही, किंतु उसको अपना यह नाम नहीं भूला था। सवेरे-सवेरे अपना नाम की पुकार सुनकर वह बाहर आई तो देखा महाराज कंस के गजराज कुवलयापीड के महामात्र[1] तंगण की पत्नी लालिमा खड़ी थी। उसको देखते ही सशंक होकर कुब्जा ने पूछा, ''कैसे आई?''

कुबड़ी के स्थान पर अपने सामने तनकर खड़ी सुंदर यौवनवती रमणी को देखकर चमत्कृत-सी लालिमा कुछ हिचककर बोली, ''मेरे पति और गजराज के लिए तूने अब तक पुष्पों के हार नहीं भेजे, कुब्जा! उनको आज समारोह में जाने की देर हो रही है। महाराज की आज्ञा से आज उनको अपने गजराज सहित रंगशाला के सिंहद्वार पर ही उन दोनों यादव योद्धाओं का स्वागत करना है!''

कुब्जा ने हँसकर कहा, ''उनका स्वागत तेरा वह जड़ तंगण क्या करेगा? उनका स्वागत तो जाकर तुझे करना चाहिए, लालिमा! एक बार उनका दर्शन कर लेगी तो तेरा जीवन सफल हो जाएगा!''

लालिमा तन-मन से अपने पति की पूजा करती थी। बोली, ''तू बात नहीं बना....सुनती हूं, तुझे उसे गोप नवयुवा ने ही ऐसी सुंदरी बना दिया है....तू ही उससे अपना जीवन सफल करती रह! ला, मुझे तो जल्दी से पुष्पहार दे दे।''

कुब्जा बोली, ''नहीं हैं पुष्पहार किसी के लिए अब मेरे पास। जो हैं, उनके लिए ही हैं। जा....''

लालिमा उसको कोसती हुई लौट पड़ी। उसको न जाने क्यों आज कुब्जा के द्वारा पुष्पहार न देना अपशकुन जैसा प्रतीत हुआ। मन ही मन देवताओं को मनाती वह अपने आवास पर पहुंची तो देखा कि तंगण कुवलयापीड को मदिरा पिला-पिलाकर पागल कर रहा था और उसके साथ ही स्वयं भी चषक पर चषक मदिरा पी-पीकर झूमने लगा था।

लालिमा ने अधीर होकर कहा, ''तू इतनी मदिरा पीकर इस गजराज को कैसे संभालेगा? ऐसा क्या हो गया तुझे कि आज....''

''आज महाराज का कार्य सिद्ध करने के बाद मुझे देखना, मेरी सुंदरी! तेरा यह महामात्र अब निश्चय ही साधारण महामात्र से उठकर पूरी गजसेना का सेनापति हो जाएगा....''

लालिमा चुप रही। उसको लगा—उसका पति मदिरा से उन्मत्त होकर बहक रहा है।

---

[1] महामात्र ही बिगड़ते-बिगड़ते आज 'महावत' के रूप में प्रचलित है। पहले हस्ति-चालक को मंत्री के समान 'महामात्र' का पद प्राप्त था।

तंगण ने सहसा पत्नी को अपनी बांहों में भरकर कहा, ''सुंदरी! सच कहता हूं। आज यह कुवलयापीड़ महाराज के उन दोनों शत्रुओं का वध कर देगा.... और....और मैं आज ही सेनापति बन जाऊंगा! कुवलयापीड ही हमारी ओर से आज हमारी सेना है....महाबली गजराज....ह ह ह....''

कुवलयापीड को मदिरा से इतना उन्मत्त कर दिया था तंगण ने कि वह अब स्वयं अपने महामात्र को ही नहीं पहचान रहा था। तंगण को सामने देखकर भी आज कुवलयापीड ने उसको नित्य की भांति सूंड से उठाकर अपने ऊपर नहीं बैठाया, वरन् उठाकर सहसा ही आकाश में उछाल दिया। किंतु महामात्र तंगण सावधान था। वह आकाश में कला-सी दिखाता हुआ नाचकर ठीक कुवलयापीड की पीठ पर जा बैठा। दूसरे ही पल उसने अपने अंकुश से मार-मारकर गजराज को विकल कर दिया। आहत होकर गजराज भयंकर रोष में आकर प्रचंड वेग से भाग चला।

गजराज पर जमकर बैठा तंगण चिल्लाकर पत्नी से बोला, ''उस त्रिवक्रा ने आज पुष्पहार नहीं दिए....आज जब वह महाराज को हार देने आएगी तो लौटकर वह तेरी कुब्जा फिर कभी घर नहीं जाएगी। वह भी अपने उसी रसिया के साथ स्वर्ग जाकर उससे प्रेमालाप करेगी....''

उसका स्वर दूर जाकर सहसा ही खो गया। आक्रोश से भरा गजराज भयंकर चिंघाड़ से धरती कंपाता विचित्र गति से भाग रहा था....

लालिमा का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। वह अपने पति की बातों से समझ गई— आज कंस ने उसको आज्ञा दी होगी कि उन दोनों गोपों को देखते ही गजराज से कुचलकर मरवा डाले। वह कांप उठी। अधीर होकर दूसरे ही पल दौड़ती हुई वह स्वयं भी रंगशाला की ओर चल पड़ी।

प्रेक्षागार दर्शकों से खचाखच भरा था। अधिकतर गोप युवक तथा मल्ल एवं अन्य योद्धा भी वहीं आ गए थे। पुरी में जिसने भी सुना कि आज महाराज ने वसुदेव के दोनों पुत्रों को गोकुल से विशेष रूप से बुलवाया है और अब सारे वैर का अंत करके महाराज उनको अपने आत्मीय-बांधव मानते हैं; वही उत्सुकतावश उन दोनों युवकों को देखने के लिए समाजवाट में आ पहुंचा था। एक ही दिन पहले उन दोनों द्वारा किए गए अनेक चमत्कार-भरे कृत्यों का भी अब तक सारी पुरी में प्रचार-सा हो गया था। कैसे उन दोनों ने मथुरा पुरी में आकर ऐसे-ऐसे कांड कर डाले और किस प्रकार फिर भी निर्भीक विचरण करते हुए पुरी में जन-जन की पूजा पाते रहे, यह सोच-सोचकर सबको आश्चर्य हो रहा था। प्रजा को विश्वास-सा हो चला कि अब सचमुच महाराज ने वसुदेव के पुत्रों को अपना बनाने का निश्चय कर ही लिया होगा, नहीं तो

किसका साहस हो सकता है कि पुरी में और वह भी भरे हाट में महाराज के रजक को मार डाले! राजा के वस्त्रों को छीनकर स्वयं धारण कर ले अथवा फाड़कर फेंक दे! और वह भी तब, जबकि नगरी के कोने-कोने में मागध योद्धाओं का समूह सन्नद्ध खड़ा हो।

सबसे चमत्कृत कर देने वाली बात तो यह थी कि महाराज की परिचारिका त्रिवक्रा कुब्जा महाराज के लिए नित्य की भांति प्रगाढ़ आलेपन— सुरभित अंगराग आदि लेकर जा रही थी, तब कृष्ण ने उसे रोका और सारा सुगंधित अंगराग कुब्जा ने स्वयं ही उसके अंगों में उसका लेपन कर दिया। प्रसन्न होकर कृष्ण ने उस जन्म से ही कुब्जा त्रिवक्रा की कूबड़ को पलक झपकते एक झटके में ही निर्मूल कर डाला! त्रिवक्रा को उसने देखते ही देखते सर्वांगसुंदरी रमणी का रूप प्रदान कर दिया था। यह विस्मयजनक संवाद सुनकर हर कोई सोचता— अवश्य वे दोनों कोई जादू जानते होंगे! इंद्रजाल का-सा चमत्कार! कोई इंद्रजाल जानने वाला ही कर तो ऐसा सकता है!

और भी न जाने कितनी बातें उन दोनों के विषय में होती रहीं। विशेषकर पुरी के प्रमुख हाट में रहने वाली यादव ललनाएं उमग-उमगकर उन चितचोरों की चर्चा कर रही थीं। उन्होंने तो स्वयं ही उस दुर्लभ अवसर पर अपने को 'धन्य' किया था— उन दोनों को भर-आंख निहारा था। आज फिर उस युगल की नयनाभिराम छवि देखने को आतुर कन्याएं और कुलवधुए तक उत्साह से सिहरती हुई समाजवाट में भी आई थीं। पौरजनों की तुलना में यादवकुलों की परमसुंदरी युवतियों की भीड़ वहां अधिक थी। वे आज उत्तम शृंगार कर-करके आई थीं।

मथुरा पर महाराज कंस का राज होने के बाद आज पहली ही बार यादवों के किसी समारोह में ऐसा उछाह दीख रहा था। आज के इस समाजवाट की-सी भीड़ तो कभी किसी उत्सव-पर्व पर भी नहीं दिखती थी! उन दोनों को देखने की उत्सुकता के कारण ही ऐसा हो रहा होगा! युवती कन्याएं तथा यादव कुलवधुएं कलरव-भरी हँसी और मधुर, कोमल कंठस्वर से समाजवाट को उजागर-सा कर रही थीं। जहां देखो, उन्हीं दोनों की सुंदरता एवं पराक्रम तथा चमत्कारों की चर्चा हो रही थी। स्वयं महाराज के अंत:पुर की रानियां भी उनकी चर्चा सुन-सुनकर मुग्ध हो रही थीं। कंस की भार्याओं के हृदय में भी उन दोनों का दर्शन पाने की उमंग जाग उठी थी।

युवतियों में इस समय भी परस्पर उन्हीं की चर्चा हो रही थी। एक वैश्या कुलवधू भाव-विभोर होकर कह रही थी, ''हमसे तो गोकुल की रमणियां ही अधिक सौभाग्यशालिनी हैं कि ये दोनों रातदिन उनके इतने निकट रहते हैं....उनकी आंखों में ही बसते हैं!''

प्रेक्षागार की शोभा देखने योग्य ही थी! वहां अनेक अष्टकोणी अलंकृत पायों वाले मंच रखे थे। ये मंच अपने-आपमें छोटे-छोटे प्रेक्षागृह ही थे। सुंदर चित्रों तथा उकेरी गई आकृतियों आदि से सुशोभित अनेक पायों पर टिके उन मंचों की सारी ही व्यवस्था पूर्णत: अलग-अलग रखी गई थी। हर मंच के द्वार पर अनेक अलंकृत वेदियों का निर्माण किया गया था, जिनमें अर्गला-सहित कपाट भी लगाए गए थे। उनमें अर्धचंद्राकार गवाक्ष बने थे। मंचागारों को उत्तम आच्छादनों से ढक दिया गया था। इन मंचों के द्वार पूर्वाभिमुख थे। द्वार को उत्तम जालीदार परदों से ढका गया था। सुरभित पुष्पमालाओं तथा उज्ज्वल जगमगाते मोतियों की झालरों से सुसज्जित होने के कारण उनकी शोभा और भी प्रकाशित हो रही थी।

ऐसे ही मंचों के भीतर महाराज कंस के अनेक विशालकाय मल्ल भी बैठे हुए समारोह आरंभ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन विख्यात मल्लों के सुगठित, हृष्ट-पुष्ट शरीर भी बहुमूल्य वस्त्रों तथा अलंकारों से विभूषित थे। ऐसा लगता था मानो समाजवाट उन सबके शुभ्र वसनों तथा आभूषणों के कारण शरतकालीन श्वेत मेघों की छटा से जगमगा रहा हो।

एक ओर शिल्पकारों की विभिन्न श्रेणियों के महामान्य कला-शिल्पी तथा उनके अध्यक्षों एवं अधिकृतों के लिए भी उनकी गरिमा के अनुरूप, उत्तम मंच बनाए गए थे। ऐसे मंचों पर अलग-अलग श्रेणियों के कलाकारों तथा शिल्पियों के उपकरणों के चिह्नों से अलंकृत पताकाएं फहरा रही थीं। उनको देखकर दूर से ही पता लग जाता कि वहां किस श्रेणी के कलाकार अथवा शिल्पकार आदि बैठे होंगे।

पौरबालाओं तथा राजप्रासाद की अंत:पुरिकाओं के लिए सुविधाजनक स्थानों पर कितने ही मंचागारों का निर्माण किया गया था। ये मंच एक से एक बढ़कर सुंदरी ललनाओं से सुशोभित हो रहे थे और अपनी शोभाश्री से समूचे समाजवाट की ही छवि को सौगुनी सुंदरता दे रहे थे, किंतु उन मंचागारों का भी विलक्षण शृंगार किया गया था। अंत:पुर की स्त्रियों के लिए बने उन मंचागारों और वेदिकाओं को सुवर्ण तथा सतरंगी आभा विकीर्ण करने वाले अत्यंत मोहक रत्नों से अलंकृत किया गया था। मंचों के शीर्षों पर तो रत्नों से जटित आकर्षक पताकाएं फहरा रही थीं और उनके निचले भाग पर एक से एक सुंदर अवच्छादन-पट (परदे) डाल दिए गए थे। इस प्रकार अलंकृत मंचों को देखकर प्रतीत होता था जैसे वे अपने पायों पर स्थित न हों, वरन् पंखयुक्त पर्वतों के समान आकाश में ही अधर मंडरा रहे हों। रानियों तथा कुलीना स्त्रियों के लिए बने उन मंचागारों से प्रभासित विचित्र-सी शोभा समूची रंगस्थली को जगमग करती थी। उनके भीतर बहुमूल्य हारों को वक्ष पर धारण करने वाली

सुंदरियों के कलकल निनाद और मादक हँसी की ध्वनि के साथ ही, मणियों की आभा और कटिप्रदेश पर धारण की जाने वाली शिंजिनियों की मृदु झंकार भी गूंजती रहती थी।

एक ओर मथुरा की लोकविख्यात वारांगनाओं के लिए भी एक से एक सुंदर मंच बने थे, जिनमें बैठी रूपांगनाए अपनी शोभा से सबको चमत्कृत कर रही थीं। ये ऊंचे-ऊंचे भव्य मंच आकाशचारी विमानों की भांति सुशोभित हो रहे थे। इन मंचों में सुवर्ण के पर्यंक तथा रत्नों से अलंकृत आसन भी रखे थे और पुष्पगुच्छों से सुशोभित आस्तरणों पर अधलेटी पड़ी, अपने कमलकोमल चरणों में नूपुर धारण करने वाली वारांगनाएं मादक कलहास से मंचागारों को गुंजारित कर रही थीं।

रंगस्थली में कितने ही स्थानों पर पानभूमि रचकर वहां स्वर्ण के पानकुंभ स्थापित किए गए थे। साथ ही अनगिनत स्थानों पर चंगेरियों में भर-भरकर अनेक पके हुए मीठे तथा सुगंधित फल भी रखे थे—इनकी व्यवस्था मात्र शोभा के लिए नहीं, वरन् पानभूमि में आकर तात्कालिक क्षुधा अथवा पिपासा को शांत करने के इच्छुक लोगों के लिए की गई थी। मल्लों के उपयोग के लिए अलग ही पानभूमि स्थापित की गई थी, जहां मल्लों के लिए माध्वीक सुरा के साथ-साथ विविध स्वादों वाले उत्तम रसों की भी व्यवस्था थी।

इन विशेष मंचों के अतिरिक्त और भी अनगिनत मंच बने थे। काष्ठ के बने ये मंच मुख्यत: जन-साधारण के लिए अथवा सुदूर जनपदों से समारोह देखने के लिए आने वाले ग्रामीण जनों के लिए थे। किंतु उनमें भी सुंदर आस्तरण बिछे थे और उनको भी महाराज कंस के आदेश से इस विशेष रंगस्थली के अनुरूप पताकाओं आदि से सुसज्जित किया गया था। उन मंचों से कोलाहल-सा उठ रहा था। जनपदों से आए उन अतिथियों के लिए तो ऐसा समारोह परम रोमांचकारी था। इस प्रकार के अनगिनत मंच जानपदों से भरे पड़े थे।

कितने ही मंचों के ऊपर भी स्त्रियों के लिए और मंच बने थे। वे अपनी श्वेत साज-सज्जा के कारण आकाश में उड़ते हुए राजहंसों की भांति सुंदर लग रहे थे। उनके सुंदर आच्छादन-पटों के पीछे बैठकर तो बाहर का सारा ही दृश्य देखा जा सकता था, किंतु उनमें बैठी स्त्रियों को कोई देख नहीं पाता था।

इन सभी से अलग, रंगस्थली के लगभग मध्य भाग में, मल्लशाला के एकदम निकट ही एक भव्य मंचागार बना था, जो मेरु पर्वत के शिखर के समान सुनहरी आभा से दमक रहा था। उस पर भी रत्नों से जगमगाते परदे डाले गए थे और स्वर्णपत्रों से मढ़े हुए उसके स्तंभों पर कितने ही मनोहर चित्र अंकित थे। कहीं-कहीं उकेरी हुई जीवंत अप्सराएं मानो अपने पंख पसारकर

विमान जैसे उस विशाल मंच को ही लेकर उड़ती हुई जान पड़ती थीं। उस पूरे के पूरे मंच को मुक्ता की लड़ियों से सजाया गया था। और उसमें स्थित सिंहासन तो राजसी गरिमा का प्रतीक था ही। एक बहुत ऊंचे चत्वर पर बनाया गया वह मंच किसी ऊंची अट्टालिका की भांति, सिर ऊंचा करके ही देखा जा सकता था। उसका भी द्वार तो पूर्व की ओर ही था, किंतु उस पर पहुंचने के लिए चारों ओर से सोपानों की श्रेणी थी। जिस ओर से भी मन हो, उसी ओर से चढ़कर मंच के सिंहासन तक पहुंचा जा सकता था। समाजवाट में रचित अन्य सभी मंचों से कहीं अधिक शोभाश्री बिखराता यह मंचागार वास्तव में स्वयं महाराज कंस के लिए बनाया गया था।

रंगस्थली उस समय तक रमणियों के कलहास तथा शिंजिनी जैसे आभूषणों की उत्तेजक झंकारों के साथ-साथ जानपदों के मंचों से गूंजते ठहाकों तथा और भी अनेक प्रकार के शब्दों से महासागर की विक्षुब्ध लहरों के कोलाहल से गरजती-सी प्रतीत हो रही थी।

किंतु जैसे ही बंदीजनों ने उच्च स्वर में महाराज कंस के आगमन की घोषणा की, चारों ओर गहरा सन्नाटा छा गया। लगा, मानो वह विक्षुब्ध, गरजता महासागर महाराज कंस के आगमन से आतंकित, स्तब्ध रह गया हो!

समाजवाट के सिंहद्वार से प्रवेश करने के पहले ही कंस ने अपने महागज कुवलयापीड के महामात्र तंगण तो तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और उसको आदेश दिया, "प्रेक्षागार के सिंहद्वार पर ही गजराज कुवलयापीड को खड़ा रखो और...."

शेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। तीक्ष्ण वारुणी के आवेग से झूमते महागज कुवलयापीड और उसके महामात्र तंगण को देखते ही कंस मानो संतुष्ट हो गया—तंगण उसका आदेश मानकर पहले से ही पूरी तरह तत्पर उन दोनों की प्रतीक्षा कर रहा है!

कंस आत्मविश्वास से भरा और भी गर्व के साथ अपने मंच पर चढ़ा। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने गर्वोन्नत सिर उठाकर एक बार समूचे प्रेक्षागार को देखा। उच्च मंचों पर अपने सतर्क महामल्लों को भी विराजमान देखकर वह प्रसन्न हुआ। उसने दृष्टि दूसरी ओर डाली। उस समय भी मल्लशाला में कितने ही मल्ल अपने विशालकाय शरीरों पर गोमयचूर्ण तथा अखाड़े की मिट्टी का लेप-सा करते हुए उछाह से उछल-कूदकर मानो मल्लयुद्ध का आभास दे रहे थे! कंस उनकी ओर देखकर बड़े आत्मविश्वास एवं दर्प के साथ हँसा और तनकर सिंहासन पर बैठ गया। अब उसे गोपों के दल के साथ उन दोनों के आगमन की प्रतीक्षा थी....अथवा सिंहद्वार पर ही झूमते कुवलयापीड-रूपी काल

के गाल में उनके समा जाने की प्रतीक्षा! सोचकर कंस मन ही मन हँस पड़ा! उसने यहां आने के पहले ही अपनी सेना को— विशेषकर अपने मागध मल्लों, योद्धाओं और अंगरक्षकों को सावधान कर दिया था।

उसका आदेश था : "सेना के चुने हुए योद्धाओं का दल सतर्क होकर प्रेक्षागार में खड़ा रहे और वहां किसी भी उपद्रव का आभास पाते ही विद्रोहियों को तत्काल बंदी बना ले अथवा उनका वध कर दे! यह सोचने की भी कोई आवश्यकता नहीं कि उनमें से कोई हमारा प्रियजन ही न हो! जो भी हमारा विरोध करे, वह प्रियजन हो ही कैसे सकता है?"

इस समय कंस आत्मविश्वास तथा बल के उन्माद से तना सिंहासन पर बैठा उस विशाल जन-समुदाय को उपेक्षापूर्वक तिनकों की भांति देख रहा था। आज उसने समारोह के लिए ही विशेष रूप से तैयार किए गए राजसी वस्त्र और आभूषण धारण किए थे— श्वेत उत्तरीय, श्वेत ही अधोवस्त्र, और श्वेत ही मणियों से दमकता मुकुट। इनके साथ ही चार-चार श्वेतांबरा सुंदरियां श्वेत ही चामर और व्यजन डुलाती हुई उसके आसपास खड़ी थीं। उनसे घिरा श्वेतांबर कंस झिलमिलाती तारिकाओं से घिरे चंद्रमा के समान तेजस्वी और रूपवान लग रहा था।

उसके इस भव्य रूप से प्रभावित जन-समुदाय महाराज कंस का जय-जयकार करने लगा। भोजकुल के वयोवृद्ध असंतुष्ट यादव भी इस समय कंस को दीर्घजीवी होने के साथ ही 'सदा विजयी' होने का आशीष दे रहे थे।

कंस के संकेत पर उत्तम वस्त्राभूषणों से सुशोभित महाबलशाली मल्ल अपने भव्य मंचों से उतरे और गजराजों की भांति झूमते, तीन कक्षाओं को पार करके उन्होंने मल्लों की प्रशस्त रंगभूमि में प्रवेश किया। यह समारोह मूलतः मल्लों के द्वंद्वों के लिए ही रचाया गया था। महामल्लों को रंगभूमि में आते देखते ही रंगशाला में दुंदुभिघोष हुआ साथ ही प्रचंड स्वर में तूर्यनाद होने लगा। उछाह से भरे मल्ल अखाड़े में उतरकर उस तुमुल वाद्यध्वनि की ताल पर उछल-उछलकर गर्जन करने लगे।

ठीक उन्हीं क्षणों में गोपों के एक छोटे-से दल के साथ हँसते, विनोद करते कृष्ण और बलभद्र उस विशाल प्रेक्षागार के सिंहद्वार पर आ पहुंचे।

उस समय वे दोनों भी गोप युवाओं के ही वेष में थे— चंदन से चर्चित बलिष्ठ शरीर। सांवले कृष्ण ने इस समय पीतांबर धारण कर रखा था और दुग्धधवल गौर वर्ण के बलभद्र ने दमकता हुआ लाल वसन। दोनों के वक्ष पर वन-पुष्पों की मालाएं थीं। उनके पास केई शस्त्रास्त्र नहीं थे। परिघों के समान सुदृढ़ उनके बाहुदंड ही मानो उनके आयुध हों।

एक धवलकाय था—चंद्रमा की-सी कांति से दमकता हुआ और दूसरा मेघ की-सी कांतिवाला, श्यामवर्ण। जिनकी भी दृष्टि उन पर पड़ी, उन्होंने बिना किसी के कहे ही उन्हें पहचान लिया—मेघों की-सी कांति वाला श्यामल वर्ण का यह युवा ही देवकी और वसुदेव का पुत्र कृष्ण है! वही कृष्ण जिसने शैशव काल में ही प्रतिदाह की पत्नी सुंदरी के स्तनों से दूध पीते-पीते उसके प्राण भी पीकर उसका वध कर दिया था! पूतना ग्रह की भांति बाल-हत्या के लिए सन्नद्ध सुंदरी अपने विशाल कुचों में कालकूट विष का लेप करके इसी कारण गोकुल गई थी कि कृष्ण का वध करके वह महाराज कंस की इच्छा पूरी कर देगी और फिर महाराज कंस से वरदान मांगकर अपने पति प्रतिदाह को सेना में किसी ऊंचे पद पर नियुक्त करवा लेगी। किंतु उससे भी कहीं अधिक निर्मम उसका दुर्भाग्य, उसकी अनिंद्य सुंदरता की चिंता किए बिना, उसकी ही मृत्यु का कारण बन गया था!

इसी कृष्ण ने कल ही तो यहां वह चमत्कार कर डाला था....कुब्जा होने के कारण त्रिवक्रा, सुंदर होती हुई भी, अपनी सुंदरता की हीनतर दैहिक अवस्था से कुंठित रहती थी! कृष्ण ने स्पर्शमात्र से उसकी कुरूपता के प्रतीक कूबड़ को सहसा ही लुप्त कर दिया और उसको सर्वांगसुंदरी रमणी का-सा रूप दे दिया! कुब्जा तो उसी पल से कृष्ण के प्रति अनुरक्त होकर अब केवल उसको ही पाने की कामना लेकर जीवित है! कहा जाता है—कृष्ण ने उसे आश्वस्त भी किया है कि वह इस समारोह में मल्लयुद्ध में विजय पाएगा तो अवश्य आकर कुब्जा का सत्कार ग्रहण करेगा।

सहसा अंत:पुरिकाओं के मंचों से स्त्रियों का मर्मभेदी चीत्कार गूंज उठा! सब अवाक्, स्तंभित-से देखते ही रह गए—न जाने महामात्र ही पागल हो गया है अथवा कुवलयापीड ही विक्षिप्त होकर उन दोनों युवकों पर झपट-सा पड़ा था! मंचों पर हाहाकार होने लगा। फिर समग्र समाजवाट मानो सांस रोककर सिंहद्वार पर होने वाला वह भयानक कांड देखता रह गया....

वसुदेव के उन दोनों पुत्रों को सिंहद्वार से हर्ष के साथ प्रेक्षागार में प्रवेश करते देखकर गजराज कुवलयापीड के महामात्र तंगण ने अचानक ही अंकुश मारकर गजराज को उनकी ओर हूल-सा दिया। कुवलयापीड सूंड उठाकर उनको दबोच लेने के लिए उन पर टूट-सा पड़ा। किंतु वे दोनों ही सुकुमार-से दीखते युवक विलक्षण स्फूर्ति के साथ अचानक ही अपने स्थान से उछलकर दूर जा खड़े हुए। वे उन्मत्त गजराज की सूंड से बच निकले थे!

लेकिन मदमत्त तंगण ने गजराज को बार-बार अंकुश चुभाकर फिर से उनकी ओर झपट पड़ने को प्रेरित किया। पता नहीं, महामात्र के अंकुश की चुभन से गजराज इतना क्रुद्ध हो गया अथवा सामने खड़े उन दोनों नवयुवा गोपों

की ललकार से उन्मत्त हो उठा, जो निकट ही खड़े होकर निर्भीकता के साथ तालियां बजा-बजाकर अपनी जांघों पर मल्लों की तरह ताल पर ताल देते हुए गजराज को चिढ़ाने के लिए रह-रहकर गर्जन-सा कर रहे थे। उनके साथ आए उत्साही गोप युवाओं का दल भी अपने आयुधों को लहरा-लहराकर मानो गजराज को चुनौती देने लगा था।

मतवाला गजराज कुवलयापीड क्रोध के साथ फिर मुड़ा और भयावनी चिंघाड़ के साथ कृष्ण की ओर झपट पड़ा। वह इतने वेग से उनकी ओर आ रहा था मानो अंजन के पर्वत से टूटी हुई विशाल चट्टान तेजी से लुढ़कती उनको रौंदती हुई निकल जाने को हो....हाहाकार होता रहा। अंत:पुरिकाओं के मंचों से गूंजती यादव कुलवधुओं की कलरव ध्वनि अब कहीं डूब-सी गई थी और हर मंच से स्त्रियां मानो स्थान-काल तक भूलकर, साधारण स्त्रियों की भांति अस्त-व्यस्त-सी बाहर झांकती हुई, रह-रहकर चीत्कार कर रही थीं। आक्रोश से पागल कुवलयापीड जैसे विकट गजराज द्वारा कहीं सारी की सारी रंगस्थली ही कुचल-रौंदकर ध्वस्त न कर दी जाए! उन दोनों युवकों पर भयंकर गजराज को आक्रमण करता देखकर स्त्रियां सुध-बुध खोकर अकुलाई-सी रोती-चिल्लाती रहीं।

मल्लों का ध्यान भी उसी ओर लगा था। सिंहद्वार पर अब एक अद्‌भुत युद्ध-सा होने लगा था। वसुदेव के दोनों युवक पुत्र भी अब आवेश में आ गए और कुवलयापीड को अपने ही ढंग से पीड़ित करने लगे। तंगण बार-बार अंकुश मारकर गजराज को उनकी ओर हूल देता, लेकिन वे दोनों अंतिम पल तक मानो उसकी प्रतीक्षा में स्थिर खड़े रहते और गजराज एकदम पास पहुंचकर उन पर अपने दांतों से आक्रमण करने को होता तो वे सहसा मछली की भांति बिछल जाते और उसकी पकड़ से बचकर कहीं और ही खड़े ललकारते दिखाई पड़ते। गजराज की इस पराजय से उनके संगी गोपों का समुदाय हर बार हर्षनाद करके अपने दोनों योद्धाओं का उत्साह बढ़ाता और फिर तालियां पीट-पीटकर गजराज को और भी उत्तेजित कर देता।

मतवाले कुवलयापीड के साथ ही मदमत्त उसका महामात्र तंगण भी और क्रोध से भरकर गजराज को अपने अंकुश से प्रताड़ित करता हुआ, उसको बार-बार ललकारकंर कृष्ण अथवा बलभद्र की ओर हूल देता।

रंगशाला में बैठे भयभीत समुदाय में से जिनकी भी आंखें उस विकट युद्ध को देख पा रही थीं, उनको इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि तंगण किसी न किसी प्रकार वसुदेव के उन दोनों पुत्रों को गजराज के पावों तले कुचलवाकर मार देने पर तुला है! सबके हृदय उस समय प्रचंड आक्रोश से धधक रहे थे, किंतु किसी में इतना चेत अथवा साहस नहीं था कि विरोध में स्वर उठाता या

उन युवा गोपों की कोई सहायता कर पाता। सहायता करने की बात तो दूर, उनको तो अपना ही चेत नहीं रहा। गजराज के साथ उन सुकुमार युवकों को इस प्रकार खिलवाड़-सा करते देखकर वे विचलित हो रहे थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि जब वे गजराज की पकड़ से बच गए और प्राण की रक्षा हो गई है, तो अब वहां से भागकर अपनी रक्षा क्यों नहीं करते?

सभी चकित थे कि महाराज कंस की ओर से नियुक्त इतने योद्धा सशस्त्र खड़े हैं, किंतु वे गजराज के साथ युद्ध-सा करते उन दोनों निर्दोष गोपों की सहायता करने की जगह निश्चेष्ट खड़े है, जैसे कोई मनोरंजक खेल देख रहे हों। वसुदेव और देवकी को वर्षों से कारागार में बंद विकट यातनाएं सहते देखकर उन दोनों के प्रति यादवों के मन समवेदना से भरे थे। आशंका तो थी ही कि कंस और उसकी मागधी महारानियां वसुदेव के पुत्रों को ऐसे ही तो आत्मीय नहीं बना लेंगी। कपटी, क्रूर कंस कोई भी छल कर सकता है! किंतु यह किसने सोचा था कि कंस राक्षसों की भांति इस बार अपने दानवाकार गजराज कुवलयापीड की सहायता से उन सुकुमार युवाओं की हत्या करवाने की चेष्टा करेगा!

भयावनी स्तब्धता छाई रही। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था कि उन दोनों की रक्षा कैसे की जाए। सब स्तंभित-से जहां के तहां बैठे या खड़े उन दोनों को गजराज से यह विचित्र युद्ध करते देखते रहे। यद्यपि हर किसी के मन में एक ही कामना थी कि वे दोनों अब गजराज के सामने से दूर हटकर अपनी जान बचा लें। किंतु हटकर बच पाना भी तो कितना कठिन था! यह राक्षस तंगण भी तो तुला हुआ है! वह हर बार वेग से गजराज को हूल-हूलकर उन दोनों के मार्ग अवरुद्ध करवा देता था।

और सहसा ऐसा लगा कि अब सब कुछ समाप्त हो ही गया। कुवलयापीड ने इस बार कृष्ण को बचकर निकलने का अवसर नहीं दिया। उसने झपटकर अपनी विशाल सूंड लपकाई और कृष्ण को बांध लेना चाहा....ओह! कृष्ण उसके बंधन में नहीं आया! वह विलक्षण युवक एकाएक कुवलयापीड की सूंड पकड़कर अपनी दोनों बलिष्ठ भुजाओं के बीच दबोचकर ऐसे मरोड़ने लगा कि घोर पीड़ा से विकल गजराज भयंकर चिंघाड़ों से रंगस्थली को प्रकंपित करने लगा। फिर कृष्ण ने एक और विकट कार्य किया। उसने कुवलयापीड की सूंड थामे हुए एकाएक लपककर उसके दोनों विकराल दांतों के बीच से उसके अगले पांवों के बीच प्रवेश कर लिया। फिर तो उसने गजराज के उदर भाग में न जाने क्या किया कि गजराज विकल होकर इधर-उधर नाचने-सा लगा।

उसी समय बलभद्र तथा उनके गोप संगियों ने सहसा ही कुवलयापीड की पूंछ पकड़ ली और उसको पीछे की ओर खींचने लगे। सब चकित-से

देखने लगे— विराटकाय कुवलयापीड आकुल-व्याकुल होकर बार-बार चिंघाड़ता हुआ असमर्थ-सा पीछे घिसटने लगा था!

दूसरे ही पल कृष्ण उसके पांवों के बीच से निकलकर फिर बाहर आ गया और ताल-दे-देकर गजराज को चिढ़ाने लगा। अब तो तंगण के अंकुशों की भी अवहेलना करके कुवलयापीड स्वयं अपने दोनों शत्रुओं को रौंद डालने को उद्यत हो गया था। अब वह प्रचंड क्रोध से चिंघाड़ता हुआ बार-बार पलट-पलटकर कृष्ण पर झपटने लगा। कृष्ण हर बार उसका वार बचाकर निकल जाता था। इस बार कृष्ण निकट ही कठोर चट्टान से गढ़कर बने सिंहद्वार के सुदृढ़ स्तंभ की टेक लेकर खड़ा हो गया। कुवलयापीड दूर खड़ा कुछ देर तक उसकी ओर खूनी आंखों से देखता रहा फिर सहसा चिंघाड़कर कृष्ण को दांतों से छेद देने के लिए उस पर झपट पड़ा। कृष्ण को इस बार पीछे हटने का अवकाश नहीं था। उसने अंतिम पल तक कुवलयापीड को अपनी ओर से आते देखा। इस बार उसका अंत निकट ही जानकर समाजवाट को कंपाता हाहाकार और विकट हो गया! उस कोलाहल से और भी उत्तेजित होकर वह विराटकाय गजराज पूरे वेग से कृष्ण को अपने विशाल दांतों से जहां का तहां छेद देने के लिए उस पर टूट पड़ा।

प्रेक्षागृह में चीत्कार गूंज उठे। स्त्रियों ने तो चीखकर आंखें ही मूंद लीं।

दूसरे ही पल गोपों का हर्षनाद सुनकर सहसा सबने आंखें खोलीं तो देखा— उस अडिग प्रस्तर-स्तंभ से टकरा जाने के कारण कुवलयापीड के दोनों दांत टूटकर लहुलुहान से लटक रहे थे। गजराज अगले पांवों के बल गिरा हुआ चिंघाड़ रहा था....कृष्ण न जाने किस पल सहसा ही उछलकर स्तंभ के शिखर पर खड़ा हँस रहा था।

गिरे हुए आहत गजराज के पृष्ठभाग पर खड़ा महामात्र तंगण स्वयं भी लहुलूहान हो गया था। उसने कृष्ण को ठीक अपने सामने स्तंभ पर खड़ा देखा तो तीक्ष्ण अंकुश उठाकर उस पर प्रहार करना चाहा, किंतु कृष्ण ने तत्काल पांव से प्रहार करके तीक्ष्ण अंकुश दूर झटक दिया। फिर वह ऊपर से ही गजराज पर कूद पड़ा। एक पांव उसके मस्तक पर लगाकर कृष्ण ने झटके से उसका एक दांत उखाड़ लिया और उसी से महामात्र पर प्रहार किया! उसके लगते ही तंगण का सिर चकनाचूर होकर बिखर गया। तंगण गजराज की पीठ से लुढ़ककर नीचे गिरा और वहीं ढेर हो रहा। कृष्ण ने गजराज के दांत से स्वयं कुवलयापीड के मस्तक पर प्रचंड प्रहार करना आरंभ कर दिया।

विकल वेदना से हतचेत-सा गजराज फिर हुमसकर उठने को हुआ किंतु उसी समय बलभद्र ने उसके मस्तक पर पांवों से प्रचंड प्रहार किया और उसका दूसरा दांत एक झटके से उखाड़कर वह भी गजराज के मर्म-स्थलों पर

अनवरत प्रहार करने लगा। सारे गोप भी अपने-अपने दंडों और आयुधों से गजराज को धुनने लगे। कुछ ही पलों के बाद वह दानवाकार गजराज चिंघाड़कर ढह-सा गया।

गोपों ने कृष्ण-बलदेव का प्रचंड जयजयकार किया तो कंस के अनुचर जाग-से उठे। और कुवलयापीड के रक्षकों ने अब गोपों पर प्रहार करना आरंभ कर दिया। गोप भी उन पर प्रहार करने लगे। कृष्ण और बलदेव ने तो हाथी के उन विशाल दांतों को ही गदा के समान अपना आयुध बना लिया। उनके संगी दूसरे बलशाली गोपों ने रंगशाला में सज्जा के लिए गड़े भारी-भरकम स्तंभों को उखाड़ लिया और उन्हीं से मागधों को मारने लगे। देखते ही देखते उन्होंने प्रहार करने वाले अनगिनत मागध सैनिकों को मार गिराया। प्रेक्षागृह के सिंह द्वार पर शव ही शव बिछ गए। रक्त की धाराएं बह चलीं।

कुछ पल तक वहीं रुककर वे दोनों जैसे और योद्धाओं के आने की प्रतीक्षा-सी करते रहे, किंतु फिर कोई उन पर आक्रमण करने नहीं आया। गोपों का दल अपने प्रचंड जयजयकार से समूचे प्रेक्षागार को प्रकंपित करता रहा।

कृष्ण और बलभद्र ने गजराज के रक्त से सने विशाल दांतों को गदाओं की भांति अपने-अपने कंधों पर रखे हुए ही समाजवाट में प्रवेश किया। उस समय तक समूची रंगस्थली उन दोनों के प्रचंड पराक्रम का साक्ष्य पा चुकी थी। चारों ओर उनका ही जयनाद गूंज रहा था।

उनतीस

कृष्ण और बलभद्र के पराक्रम से स्तंभित प्रेक्षागार में उन दोनों के प्रवेश करते ही उनका प्रचंड जयजयकार गूंजते सुनकर कंस की आंखें क्रोध से लाल हो गईं। उसने स्वयं भी अपने ऊंचे मंच से अपने उन दोनों शत्रुओं को रंगशाला के द्वार पर ही पर्वताकार कुवलयापीड जैसे उन्मत्त और क्रोध से भरे गजराज को कौतुक ही कौतुक में मारकर गिराते देखा था। गजराज के साथ ही, उस कृष्ण ने, एक ही प्रहार से तंगण जैसे महामात्र का भी वध कर दिया था। उसके मात्र एक ही प्रहार से तंगण को गजराज की पीठ से गिरकर प्राण छोड़ते देख कंस मन ही मन कांप उठा था। वे दोनों तो सचमुच मानो दैवी शक्ति से ही अमित पराक्रम कर रहे हैं! अब उन्हें एक पल भी जीवित रहने देना घातक होगा।

कंस ने वक्र, लाल-लाल आंखों से उन दोनों की ओर घूरकर देखा और अपने सबसे बलशाली दोनों महामल्लों को आदेश दिया, "इनके साथ युद्ध करो! आज इन दोनों उद्दंड मल्लों को सिखा दो कि मल्ल कहते किसे हैं!"

चाणूर और मुष्टिक आदि मल्लों को तो उसने पहले ही आदेश दे रखा

था कि 'अवसर पाते ही उन दोनों को बरबस ही अखाड़े में खींचकर यत्नपूर्वक उनसे युद्ध करना! उस समय कोई कुछ भी कहता रहे, अथवा मैं स्वयं भी तुम दोनों को रोकूं, तो भी तुम जब तक उन दोनों का वध न कर डालो, युद्ध से विरत होने की आवश्यकता नहीं। आज उन दोनों को रंगशाला से जीवित नहीं जाने देना....'

अंध्रमल्ल महाबली चाणूर कंस से मिले आदेश के अनुसार कृष्ण की ओर आकर खड़ा हो गया। कंस ने वज्रसदृश दृढ़ शरीर वाले मुष्टिक को बलभद्र से जूझने का संकेत दिया।

उन दोनों को कंस की आज्ञा से कृष्ण और बलदेव के साथ द्वंद्व करने को तत्पर देखकर यादवों में हड़कंप-सा मच गया। वे परस्पर इस अनाचार-भरे संकल्प की निंदा करते हुए रह-रहकर उच्च स्वर में विरोध जताने भी लगे। वे संभवत: कंस को अपना निश्चय बदलने को प्रेरित कर रहे हों! किंतु कंस को उनकी ओर ध्यान देने का अवकाश कहां था! यादवों को ही नहीं, वहां उपस्थित हर व्यक्ति को मल्लविद्या के लिए सुनिश्चित नियमों के अनुसार, यह सब अनर्थकारी अत्याचार लग रहा था। वहां आमंत्रित मल्लविद्या के आचार्यों ने भी इस द्वंद्व का विरोध करते हुए कहा—'नवयुवा कृष्ण तो वय में बहुत ही छोटा है, फिर वह अंध्रमल्ल चाणूर से कैसे लड़ सकता है? यह उचित नहीं। अनीति है! वय और अपने भार के अनुसार समान मल्ल से ही मल्लयुद्ध विहित कहा गया है। शास्त्रों के अनुसार ही मल्लयुद्ध होना चाहिए....'

कृष्ण तनिक भी अधीर नहीं लग रहा था तो भी प्रेक्षागार में मचते कोलाहल की ओर ध्यान देकर वह एक ओर शांत खड़ा प्रतीक्षा-सी करता रहा। कुवलयापीड का वध करते समय गजराज के रक्त तथा उसके मस्तक से बहता मद लग जाने से कृष्ण की बलिष्ठ भुजाओं पर जो धब्बे-से आ गए थे, उनसे ऐसा लग रहा था मानो उसने बाहों पर रक्तिम रत्नों से बना हुआ अंगद धारण कर रखा हो। इस समय भी कृष्ण और बलभद्र के हाथों में कुवलयापीड के विकराल तीक्ष्ण दांत थे, जो नवोदित चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।

रंगशाला में विरोध-भरा कोलाहल होता रहा, किंतु न तो कंस ने ध्यान दिया और न कंस के दोनों महामल्लों पर ही कोई प्रभाव हुआ! चाणूर तो ताल ठोक-ठोककर कृष्ण को अखाड़े में उतरने को ललकार रहा था!

जब कहीं, किसी की बात नहीं सुनी गई तो कृष्ण ने हँसकर समग्र प्रेक्षागार को संबोधित करते हुए गंभीर स्वर में कहा, ''आप सब जानते ही हैं कि यह महामल्ल अंध्र चाणूर करूष देश में जन्मा था....और मगध से मथुरा के राजा कंस के यहां मागधी पत्नियों के साथ 'स्त्रीधन' के रूप में आया है।

हमने तो इसके पराक्रमों की बड़ी कथाएं सुनी हैं....आप लोग तो जानते ही होंगे कि राजा कंस के इन मल्लों में से कोई भी, कभी नियमों का पालन नहीं करता। इन मल्लों ने तो सदा ही इस नियम का उल्लंघन किया है कि योद्धा से युद्ध करते समय शरीर का बल तथा क्रियाचातुरी अर्थात् मल्लों के दावं-पेच की चातुरी ही देखी जाती है! यदि कोई मल्ल पराजित होकर गिर जाए तो उसको प्रतिद्वंद्वी द्वारा छूना वर्जित है, किंतु इस चाणूर ने और इसके साथ के सभी मल्लों ने आज तक कभी नियमों की चिंता की ही नहीं। ये तो मल्ल को पराजित करने के बाद उसकी हत्या कर देते हैं!''

रंगशाला से कोलाहल उठता रहा, ''यह अनीति है, अधर्म है....''

सहसा कृष्ण ने हाथ उठाकर कहा, ''आर्यगण! मैं किंचित भी भयभीत नहीं हूं। यदि यह पर्वताकार योद्धा मुझसे लड़ना ही चाहता है तो ऐसा ही हो। किंतु मैं यह प्रतिज्ञा अवश्य करता हूं कि बाहुयुद्ध करने वाले योद्धाओं का जो मत है, और बाहुयुद्ध के जो नियम हैं, उनको मैं अपनी ओर से कदापि कलंकित नहीं करूंगा....तो भी किंतु आप सभी महानुभाव मनीषियों से भरी यह रंगस्थली साक्षी है कि यह अंध्रमल्ल अनाचारपूर्वक स्वयं ही मुझसे वैरभाव लेकर युद्ध करने को उद्यत है। ऐसा होता हो, तो फिर यही हो....''

कंस ने संकेत किया और उद्दंड चाणूर ने अचानक कृष्ण को पकड़कर अखाड़े में खींच ही लिया। कृष्ण ने अखाड़े में पहुंचते-पहुंचते ही ऐसा दावं मारा कि वह पर्वताकार मल्ल झटके से दूर जा गिरा। किंतु दूसरे ही पल वह उछलकर झपटा और कृष्ण की कटि पकड़कर झूल-सा गया। फिर तो दोनों के बीच बलशाली सांडों की तरह तुमुल युद्ध होने लगा।

इसी बीच मुष्टिक ने भी सहसा बलदेव को पकड़कर अखाड़े में खींच लिया। कर्कश स्वर में वह गुर्राया, ''आ, युद्ध कर, रे गोप! तुम दोनों तो महाऽऽऽबली कह जाते हो....और हमारे सामने ही तो उस महाजंतु कुवलयापीड को तुम दोनों ने उसके महामात्र तंगण के साथ ही मार दिया है। फिर तुमको हमसे कैसा भय? आओ....आओ! तुम तो महाऽऽऽबली हो!''

उन दोनों के बीच भी प्रचंड वेग से बाहुयुद्ध होने लगा।

कंस कुछ आगे की ओर झुककर चाणूर और कृष्ण में होते भीषण द्वंद्व को विस्मय और व्यग्रता के साथ देखने लगा था।

विशाल वृषभों की भांति क्रोध से भरे दोनों ही मल्ल एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। वे दावं लगाकर दूसरे को गिराने का प्रयास करते, किंतु दूसरा तत्काल दावं व्यर्थ करके अपना ही दावं मार देता। उन दोनों के बीच केवल बाहुबल, शारीरिक बल तथा प्राणबल से ही प्रचंड युद्ध हो रहा था। सारी रंगशाला में सन्नाटा छा गया था। सब अवाक् बैठे उनका द्वंद्व देख रहे थे। तभी

कृष्ण ने अकस्मात् पर्वताकार चाणूर को उठाकर दूर फेंक दिया। सारी रंगशाला उत्साह से गरज-सी उठी। लेकिन दूसरे ही पल चाणूर ने उछलकर कृष्ण पर प्रचंड आघात किया....हर किसी की सांस तक थम-सी गई।

किंतु उनमें से कोई भी दूसरे को पूरी तरह प्रतिहत नहीं कर पा रहा था। वे एक-दूसरे को परास्त कर देने के लिए प्राणपण से जोर लगा रहे थे। सारा प्रेक्षागार ही जैसे उनके युद्ध के रंग में रंग उठा हो। सारी रंगशाला कोलाहल-से गूंजने लगी। एक ओर से कंस के अनुचर और योद्धा चिल्ला-चिल्लाकर चाणूर को उत्साहित करते तो दूसरी ओर से गोपों और यादवों का समुदाय ललकार-ललकारकर कृष्ण का उछाह बढ़ा रहा था।

अब दोनों ही योद्धा अपनी-अपनी ओर से प्रचंड प्रहार करके दूसरे को परास्त करने के लिए कभी तो हाथ की अंगुलियों को पसारकर सहसा ही वक्ष और बाहुदंडों पर प्रहार करते और कभी एक-दूसरे को पैरों में उलझाकर धरती पर गिरा देते।

सहसा गोपों की ओर से प्रचंड हर्षनाद गूंज उठा। कृष्ण ने चाणूर के पर्वताकार शरीर को एक बार फिर उठाया और हुमककर दूर फेंक दिया था। किंतु चाणूर तो धरती से छू जाते ही सहसा उछलकर फिर उस पर टूट पड़ा।

मंचों पर बैठे अनगिनत लोग उच्च स्वर में 'साधु! साधु!' कहकर कृष्ण का उत्साह बढ़ा रहे थे। एकाग्र होकर चाणूर और कृष्ण के द्वंद्व को देखते कंस को अकस्मात् लगा कि चाणूर पसीने से नहा उठा है और कृष्ण के सामने अब वह शिथिल-सा होने लगा है! विचलित कंस ने अचानक ही बायां हाथ उठाकर मल्लों को उत्साहित करने के लिए बजते हुए वाद्यों को बंद करवा दिया और स्वयं पसीने से नहाया-सा रंगभूमि की ओर झांककर, वह विचित्र मल्लयुद्ध एकाग्र होकर देखने लगा।

किंतु कंस के रोक देने पर भी अचानक फिर से दुंदुभिनाद होने लगा मानो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके देवलोक में बाजे बजने लगे हों! कंस हतप्रभ-सा होकर चारों ओर देखने लगा, किंतु उसकी अवहेलना करके युद्ध-वाद्य गरजते ही रहे....निश्चय ही यह उपद्रवी गोपों अथवा यादवों की कुचेष्टा होगी! किंतु कंस को उस समय अपने महामल्ल चाणूर की चिंता लगी थी, जिस पर उसकी सारी आशाएं केंद्रित थीं।

कृष्ण ने भी भांप लिया था कि अब चाणूर का बाहुबल क्षीण हो चुका है। तभी मानो अंतिम प्रयास के रूप में चाणूर ने गुर्राकर अचानक ही बाहुयुद्ध के नियमों का उल्लंघन करके, कृष्ण के वक्ष के नीचे वज्रमुष्टि से घातक प्रहार कर दिया। चारों ओर से निंदा-भरा हाहाकार गूंज उठा। कृष्ण ने उस घातक प्रहार को एक हुंकार के साथ सहज ही झेल लिया। फिर प्रहार करने के लिए

उछलकर इसी ओर आते चाणूर को उसने व्याघ्र की भांति झपटकर अधर में ही दबोच लिया; उसको बाहुओं से दबाकर अपनी ओर झुकाया और अपने घुटने से उसके वक्ष पर प्रचंड प्रहार किया। चाणूर मुंह से रक्त का वमन करने लगा। उसी समय कृष्ण ने उसके सिर पर वज्रमुष्टि से प्रहार किया....

सन्नाटा छा गया....

सिर पर मुष्टि का वज्र-प्रहार पड़ते ही चाणूर की आंखें आंसू और खून बहाती सहसा ही निकलकर बाहर लटक आईं....वह भयंकर मल्ल जोर से पशु की भांति चिंघाड़ उठा और दूसरे ही पल कटे हुए वृक्ष की भांति धरती पर गिरकर निश्चेष्ट हो गया।

सारा प्रेक्षागार अनवरत, घोर कोलाहल से कांपता रहा।

चाणूर को मरते देखकर उसी समय मुष्टिक से जूझते बलभद्र ने सहसा ही प्रतिद्वंद्वी को जकड़ लिया और उसे सिर से ऊपर उठाकर नचाना आरंभ कर दिया। उसी समय कृष्ण ने कंस के अन्य मल्ल तोशल को अपनी ओर आते देखा। वह सावधान खड़ा तोशल की प्रतीक्षा-सी करता रहा। कृष्ण को थका मानकर तोशल गरजता हुआ बड़े उत्साह से उसे पकड़ने लगा। किंतु कृष्ण ने अवसर नहीं दिया और अचानक ही उसको सिर से ऊपर उठा लिया। मस्तक के ऊपर ही अनगिनत चक्कर देने के बाद कृष्ण ने तोशल को धरती पर दे मारा। वह चीखे बिना ही तत्काल समाप्त हो गया।

बलभद्र कुछ देर तक तो अंध्र मल्ल मुष्टिक से युद्ध का खिलवाड़-सा करता रहा, फिर उसने आवेश में आकर वज्रदेह के लिए विख्यात मल्ल मुष्टिक के सर पर अपनी प्रचंड मुष्टि से प्रहार किया। और चमत्कार! मुष्टिक की 'वज्रदेह' बलभद्र के मात्र एक ही घूंसे से चूर-चूर होकर अखाड़े में ही ढह गईं। उसका भी मस्तक फट गया था और दोनों आंखें बाहर निकलकर वीभत्स लगने लगी थीं।

कंस के तीन महामल्लों के मारे जाते ही प्रेक्षागार जैसे मल्लों से सूना हो गया!

नंद तथा गोप-समुदाय के लोग विक्षुब्ध-से, हतचेत बैठे यह भयावना दृश्य देखते रहे। कंस ने अपनी क्रूरता की पराकाष्ठा कर दी थी। उन दोनों पुत्रों के वध का दृश्य दिखाने के लिए उसने बंदी देवकी और वसुदेव को भी मल्लों की रंगभूमि के निकट ही नंगी धरती पर बैठाने की व्यवस्था करवा दी थी।

वसुदेव तो अपने महाबलशाली पुत्रों का पराक्रम देखकर युवकों की भांति उत्साह से भर उठे थे, किंतु देवकी अपने रूपवान नवयुवा पुत्र की ओर अपलक देखती-देखती चेतना ही खो रही थीं। उनके स्तनों से दूध झरने लगा था। वह आवेग से थरथर कांपने लगी थीं।

वहां उपस्थित यादवों में से हर कोई कृष्ण के पराक्रम की सराहना करता हुआ रह-रहकर कृष्ण-बलदेव के साथ ही वसुदेव का भी जयजयकार करने लगा था।

कंस की क्रोधाग्नि से दहकती आंखें इस समय एकटक कृष्ण पर लगी थीं। वह असमर्थ-सा उनकी ओर ताकता रह गया....आगे क्या होगा....और अब उसको कैसे अपना प्राण बचाना चाहिए— मानो यही चिंता कंस को खाए जा रही थी। उसी समय उसने राजप्रासाद की अंत:पुरिकाओं के लिए बने सुशोभन मंचों से उतरकर महारानी अस्ति और प्राप्ति को अपने अंगरक्षकों के साथ बाहर निकलते देखा। उनकी राह में खड़े कई यादव युवा सहसा रानियों को देखते ही गरजते हुए उनकी ओर लपके, किंतु कृष्ण ने वहीं से ललकारकर कहा, ''कोई भी किसी स्त्री को पीड़ित नहीं करेगा! सावधान!''

और उसका आदेश पाते ही रानियों का मार्ग छोड़कर हर यादव वहां से दूर हटकर चुप खड़ा उनको जाती देखता रहा।

पसीने से भीगे कंस के होंठ फड़क रहे थे। उसने सहसा चीखकर अपने योद्धाओं को आदेश दिया, ''इन दोनों वनेचर जंतुओं को तत्काल मेरी पुरी से निकालकर बाहर हांक दो! ये मनुष्य नहीं हैं, जंतु हैं! और विक्षिप्त हो गए हैं! मैं इन दोनों को आंख से देखना भी नहीं चाहता। आज से मेरे राज्य में एक भी गोप नहीं रहेगा, सबको निर्वासित कर दो....और हां, वह नंद गोप यहां से भागकर कहीं जाने न पाए। वह कुटिल कृतघ्न गोप मेरा दास है, फिर भी....मेरा अन्न खाते हुए भी वह वसुदेव से मिलकर हमारे विरुद्ध षड्यंत्र करता रहा है। उस कुटिल नंद के साथ ही कृतघ्न वसुदेव को भी पकड़कर उसको भीषण दंड दो! नंद को उसके प्रियजनों और परिजनों के साथ बांध लो। उनको हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़कर घसीटते हुए मेरे पास ले आओ....उसके साथ रहने वाले सभी गोपों के गोधन और जो भी संपदा उनके पास हो, सब छीनकर उनको भी सड़ने के लिए कारा में डाल दो....वे भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मरें, यही उनका दंड है....''

सहसा उसका स्वर टूट-सा गया— उसकी दृष्टि अकस्मात् कृष्ण की ओर उठ गई थी!

कंस के इन आदेशों को सुनकर कृष्ण के विशाल नेत्र विस्फारित-से हो गए थे। वह क्रोध-भरी भस्म कर देने वाली दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था।

वसुदेव तथा नंद पर कंस के आक्षेपों को सुनते ही कृष्ण का सारा शरीर क्रोध से जलने लगा। अपनी माता देवकी की दुर्दशा सुन-सुनकर वह क्षुब्ध तो था ही....अब उनको निकट ही बंदिनी के रूप में हतचेत-सी नंगी धरती पर पड़ी देखकर वह व्याकुल हो उठा। अपने बंधु-बांधवों को कंस की ओर से

दिए गए संताप और अंबा देवकी के साथ हुए जघन्य अनाचारों की याद आते ही कृष्ण पलक-झपकते रंगभूमि से उछल-सा पड़ा।

उसको अधर में उड़ता-सा तो किसी ने नहीं देखा, किंतु सहसा ही कंस के ऊंचे मंच पर सिंहासन के पास ही खड़े कृष्ण को सभी ने देखा।

कंस हकबकाकर उठने लगा। वह समझ ही नहीं पाया कि कब और कैसे कृष्ण उसके पास आ गया। उसको तो लगा कि वह मायावी आकाश-मार्ग से उड़कर ही एकाएक उसके निकट आ गया होगा....

कृष्ण के बलिष्ठ बाहुदंड अचानक ही उठे....

कृष्ण ने झपटकर कंस के केशों को पकड़ लिया और एक झटका-सा दिया। कंस का वज्रमणि से विभूषित श्वेत कांति से जगमगाता मुकुट इस झटके से उछलकर मंच के नीचे दूर जा गिरा।

केश पकड़कर झटका देते ही कंस मानो मृतप्राय हो गया था। वह आंखें उठाकर कृष्ण की ओर देखने का साहस तक नहीं कर पाया। उसके वस्त्र स्खलित हो गए। उत्तरीय कंधे से फिसलकर गिर गया। कानों के कुंडल भी खिसककर गिर पड़े। किरीटविहीन कंस का भयातुर, हतप्रभ मुखमंडल पीला पड़कर विचित्र-सा लग रहा था। बांहों के अंगद, वक्षस्थल का रत्नों का हार, कटि की मेखला आदि सभी अंगों के आभूषण निकलकर यहां-वहां बिखर गए। उसका उत्तरीय उसके गले में फंदे की तरह लिपटा रह गया था। निस्तेज कंस विमूढ़-सा पड़ा रहा। उसकी दोनों भुजाएं भी लटककर असमर्थ निर्जीव लगने लगी थीं।

इस समय केशों को पकड़कर खड़ा यह युवा वसुदेव-पुत्र कुछ ही पल पहले तक कंस को नगण्य-सा गोप प्रतीत हो रहा था, किंतु इस समय कंस को लग रहा था कि उसका काल ही उसे प्रतिहत करके उसके मस्तक पर खड़ा है। पलमात्र को कंस की आंखों में अपनी दोनों परमसुंदरी रानियों अस्ति और प्राप्ति की छवि नाच उठी, किंतु दूसरे ही पल फिर काल का विकराल रूप उसकी आंखों में नाचने लगा। वह कुछ करने की सोच भी नहीं पा रहा था....कृष्ण ने केश को पकड़े-पकड़े ही महाबली कंस की विशाल काया को एक हाथ से ही उठा लिया और मंच से नीचे फेंक दिया।

सिर के बल धरती पर गिरते ही कंस घोर पीड़ा से छटपटाता हुआ चीखने-रिरियाने लगा।

कृष्ण मंच पर से ठीक उसके वक्ष पर ही कूद पड़ा। उसके पांवों का प्रहार वक्ष पर होते ही कंस सहसा निष्प्राण-सा, निष्पंद ढलक गया।

आवेश से थरथराते कृष्ण का क्रोध अब तक शांत नहीं हुआ था। उसने निस्तेज पड़े कंस के केशों को पकड़ लिया और उसको रंगस्थली में घसीटने

लगा।

कंस की गरदन टूट गई थी। वह अस्तव्यस्त-सा धरती पर पड़ा था। उसका सदा धधकता रहने वाला चेहरा अब काला और विकृत हो गया था। अंत में कृष्ण ने उसके निर्जीव शरीर को एक ओर डाल दिया और उसकी ओर से निवृत्त होकर सहज, स्थिर डग रखता वह अग्रज बलभद्र की ओर बढ़ चला।

उस समय भी प्रेक्षागार में यादवों और गोपों का मगध के योद्धाओं से संग्राम-सा छिड़ा हुआ था।

कंस की वह अवस्था देखकर उसका अनुगत अनुज महाकाय सुनामा सहसा गरजता हुआ कृष्ण की ओर खड्ग तानकर लपका, किंतु बलभद्र ने उसको बीच ही में धर दबोचा और बाहुदंडों के ही प्रहारों से उसको मार डाला। फिर तो मानो कंस के सारे मागध योद्धाओं का साहस ही टूट गया। तब भी वे अपने विशाल खड्ग उठाए यादवों पर प्रहार करते रहे....

किंतु दो ही पल बाद दृश्य बदल गया। पूरी रंगशाला ही योद्धा यादवों के हुंकारों से गूंज उठी। वहां बैठे सभी यादव मल्ल तथा योद्धा उठ खड़े हुए और जिसे जो कुछ भी मिला, समाजवाट के स्तंभों और मंचों को तोड़-तोड़कर उन्होंने बांसों तथा लोहे अथवा काठ के टुकड़ों को ही अपना आयुध बना लिया और मागधों को घेर-घेरकर मारने लगे। सहसा बाहर से भी भीषण कोलाहल सुनाई पड़ा। युयुधान सात्यकि, उद्धव, हृदिकपुत्र कृतवर्मा भोज तथा एक से एक सहस्रों बलवान युवकों का दल अपने अस्त्रशस्त्र लिए रंगशाला को चारों ओर से घेरकर मागधों का वध कर रहा था। उनका आक्रमण होते ही मागध सैनिक अपने-अपने शस्त्र फेंक-फेंककर प्राणों की भीख मांगने लगे। जो भागकर बाहर पहुंचे उनको यादव युवकों के विशाल दल ने पकड़कर बंदी बना लिया।

पलक झपकते सब कुछ समाप्त हो गया था।

कुछ ही देर पहले जहां महाराज कंस का जयजयकार हो रहा था, वहां अब वासुदेव कृष्ण और बलदेव के साथ ही स्वयं वसुदेव का जयनाद गूंजने लगा था।

कंस के अनाचारी शासन से मुक्ति पाकर मथुरा पुरी उस समय उन्मुक्त उल्लास के साथ समारोह मनाने लगी थी। रक्त से भीगी रंगशाला में ही मथुरा की सुशोभना वारांगनाएं लास्य नृत्य-सा करती हुई कृष्ण और बलभद्र का अभिनंदन करने लगीं।

तब कृष्ण और बलदेव निकट ही धरती पर बंदी बैठे अपने पिता वसुदेव और अंबा देवकी के सामने पहुंचे। उनके चरणों में बिछकर दोनों ने प्रणाम किया।

और अगले ही पल उन दोनों पराक्रमी पुत्रों ने पिता और अंबा के बंधनों

को झटके से तोड़कर उन्हें मुक्त कर दिया....

कातर आंखों से आंसू बहाती कृशकाया देवकी ने लपककर कृष्ण और बलदेव को छाती में भर लिया। उल्लास और वात्सल्य के आवेश से कांपती, अचेत-सी लड़खड़ाती अंबा देवकी को कृष्ण ने अपनी भुजाओं में संभालकर उन्हें चूम लिया।

महारानी अस्ति की परिचारिकाएं सहसा ही भागती-भागती आईं और महारानी के पांव पर गिरकर विलाप-सा करने लगीं। अस्ति ने पल-भर उनकी ओर देखा और अचानक आशंका से कांप उठी।

फिर तो जैसे प्रलय का अंधड़-सा चलने लगा हो....सहसा ही बाहर किसी का चीत्कार गूंज उठा। और अगले ही पल भीषण हाहाकार मचने लगा। कोलाहल इतना भयानक हो गया मानो कहीं से विशाल सेनाएं एकाएक आकर पुरी पर टूट पड़ी हों। अस्ति कुछ सोच पाती कि लहूलुहान रोचमान भागता हुआ आया और महारानी के सामने गिर पड़ा। कांपता-हांफता हुआ वह टूटे स्वर में बोला, ''महारानी....देवी....महाराज....ओह....''

एक हुलकी-सी आई और रोचमान के मुंह से एकाएक लहू का थक्का-सा गिरा। वह छाती पर हाथ रखकर जोर-जोर से 'ओ-ओ' करता हुआ उलटी करने लगा—खून की उलटी।

महारानी ने इधर-उधर देखा। किंतु वहां कोई नहीं था। न जाने सारी परिचारिकाएं कहां चली गई थीं! हो क्या रहा है? कहीं महाराज की ओर से कोई ऐसा कार्य तो नहीं किया गया कि प्रजा में ऐसी भगदड़ मच रही है....

''....विनाश....महाविनाश....'' कहीं कोई चीख रहा था, ''महाराज की हत्या हो गई....भागो....भागो....''

और कोलाहल के साथ ही अनेक शस्त्रों की झनझनाहट....चीख-पुकार....भगदड़....हड़कंप....

महारानी अस्ति ने सहसा अपनी अनुजा प्राप्ति को भी रोती-चिल्लाती आकर दासियों के पास ही गिरती देखा। अस्ति की नसों में सनसनी-सी व्याप रही थी। वह मानो सुनकर भी कुछ समझ नहीं पा रही हो....असंभव! असंभव....यह कैसे हो सकता है....महाराज....नहीं! नहीं....यह असत्य है! उन षड्यंत्रकारियों की ओर से यादवों को भड़काने का प्रयास किया जा रहा होगा....

अस्ति स्वयं उठी। वह बाहर निकलकर देखना चाहती थी कि आखिर यह हड़कंप मचा किसलिए है, किंतु उसी समय सहसा अक्रूर ने अपने योद्धाओं के साथ प्रवेश किया और अस्ति की ओर संकेत करते हुए योद्धाओं से बोले,

''ले जाओ इसे!''

महारानी अस्ति की आंखें फटी की फटी रह गईं। उसने चीखकर कहा, ''दानपति अक्रूर, तुम....यह क्या कर रहे हो....महाराज कहां हैं....''

अक्रूर ने दूसरी ओर देखते हुए कहा, ''महाराज....हाहाहा....तुम्हारे महाराज तो अब रंगशाला में निर्जीव पड़े है, सुंदरी महारानी! और तुमको हम मात्र इसलिए बंदी बना रहे हैं कि कहीं आक्रोश से भरी प्रजा तुमको भी न मार डाले....देवकी के उसी आठवें पुत्र ने तुम्हारे उस राक्षस महाराज का वध कर दिया है....देवकी के उसी पुत्र ने हमको आदेश दिया है कि उस राक्षस की पत्नियों को अपमानित नहीं होने दिया जाए! आज यादव प्रजा तो तुम जैसी कीकट सुंदरी को ले जाकर महाराज के पास ही तुमको भी खंड-खंड करके डाल देने को उत्सुक थी....लेकिन देवकीनंदन कृष्ण ने आज्ञा नहीं दी! तुम हमारी रक्षा में हो! आओ....ले चलो!'' अक्रूर ने किंचित तिरस्कार के साथ महारानी को बंदी बना लेने का आदेश दिया। अचेतप्राय प्राप्ति को भी बंदी बनाकर सैनिक उन्हें घेरकर सुरक्षित अपने साथ ले गए।

तीस

यादवों की तो मगध की उन दोनों राजपुत्रियों को और नहीं तो कम से कम आजीवन उसी कारागृह में रखने की इच्छा थी, जिसमें देवकी और वसुदेव को वर्षों तक रखकर यातना दी गई थी और जहां उनके नवजात पुत्रों की नृशंसता के साथ हत्या करते समय कंस विकराल हँसी हँसा करता था। उनकी इच्छा थी कि जरासंध की पुत्रियों को इसका अनुभव होने दो कि उनके उकसाने पर ही उनके दुराचारी पति ने वसुदेव और देवकी को कितनी यातना दी थी!

उनका कहना था कि मथुरापुरी को जो वर्षों तक ऐसा अभिशप्त शासन भुगतना पड़ा था, उसका मूल कारण मगध का वह दुर्दांत राक्षस जरासंध ही था। उसने ही तो अपने हित के लिए यादवों के फलते-फूलते गण का विनाश किया था। अपनी जिन पुत्रियों को साधन बनाकर उसने कंस को भी राक्षस बन जाने की प्रेरणा दी थी, अब उनको इसका दंड तो मिलना ही चाहिए!

किंतु कृष्ण का आदेश टालने का साहस किसी में नहीं था।

कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव और अंबा देवकी को प्रणाम करके केवल इतना ही कहा था, ''महापराक्रमी आदेश दें! स्त्रियों को यातना देकर हम वही जघन्य कृत्य नहीं करना चाहते जो हमारे दुरात्मा मातुल कंस ने किया था!''

देवकी तो कृष्ण को हृदय से लगाकर आंसू बरसाने लगी थीं। वसुदेव ने मात्र संकेत से ही अक्रूर को आदेश दे दिया, ''जाने दो उन्हें।''

कृष्ण के आग्रह पर ही उन दोनों रानियों को मात्र उनके अंगरक्षकों के साथ रथ पर बैठाकर मथुरापुरी की सीमा के पार तक पहुंचा दिया गया और उनको आश्वस्त किया गया कि वह जहां चाहें, जा सकती हैं!

उनको छोड़कर लौटने वाले सैनिकों ने मंत्रिवर अक्रूर से कहा था, "उनको हमने उनकी ही प्रार्थना पर चेदि राज्य का मार्ग बताकर जाने दिया है...."

अर्थात् वे संभवत: तत्काल सुरक्षा पाने की आशा से चेदि राज्य की ओर चली गई होंगी!

इस बीच न जाने कितने ही मागध योद्धा आदि अपनी जान बचाकर मथुरा से भाग निकले थे, किंतु अधिकतर सामान्य मागध कर्मी तथा उनके परिजन यादव योद्धाओं के घेरे में फंसकर पकड़े गए थे।

अंतत: कृष्ण और हलधर बलभद्र ने ही बंदीगृह में जाकर वृद्ध महानायक उग्रसेन को भी उनके पुत्र कंस द्वारा जकड़े गए बंधनों से मुक्त किया था!

देवकीनंदन ने रंगस्थली में ही घसीट-घसीटकर कंस का वध कर दिया है, यह सूचना तो उग्रसेन को मिल ही चुकी थी। उसी युवा कृष्ण को अपने चरण छूकर प्रणाम करते देखकर उग्रसेन ने अत्यंत व्यथा के साथ रोकर कहा था, "देवकीनंदन! कल्याण हो, वत्स! तुमने आकर मेरे उस दुरात्मा पुत्र का संहार कर दिया है....और अपने भाग्यशाली माता-पिता को मुक्त करवा दिया है। तुम्हारी जय हो! तुमसे अब मेरा मात्र इतना ही आग्रह है कि उसकी पत्नियों का, हमारी उन कुलवधुओं का अपमान न होने पाए! तुम अब मथुरा के स्वामी हो....तुमने अपना कार्य सिद्ध कर लिया, मैं इसके लिए तुमको दोष नहीं देता। प्रारब्ध को कौन टाल सकता है! मेरा महाबली पुत्र दुरात्मा था। यादवगण का द्रोही था। अपराधी था। किंतु मेरा इतना आग्रह तो मानोगे ही, वासुदेव! उन बेचारी स्त्रियों का तो कोई दोष नहीं, देवकीनंदन। उनका तो अपराध कहो, अथवा दुर्भाग्य कि वे उस दुरात्मा की पत्नी बनने को प्रारब्ध की ओर से बाध्य थीं....उनको अपने पति की इच्छा से जो भी करना पड़ा हो, उसका पाप उन पर तो नहीं...."

अक्रूर ने महानायक को प्रणाम करके कहा, "आर्य! अंत:पुर की सभी रानियां सुरक्षित हैं! इन पराक्रमी देवकीनंदन ने तो मगध की दोनों राजपुत्रियों को भी अपनी ओर से उनकी पूरी रक्षा-व्यवस्था करके मगध जाने की अनुमति दे दी है...."

यह अप्रत्याशित सूचना पाकर वयोवृद्ध उग्रसेन चकित-से कृष्ण की ओर निहारते रह गए। सहसा कुछ बोल नहीं पाए।

बड़ी देर बाद उन्होंने कहा, ''इस अल्पवय में ही तुमने शक्ति के साथ ही श्रेष्ठ राजधर्म की पराकाष्ठा का परिचय दिया, वासुदेव! आश्चर्य है....अस्तु, अब तुम मथुरापुरी पर अपना अभिषेक करवाकर विधिवत् इसका पालन करो। तुम वृष्णिवंशी महाराज शूरसेन के वंशज हो, फिर विजेता हो, अतः तुम्हें इस जनपद पर शासन करने का अधिकार भी है....मेरा तो मात्र एक ही आग्रह है....तुमने मेरे अपराधी पुत्रों को उनके अपराध का दंड तो दे ही दिया है....अब तुम इतनी अनुकंपा और कर दो कि मैं उनका विधिवत् अंतिम संस्कार तो करवा दूं। वह जैसे भी थे, अंततः हमारे कुल के ही थे....हमारे आर्य संस्कारों से विपरीत जाने का दंड तो उनको मिल ही चुका है। अब उनका परलोक न नष्ट हो, इस कारण यदि तुम आज्ञा दो तो मैं उनका विधिवत् प्रेत-संस्कार करवाना चाहता हूं। उसके बाद तो मेरा इस मथुरापुरी में और कोई कार्य नहीं रह जाएगा। हम पति-पत्नी जाकर वन में तप करेंगे....''

वासुदेव कृष्ण ने तत्काल उनका अभिनंदन करके कहा, ''आर्य, मातुल कंस ने अपना जीवन पाप में लगाया था। उन्होंने मेरे पूर्व जन्म लेने वाले मेरे सहोदर भ्राताओं....एक-दो नहीं, छह-छह अबोध नवजात शिशुओं की हत्या मात्र अपने कायर स्वभाव के कारण ही की होगी....किंतु यादव-गण की परंपरा के विरुद्ध उनका जो द्रोह था वह मगध के उस निरंकुश राजा के संकेत पर किया जा रहा था, जो हमारी परंपराओं का विकट शत्रु है। वह छलबल से यादवों को अपने अधीन करने को प्रयासरत रहा है। उसके संकेत पर दुरात्मा मातुल ने स्वयं मेरे माता-पिता की जो दुर्दशा की थी, यदि मैं उसका दंड न दे पाता तो लोक मेरे जैसे पुत्र की निंदा करता। मैंने अपना कर्तव्य मानकर ही उस दुरात्मा का वध कर डाला....

''किंतु कहा जाता है....शास्त्रों के अनुसार भी....मृत्यु के बाद सभी दोषों का परिमार्जन हो जाता है। अब मातुल कंस के शरीर से मेरा कोई वैर नहीं। मेरी ओर से तो मातुल कंस मेरे निकट आत्मीय ही थे। आप उनका विधिवत् अंतिम संस्कार करवाएं। किंतु मेरा एक निवेदन भी है....उनके पहले आप ही इस यादव-गण के महान् नेता थे। महानायक के रूप में आप वर्षों तक मथुरापुरी का पालन करते रहे हैं। अब आपको तिरस्कृत करने वाले महाबली कंस का निधन हो चुका है। और हमारा यादव-गण फिर से स्वतंत्र होकर अपनी परंपरागत व्यवस्था के अनुरूप चलने को तत्पर है! इस संक्रांति वेला में तो आप जैसे अनुभवी नायक ही इसका मार्ग-प्रदर्शन कर सकते हैं। आप ही स्वयं अपने उसी पद पर अभिषेक करवाकर इसको फिर से वैभव और संपन्नता के मार्ग पर ले जाएं। इस महान् यादव-गणसंघ का शासन हम अनुभवहीन गोप युवकों के वश का नहीं!''

H